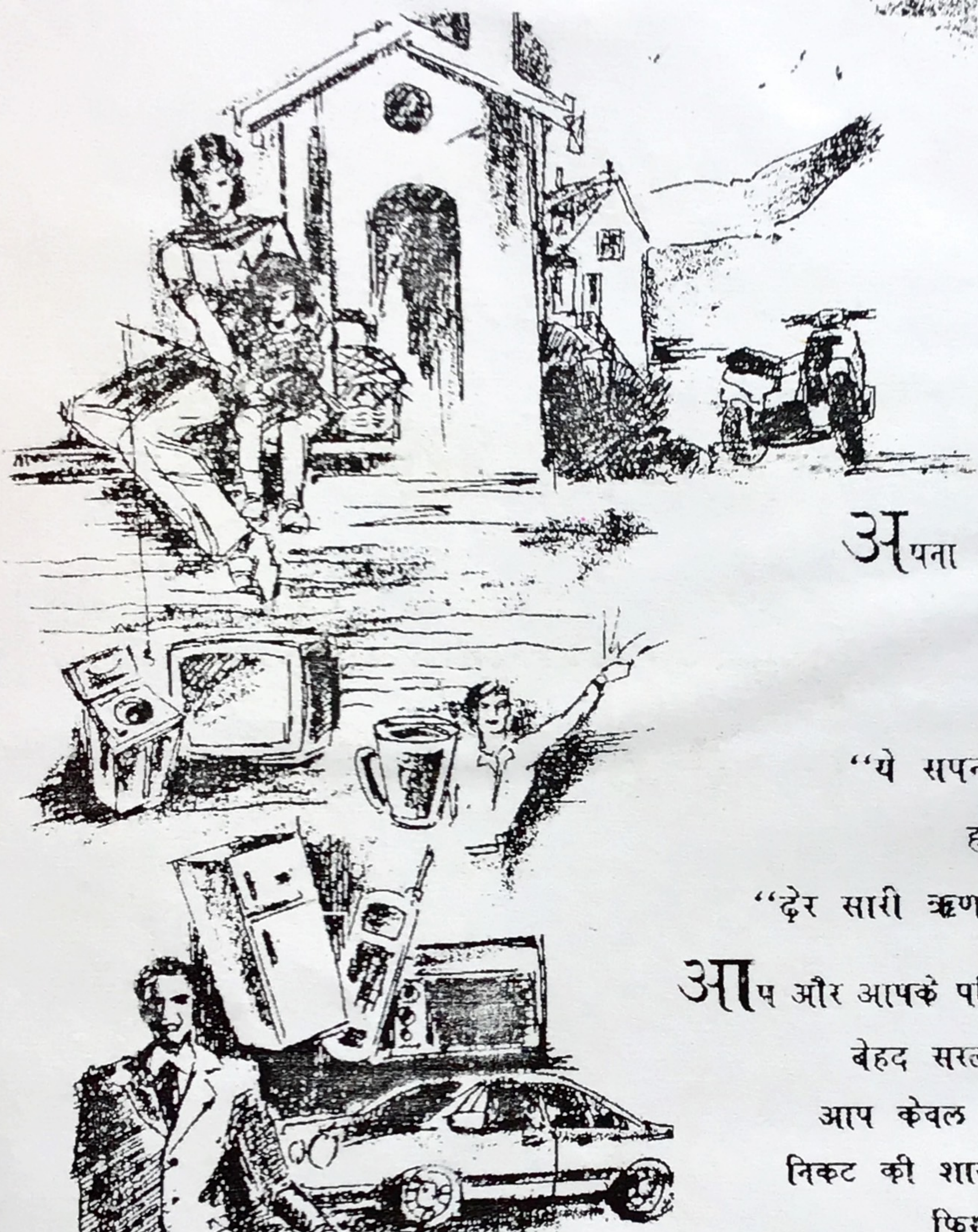

2000



महाराजा छत्रसाल नेहरू युवा क्लब, बसारी

द्वारा

बुन्देली-उत्सव 2000

तथा

महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेंट

के अवसर पर प्रकाशित

स्मारिका

संपादक-

बहादुर सिंह परमार

सह-संपादक-

- डॉ. कुंजी लाल पटेल
- डॉ. हरि सिंह घोष

प्रकाशक -

महाराजा छत्रसाल नेहरू युवा क्लब, बसारी

जिला छतरपुर (म0प्र0)

- **प्रथम संस्करण (फरवरी २०००)**
  1000 प्रतियाँ

- **आवरण चित्र -**
  श्री रामकुमार सोनी, छतरपुर

- **मुद्रक -**
  जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०, छतरपुर.

- **मुद्रण सहयोग -**
  बी.जी. पाण्डेय (प्रबंधक)
  जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर (कम्प्यूटर कम्पोजिटर)

- **सहयोग राशि -**
  50/- (पचास रुपये मात्र)

महाराजा छत्रसाल नेहरू युवा क्लब, बसारी द्वारा आयोजित

बुन्देली-उत्सव-2000 तथा महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेन्ट

आयोजन समिति

संरक्षक -	शंकर प्रताप सिंह बुन्देला, अध्यक्ष, म.प्र. राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक मर्या०, भोपाल.
अध्यक्ष-	दीवान त्रिलोक सिंह, बसारी.
उपाध्यक्ष -	डॉ. घासीराम पटेल.
संगठन सचिव -	डॉ. मुराद अली, उपाध्यक्ष, नगर पंचायत, राजनगर.
सहायक संगठन सचिव	जीतेन्द्र सिंह 'जित्तू'.
कोषाध्यक्ष -	लखन लाल असाटी.
कार्यकारिणी सदस्य -	बहादुर सिंह चन्देल, अध्यक्ष, जिला सहकारी भूमि विकास बैंक मर्या०, छतरपुर.
	देवेन्द्र प्रताप सिंह, अध्यक्ष, जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्या०, छतरपुर.
	श्रीमती चन्द्रप्रभा कोरी, सदस्य, जिला पंचायत, छतरपुर.
	रामबाबू ताम्रकार, पूर्व अध्यक्ष, नगर पालिका छतरपुर.
	डॉ. एम.एल. पिपरसानिया, सचिव, जिला फुटबाल संघ।
	डॉ. जे.एस. परिहार
	डॉ. बहादुर सिंह परमार
	पर्वत सिंह बुन्देला
	शारदा प्रसाद शुक्ला

313-R

अजय सिंह
मंत्री
पंचायत एवं ग्रामीण विकास,
पर्यटन एवं संस्कृति

दूरभाष : (नि.) 555355
(का.) 551362
फेक्स : 550934

सी-19, शिवाजी नगर, भोपाल.

भोपाल, दिनांक .... 17 JAN 2000

संदेश

प्रसन्नता का विषय है कि महाराजा छत्रसाल नेहरू युवा क्लब, बसारी जिला छतरपुर द्वारा 'बुंदेली उत्सव' के आयोजन के अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है

मुझे आशा है उत्सव के दौरान आयोजित होने वाले परंपरागत खेल प्रतियोगिताएं और लोक कलाओं के आयोजन से क्षेत्र की उभरती हुई प्रतिभाओं को अपने कौशल को प्रदर्शित करने का अवसर मिलेगा

बुंदेली उत्सव के सफल आयोजन और इस अवसर पर प्रकाशित होने वाली स्मारिका के लिये शुभकामनाएं

अजयसिंह

(अजय सिंह)

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय...

भारत के हृदय स्थल में स्थित बुन्देलखण्ड चम्बल, टोंस, यमुना और नर्मदा नदियों से बनी सीमा रेखाओं से सुसज्जित है। कल कल निनाद करती देश की अनेक प्रमुख नदियों, उपयोगी वनों से आच्छादित विंध्य की पर्वत श्रेणियों और महत्वपूर्ण खनिजों से आपूरित यह भू भाग प्राकृतिक सम्पदा से बहुत समृद्ध है। इतिहास में, चेदि, दशार्ण और जेजाक भुक्ति की संज्ञा पाने वाले इस बुन्देलखण्ड पर मौर्य, नाग वाकाटक, गुप्त, चन्देल, तोमर और बुन्देल वंश के शासकों ने समय समय पर शासन किया। आजादी के बाद इस भूखण्ड को राजनैतिक रूप से दो प्रान्तों मध्य प्रदेश तथा उत्तरप्रदेश में भले ही बाँट दिया गया परन्तु सांस्कृतिक, भाषिक तथा सामाजिक रूप से बुन्देलखण्ड आज भी एक इकाई है।

महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड के ऐसे वीर प्रतापी शासक हुए कि उनका सामना करने के पहले ही मुगल सेना का हौंसला पस्त हो जाता था। महाराजा छत्रसाल ने बुन्देला वंश में जन्म लेकर बुंदेलखण्ड के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली भाषा को बुन्देली की संज्ञा मिली किन्तु आज राष्ट्रीय स्तर पर विद्वान इसे विभाषा या बोली मानकर नजरअंदाज करने का प्रयत्न करते हैं। बुंदेली की अपनी गौरवशाली साहित्यिक, ऐतिहासिक परंपरा है, व्याकरण है तथा इसे व्यवहृत करने वाला विशाल जन समुदाय (लगभग ५ करोड़) भी है परन्तु आज जिस ऊँचाई पर अवधी, ब्रज, राजस्थानी आदि भाषायें खड़ी हैं, वह ऊँचाई बुन्देली को नहीं दी जा रही है, इसके पीछे मुझे परिनिष्ठित बुन्देली के विकास हेतु प्रयास न किया जाना दिखता है। यह सत्य है कि बुन्देली के विविध क्षेत्रीय रूपों में थोड़ा बहुत अन्तर है किन्तु मूल भाषा की वैज्ञानिक विशेषतायें एक हैं, जिन्हें स्थापित कराने के लिए अनेक विद्वान प्रयत्नशील हैं।

बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक परम्परा अत्यधिक समृद्ध तथा लोक संपृक्त है। इस अंचल की लोक कलायें सभ्यता के विभिन्न दबावों के बाद भी आज ग्रामीण अंचलों में सुरक्षित है। इन पर कालचक्र का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है किन्तु कहीं ऐसा न हो कि कल के दिन हम अपने लोक साहित्यिक, लोक सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक विरासतों को पहचान ही न पायें। इस खतरे से बचाने तथा ग्रामीण अंचलों के उपेक्षित, साधनहीन कलाकारों को मंच देने के मन्तव्य से

बसारी के महाराजा नेहरू युवा क्लब ने विगत चार वर्षों से 'बुन्देली उत्सव' तथा 'महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेंट' आयोजित कराने का निर्णय लेकर उसे लगातार साकार किया है।

लोक कलाओं में निरन्तर समय के साथ सुधार होता है। मेरा मानना है कि लोक समय की पदचाप को अधिक सजगता से सुनकर वर्तमान के अनुरूप अपने आप को ढालने को आतुर हो जाता है। इसका प्रभाव लोक कलाओं पर भी पड़ा है। 'बुन्देली उत्सव' के द्वारा लोक में प्रचलित विभिन्न विधाओं यथा - राबला, राई, दिमरयाई, लोकगीत आदि के द्वारा बड़े प्रभावी ढंग से कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस वर्ष से महाराजा छत्रसाल टूर्नामेंट में कबड्डी, बॉलीवाल तथा कुश्ती के साथ बुन्देलखण्ड के विलुप्त हो रहे खेल गिल्ली डंडा, चौपर आदि को स्थान दिया गया है।

बुन्देली उत्सव आयोजन समिति के संरक्षक तथा मार्गदर्शक श्री शंकर प्रताप सिंह ने अपने सहयोगियों से विचार विमर्श कर यह निर्णय लिया कि एक स्थायी दस्तावेज के रूप में 'स्मारिका' का प्रकाशन किया जाये जिसमें बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक, साहित्यिक, पुरातात्विक तथा ऐतिहासिक लेखों का संकलन हो। इस सुझाव को समिति ने स्वीकार किया और वह साकार होकर आपके हाथों में है। मैंने स्मारिका हेतु तीन महीने पहले क्षेत्र के जाने माने विद्वानों के अतिरिक्त जनसामान्य से भी आलेख आमंत्रित किए, जिसका परिणाम सकारात्मक रहा। इस स्मारिका में जहाँ महाराजा छत्रसाल के जन्म स्थान के सम्बंध में व्याप्त भ्रांतियों को दूर करने का प्रयत्न किया गया, वहीं महाराजा छत्रसाल को दुर्गा, सरस्वती तथा लक्ष्मी का कृपापात्र सिद्ध किया गया है। बुन्देली भाषा व साहित्य की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए भी लेख संकलित हैं। इतिहास के अस्त्र, गढ़ तथा गढ़ियों के साथ महान् साहित्य सेवियों के रचना संसार को भी रेखांकित करने का प्रयत्न हुआ। लोक कलाओं के विविध रूपों के अलावा लोक साहित्य के पहलुओं को उद्घाटित करने में कई आलेख मददगार हैं। इनके अतिरिक्त बुंदेली काव्य तथा गद्य में बुन्देलखण्ड की विविध झांकियाँ आपको 'स्मारिका' में प्राप्त होंगी। अतीत के चित्रों के माध्यम से समिति के पिछले आयोजनों से पाठकों को परिचित कराया गया है।

इस स्मारिका के प्रकाशन में महत्वपूर्ण भूमिका हमारे सहृदय रचनाकारों की रही है, उनके सहयोग से यह कार्य सफल हो सका है। इस पुनीत कार्य में जिन महानुभावों ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग प्रदान किया है, उनके प्रति समिति कृतज्ञता ज्ञापित करती हैं।

अन्त में, मैं यह अवश्य कहना चाहूँगा कि आप 'स्मारिका' व 'आयोजन' के सम्बंध में अपने को जोड़ते हुए सुझाव देने की कृपा करें, जिससे भविष्य में सुधार किया जा सके।

- बहादुर सिंह परमार

बुन्देली लोक पर्व

-श्रीमती मधु श्रीवास्तव

मानव जीवन में सुख आनन्द व उल्लास का संचार करने वाले पर्व, उत्सव व त्योहार हमारे सामाजिक व सांस्कृतिक स्वरूप के दर्पण होते हैं। बुन्देलखण्ड में सभी त्योहार जो राष्ट्रीय, सामाजिक धार्मिक व सांस्कृतिक महत्व रखते हैं जैसे – दशहरा, दीपावली, होली, रक्षाबंधन, जन्माष्टमी आदि बड़े उत्साह पूर्वक मनाये जाते हैं। किन्तु बुन्देलखण्ड में अनेक ऐसे त्योहार भी हैं – जिनको लोक पर्व संज्ञा दी गई है। ये लोक–पर्व की ऋतु परिवर्तन पर, लोक–कथाओं और परिस्थितियों आदि के अनुसार मनाये जाते है। जो यहां के लोक जीवन की सरल–सहज अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। लोक–पर्वों में जीवन मूल्यों और जीवन दर्शन की मूल भावना निहित होती है। पूजा के माध्यम भी साधारण, पारम्परिक या प्रतिदिन उपयोग में आने वाली सामान्य वस्तुयें होती हैं, लेकिन पूजा में उनका प्रयोग बड़ा सारगर्भित होता है। ऐसे ही कुछ लोक–पर्वों के बारे मे जानकारी यहां प्रस्तुत है–

जवारे :- बुन्देलखण्ड में यह पर्व हिन्दु वर्ष के अनुसार साल में दो बार मनाया जाता है चैत्र–मास तथा क्वांर मास की नवरात्रि में। चैत्र की प्रतिपदा से शक्ति की उपासना नवदुर्गा पूजा के रूप में की जाती हैं। शक्ति का स्वरूप माँ दुर्गा के कलश की स्थापना हवन पूजन एवं प्रकृति की शक्ति स्वरूप जवारे बोना आस्था के प्रतीक हैं। जवारे आने वाली उपज की स्थिति को दर्शाते हैं। कलश व जवारों की पूजा नौ दिन तक बहुत श्रद्धा–भक्ति से की जाती है। नव दुर्गा की समाप्ति पर जवारों की शोभा–यात्रा निकाली जाती है। भक्तगण देवी भजन व अँचरी गाते बजाते जवारों को पहले देवी के मंदिर तक ले जाते हैं बाद में विसर्जन हेतु समीप के नदी तालाब तक ले जाया जाता है। एक प्रचलित अँचरी है –

दिन की ऊरन किरन की फूटन,
सुरहिन बन को जांय हो मांय।
एक बन चाली सुरहिन दो बन चाली,
तिज बन पोंची जांय हो मांय।।

कुछ श्रद्धालु पुरुष, गालों, जिव्हा या भुजाओं में सांग (नुकीले भाले जैसे शलाका) भेदकर माता के मंदिर तक जाते हैं। जहां मंत्रोच्चार के साथ सांग निकालकर भेदित अंग पर भभूत इत्यादि लगा देते हैं। इस प्रथा से वैज्ञानिक व चिकित्सक भी आश्चर्यचकित है कि ग्रामीण परिवेश में रहने वाले अशिक्षित इस बात को कैसे जानते हैं कि शरीर के अंगों में बिना रक्त बहाये छेद कर भारी लाट तीरों को साध कर बहुत दूर तक चल कर जाते हैं। ऐसे ही चमत्कार दैवी शक्तियों पर विश्वास करने पर विवश कर देते हैं।

चैती पूनों :- चैत्र मास की पूर्णिमा को मनाया जाने वाला पर्व है। इस दिन मां अपने पुत्र की दीर्घायु, सद्‌बुद्धि व बल प्रदान करने की कामना ईश्वर से करती है तथा व्रत रखती है। इसी दिन 'हनुमान जयंती' भी होती है। माता अंजनी व पुत्र हनुमान के स्नेह स्वरूप बुन्देलखण्ड में इसे मनाने की विशेष परम्परा है। इसे बुन्देली भाषा में 'पजनूँ की पूने' भी कहा जाता है पजन संभवतः पवन का अपभ्रंश है। हनुमान पवन पुत्र हैं अर्थात पजनूँ है। आँगन में चौक पूरकर कोरी मटकी पर चूना या पोतनी से पोतकर हल्दी से माँ व पजनूँ की आकृति बनाकर उसमें पौष्टिक लड्डू (आटे शुद्ध घी, शक्कर या गुड़ तथा मेवे से बने) तथा अन्य पकवान (सेव, पपड़ी, खुरमे आदि) भर कर खाते हैं। पूजन के बाद पुत्र मटकी से लड्डू निकाल कर मां की गोद में रखता है। माँ उन लड्डुओं को प्रेमपूर्वक बेटे को खिलाती है। इस सम्बन्ध में यह उक्ति प्रसिद्ध है–

पजन के लड्डू पजनई खाँय दौड़–दौड़ मटकियन नौ जाँय

पूजा में माता व पुत्र के प्रेम की कहानी भी कही जाती है। जिसमें ईर्ष्यावश जेठानी ने देवरानी के जन्मे शिशु को कुम्हार के आँवे में डाल दिया जो समयान्तराल में कुम्हार द्वारा पाला गया बुद्धिमान बालक बना। अनेक कठिन परिस्थितियों से गुजर कर अंत में माँ बेटे का मिलन हुआ तथा जेठानी को दण्ड भुगतना पड़ा। यह कहानी वास्तव में परिवार में उत्पन्न ईर्ष्याजनित कुत्सित भावनाओं व अविवेकपूर्ण कार्यों तथा उनके परिणामों की है।

आस-माई :- लोक जीवन में आशा–विश्वास की महत्ता को प्रदर्शित करता यह व्रत वैशाख मास में कृष्ण पक्ष की दौज को महिलाओं द्वारा पुत्र के कल्याण की कामना हेतु रखा जाता है। पान के पत्ते पर चार पुतरियां हल्दी या चंदन से बनाकर पूजी जाती है।

पूजा की कहानी में चार बहनें (भूख, प्यास, नीद व आस) के नाम उल्लिखित है जो मानव जीवन से सम्बन्धित है अर्थात कर्मठ व बुद्धिमान मनुष्य विपरीत परिस्थितियों में भूख, प्यास, नींद का परित्याग कर सकता है, किन्तु आशा का साथ नहीं छोड़ता जिससे उसकी सर्वत्र विजय होती है। विजय की प्रतीक कौड़ियाँ पूजा में रखी जाती है। पूजा का माध्यम है पान के पत्ते पर हल्दी या चंदन से बनी चार पुतरियां। मानव स्वभाव का विश्लेषण कोमल पान के पत्तों से करें जो थोड़े से शुष्क वातावरण (विपरीत परिस्थितियों) में

मुरझा जाते हैं किन्तु दृढ़ इच्छा शक्ति (हल्दी व चन्दन) समय बीतने के साथ मनुष्य को सबल व सुन्दर व्यक्तित्व प्रदान करने में समर्थ होती हैं जैसे – हल्दी, चन्दन सूखने के बाद भी अपनी रंग व सुगन्ध नहीं खोते।

व्रतधारक स्त्रियां सात आसें (गुड़ वा आटें की किनारे गोंठ कर बनाई पूड़ियां) व गगरी भर जल पूजा में रखती है। पूजा के बाद आसें व पूजित गगरी के जल से व्रत का पारायण करती हैं।

अक्तीः- लोक जीवन में अनेक पक्षों के महत्व को संजोये वैशाख शुक्ल तृतीय को आता है। अक्षय तृतीया को बुन्देली में 'अक्ती' के नाम से जाना जाता है। इस का महत्व कृषकों, महिलाओं बालक–बालिकाओं सभी के लिये भिन्न–भिन्न है। बुन्देलखण्ड कृषि प्रधान क्षेत्र है। कृषि में वर्षा का विशेष महत्व है वर्षा के प्रमुख चार माह आषाढ़, सावन, भादों, क्वांर में वर्षा की क्या स्थिति रहेगी इसको जानने का तरीका 'अक्ती' की पूजा में रखे चार घैलों (छोटे मटके) में समाहित होता है उन घैलों में पानी भरकर उन पर चारों माह के नाम लिखकर एक–एक दाना चने का डालते हैं। ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर ऋतु में उपयोगी वस्तुयें (जल से भरा घड़ा, पंखा) सत्तू व फल इत्यादि सर्वप्रथम ईश्वर को अर्पित कर प्रयोग की जाये इसी भावना से पूजा में इन्हें चढ़ाते हैं। बालक पतंग उड़ाते हैं। बालिकायें कपड़ों की हस्त निर्मित पुतरा, पुतरियों का विवाह वट–वृक्ष के नीचे जाकर करती हैं। घर लौटते समय राह में मिलने वाले परिचितों को 'सोन' (पूड़ी, भीगे देबल, शक्कर, बरगद के कोमल पत्तों का मसला हुआ मिश्रण) बांटती हैं। 'सोन' लेकर वे बालिकाओं के चरण स्पर्श करते हैं। इस अवसर पर सुन्दर लोकगीत भी गाये जाते हैं।

अकती खेलन कैसें जाऊँरी,
बर तरे मेले लिबौआ।

बुन्देलखण्ड में कामदेव के कुसुशरों के समान चमेली के फूलों के लछारे (फलों से लदी डाल) देवर भाभियों को प्रेमपूर्वक मार कर उनके पति का नाम पूछते हैं–

हँस हँस पूछें देवरा सिया जू सों,
कहा पिया को नाव जू।

स्त्रियां भी अपने पति का नाम जोड़कर रस मग्न हो उत्तर देती हैं–

टाठी भरो घिऊ, हमाओं और .... को एकईजिऊ।

हरायतें :- हरायतें से तात्पर्य है पृथ्वी के तत्वों का आहवान। इसे बैशाख वदी अमावस्या के पश्चात् सूर्य की स्थिति व शुभ नक्षत्रों में मनाते हैं। हरायतें का मुहूर्त पंडित द्वारा निकाला जाता है। यह पूर्णतया कृषकों का पर्व है। समय से खेतों में जुताई, बुआई हो सके यही हरायतें का मूल उद्देश्य है। यह त्योहार कृषि कार्यों का प्रारम्भ माना जाता है। इस दिन बैलों को नहला–धुला कर सींगों को चमकाया जाता है। उनकी रस्सी बगैरह नई बदल जाती है। किसान मुखिया या जमीदार के साथ गाते बजाते खेतों तक जाते हैं। वहाँ दिशाओं के आधार पर चार समूह बनाकर पूजा की तैयारी होती है। नये घैला को अनाज से भरकर मलिया पर खेत की मिट्टी में ज्वार अथवा अन्य अनाज के दाने मिलाकर गोल आकृति बनाकर उसमें जरिया–छेवला की डालें गाड़ देते हैं। जिसका कारण यह होता है कि उपज छेवला के समान विकसित हो तथा जरिया के काँटे उनकी सुरक्षा के प्रतीक हैं। पंडित घैला, बैल, बखर की विधि विधान से पूजा करता है। प्रसाद कौंहरी (उबले गेहूँ के दाने) का वितरण होता है। मिट्टी व घैला को शुभ मानकर घर ले जाते हैं। मिट्टी का गोला घर के मुख्य द्वार पर रखते है।

असाढ़ी देवता - देवशयनी एकादशी से पूर्व समस्त देवी–देवताओं तथा प्रकृति–पूजा असाढ़ी देवता के नाम से जानी जाती है। आषाढ़ मास की प्रथम वर्षा फुहार खेत, बाग, वन की हरियाली का सपरिवार आनन्द उठाने का भी यह उत्तम अवसर होता है।

हिन्दू संस्कृति में प्रत्येक देवी–देवता का पूजन दिन के अनुसार होता है और उनका प्रसाद भी भिन्न–भिन्न होता है। जैसे सोमवार शिव का तो मंगलवार हनुमान का। सामूहिक रूप में परिवार व पड़ोसियों के साथ मंदिरों में जाकर प्रसाद चढ़ाया जाता है। प्राकृतिक दैवी आपदाओं से रक्षा की कामना से प्रकृति पूजन भी किया जाता है। इसके लिये किसी नदी के किनारे या बाग में 'गकरिया' बनाकर पूजन किया जाता है। समस्त प्राणी जगत सुखी हो ऐसी ही कामना सहित यह पूजन माह भर किया जाता है।

कुनघुसूं पूने :- भारत वर्ष में नारियों को सम्मान दिया जाता है किन्तु विशेष दिन में बहुओं की पूजा का विधान बुन्देलखण्ड में ही है। आषाढ़ मास की पूर्णिमा को प्रत्येक घर में वरिष्ठ महिला द्वारा पूजा–गृह की भित्ति के चारों कोनों को गोबर से लीपकर हल्दी द्वारा बहुयें बनाई जाती है। घी–गुड़ का नैवेध लगा कर पूजा करने के बाद उनसे प्रार्थना की जाती है कि "हे, गृह लक्ष्मी बहू तुम हमारे कुल की मान–मर्यादा को बनाये रखो और अपने गुणों से परिवार में सुख सम्पन्नता प्रदान करो। तुम्हारी सन्तान कुल का नाम उज्जवल करे।"

इस पूजा की आधार कथा यह है कि भगवान शंकर का कहना न मानकर सती अपने पिता दक्ष प्रजापति द्वारा आयोजित यज्ञ में बिना बुलाये गई। वहाँ उन्हें अपमानित होना पड़ा जिससे उन्होंने आत्मदाह कर लिया।

हरियाली अमाउस :- इसे 'हरि जोत' या 'हरजोती' के नाम से भी जाना जाता है। इस दिन कन्या को देवी रूप मानकर पूजा की जाती है। श्रावण मास की अमावस्या को बिटियों की प्रतीक हल्दी से बनी पुतरिया का पूजा गृह की भित्ति पर चित्रण कर उन्हें दूध भात का भोग लगाते हैं। मुख्य द्वार पर हल्दी या गेरू से सोनी–सोना की आकृति बनाई जाती है। बुन्देलखण्ड में कन्या को इस प्रकार सम्मान देने से यह सिद्ध होता है कि परिवार में कन्या होना बहुत शुभ माना जाता है। वे परिवार में सम्मान का प्रतीक भी मानी जाती है। विवाहित लड़कियों को भी इस दिन सपरिवार भोजन पर आमंत्रित किया जाता है।

सांउन सुदी नमे :- पति–पत्नी के सम्बन्धों में मधुरता बनी रहे जिससे परिवार में सुख शान्ति रहे तथा ईश्वर की कृपा भी बनी रहती है जिससे धन धान्य के भंडार भरे रहे ऐसी भावना के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड में श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की नवमीं को कुठलापूजन करने की प्रथा है।

इस पूजन की विशेषता है कि पति पत्नी दोनों इस पूजा को करते हैं। अनाज से भरे कुठला पर गंगा जल छिड़क कर पोतनी या गोबर से नौ पुतरियां बनाई जाती है जो संभवतः देवी के नौ रूप अथवा नव ग्रह का प्रतिरूप है। पकवान व मिष्ठान चढ़ाकर कहानी भी कही जाती है जिसमें पति पत्नी में आपसी समझ व विश्वास बनाये रखने की सीख दी गई है। कजली नमें को भित्ति चित्रण भी किया जाता है। 'भुजरियाँ' इसी दिन बोई जाती है।

गडा लैनी आठें :- भाद्रपद शुक्ल पक्ष की अष्टमी को 'गड़ा' लेने का विधान है। 'गड़ा' का सामान्य अर्थ है 'ग्रंथि युक्त डोरा'। मुहावरे युक्त भाषा में 'गांठ लगाना' संकल्प का पर्याय होता है। इसी आधार पर स्त्रियां व्रत रखकर पटे पर चंदन से हाथी की आकृति बनाकर पंडित से गड़ा लेकर उसकी पूजा करती है यह गड़ा लेकर भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अष्टमी को महालक्ष्मी व्रत तथा पूजन करने का संकल्प लेती है। आठें से प्रतिदिन शुच्च स्नान (शरीर पर 16 लोटा पानी प्रतयेक अंग का नाम लेकर डालना) कर प्रति दिन गड़े में एक गांठ लगाती है। 'शुच्च' संभवतः शुचि का अपभ्रंश है।

भुंजरिया या कजलियां :- भाद्रपक्ष कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को भुंजरिया कजलियां नदी या तालाब में विसर्जित की जाती है। इसको 'बासौ सांउन' भी कहा जाता है। भुजरियों का महत्व चंदेल वंश में घटित ऐतिहासिक घटना के कारण बढ़ गया है। पृथ्वीराज चौहान ने भुंजरिया विसर्जन के दिन महोबा स्थित कीर्तिसागर पर वीर भ्राता द्वय आल्हा ऊदल के साथ घमासान युद्ध किया। चौहान सेना पराजित हुई। आल्हा ऊदल ने अपने संरक्षण में भुंजरियां विसर्जित करवाई। राजकुमारी चंद्रावलि ने आल्हा ऊदल को भुंजरियां खोंट कर दीं और राखी बांधी। तभी से बुन्देलखण्ड के कुछ क्षेत्रों में भाद्रपद की प्रतिपदा को राखी बांधने की परंपरा है। भुजरियां विसर्जन के बाद राह में मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सुख शांति का प्रतीक मानकर बांटी भी जाती है।

श्रावण शुक्ला नवमी को दोनों में मिट्टी भर कर गेंहू के दाने बोये जाते हैं। जब उन्हें लेकर स्त्रियां सिराने जाती हैं तब प्रचलित लोकगीत गाती हैं–

सबरे उरगिया उरई गये, मैया हमऊं उरई खौं जायें,
कहां तौ मैया धरौ जीन पलैंचा, कहां धरें हथियार।।

मामुलिया :- आश्विन मास की पूर्णिमा अमावस्या तक पितृपक्ष में बुन्देलखण्ड के गांव व शहर में कुंवारी कन्याओ का विशेष खेल होता है। जिसे "मामुलिया" के नाम से जाना जाता है। इस लोकोत्सव में बालिकायें बेरी की डाल को फूलों से सजाकर लाल पटका पहना कर स्त्री रूप में मानकर पास–पड़ोस सबके घरों में ले जाती हैं तथा गाती हैं–

मामुलिया के आये लिबउआ,
झमक चली मेरी मामुलिया।
ल्याओ–ल्याओ चम्पा चमेली के फूल,
सजाओ मेरी मामुलिया।

सभी मामुलिया के दर्शन कर स्नेह पूर्वक मामुलिया के पूजन तथा विदा के लिये धन देते हैं। बालिकायें चौक पूरकर मामुलिया को उस पर रख पूजा करतीं है। अंत में मामुलिया के गले मिलकर विदा लेती हैं तथा उदास होकर उसे पास के नदी या तालाब में विसर्जित कर देती हैं।

'मामुलिया' में स्त्री जीवन का दर्शन निहित है जिस प्रकार बेरी का पेड़ प्रत्येक वातावरण में बिना विशेष पोषण के फूल फल देने की क्षमता रखता है उसी प्रकार स्त्री अपने परिवार को सद्गुणों रूपी फूलों से सजाकर, सन्तान रूपी फल तथा कांटों के समान प्रहरी बन सुरक्षा प्रदान करती हैं।

नौरता :- बुन्देलखण्ड का विशेष लोक पर्व 'नौरता' बालक–बालिकाओं द्वारा नवरात्रि में खेला जाता है। संभवतः 'नौरता' शब्द नवरात्रि का अपभ्रंश है। नौरता सुअटा–टेसू तथा ढिरिया का सम्मिलित रूप है। बालिकायें आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को किसी चबूतरे पर मिट्टी से सीढ़ियां बनाती हैं। उस पर मिट्टी की गौर स्थापित की जाती है। दीवार पर एक दैत्य की आकृति बनाती है जिसे 'सुआटा' कहा जाता है। उस आकृति में कौड़ी से आँखे व मुँह बनाते हैं। टूटी चूड़ियों पायलों के गहने बनाकर पहनाती हैं। नौ दिन तक प्रातः काल सुआटा के समक्ष दुदी, खपरी आदि से बने रंगों से कलापूर्ण चौक पूरी की जातीं है। दूध व जल के काँय

लघु नाट्य रूपक को कलाकार वेषभूषा सहित आकर्षक रूप में उपस्थित करते हैं व अनेक लोक गीतों का गायन करते है।

चाचर लोक नृत्यः- बुन्देलखण्ड का यह सुप्रसिद्ध नृत्य है। इसे मौंनिया नृत्य भी कहते हैं। चाचर का लोक नृत्य भी परम्परागत रूप से चला आ रहा है। यह नृत्य भी लोक प्रिय है। चाचर नृत्य में सभी पुरुष नृत्यकार होते हैं। यह नृत्य दीपावली के समय गोवर्धन पूजा के समय सर्वत्र होता है। लकड़ी के दो डड़ा (छोटे डण्डे) मंडली की मंडली हाथ में लेकर नाच नाचकर इन डड़ों से खेलते हैं। इसके ढोलक, मंजीरा, कसावरी, रमतूला, झींका प्रमुख वाद्य यन्त्र हैं। नृत्यकार महीनें से तैयारी करते हैं निश्चित वेषभूषा भी नृत्यकार बनवाते हैं। अतः आकर्षक लगने लगते हैं । यह नृत्य कृष्ण व उनके साथी ग्वालें का रूपक है। चाचर नृत्य को सैरा कहते हैं। इसे महीनों पूर्व से रियर्सल (अभ्यास) के रूप में मंडलियां तैयार करती हैं। मंडली की मंडली अब रंगीन वेषभूषा भी बनवाती है। ऑखो में काजल ,माथे पर डिठूला ,कमर में झोला हाथ में लकडी के डड़ा दो (खेलने वाले) चाचर नृत्य करने वालो की पोशाक होती है। इनके साथ एक मुखिया (मॉनीटर) होता है। जिसे बरेदी कहा जाता है। वह दोहा (दिवारी) गाकर बोलतें है। हाथ में मोर के पंखों की मूठ रखता है और चाचर नृत्य मंडली का नेतृत्व करके स्वयं नाच उठता है। गोवर्धन पूजा के दिन चाचर नृत्य मंडली(मोंनिया) मौन ध ारण करती है, इसलिये इन्हें मौनिया कहा जाता है। यह मौनिया लोग दूध या जब पानी पीते है तो तसला, कूड़े या टंकी आदि में मुँह से पानी पीते हैं। कहा जाता है कि 12 गाँवों की परिक्रमा करके खेलकर आने पर एक गाय पुण्य दान करने के बराबर होता है दीपावली के शुभ अवसर पर दोज–तीज तक इन्हें यत्र तत्र देखा जा सकता है। मोनियाँ गाँव गाँव में नृत्य का प्रदर्शन करते है। लोग नरियल व रुपये भी देते है बरेदी मंत्र बेत्ता (गुनियां) होता है क्यों कि लोग यत्र तत्र ओछी मानसिक्ता के कारण अच्छे चाचर नृत्य करने वाले पर जादू मंतर करके हानि करने का प्रयास भी करते हैं।

नौटंकी नृत्यः- ग्रामीण क्षेत्रों मे आज भी नौटंकी नृत्य बड़ा लोकप्रिय है। नौटंकी में संगीतबद्ध कोई नाटक खेला जाता है। इसमें विदूषक तथा नृत्यकार नौटंकी की जान होते है नृत्यकार पुरूष व स्त्री दोनों हो सकते है। दर्शकों का भर पूर मनोरंजन नौटंकी मे नृत्यगान द्वारा होता है। नौटंकी में नक्काड़ा, नगड़िया, ढोलक, हारमोनियम, मजीरा प्रमुख वाद्य यन्त्र होते है। नौटकीं मंडल का एक मैनेजर भी होता है। जिसके नाम से नौटकीं चलती है। नृत्यकार गीतों की फरमाइस पूरी कर इनाम बटोरतें हैं। देहात में नौटकी बड़ी लोकप्रिय है।

ढोला नृत्यः- नौटंकीं नृत्य महंगा हो जानें के कारण ग्रामों मे ढोला नृत्य का प्रचलन आज के युग में ग्रामों में अधिक हो गया है। इसमें राजा नल व दमयंती की कथा को गीत काव्य शैली से नाच गाकर मंडली आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करती है। इसमें ढोलक, मंजीरा, हारमोनियम प्रमुख वाद्य यंत्र है। नृत्य कार नौंटकी की तरह से फरमाइशें पूरी करते है। व विदूषक भी होता है जो भरपूर मनोंरंजन करता है।

बेड़नीं नृत्य :- शहरों में रण्डी (वेश्यायें) होतीं है। इसी प्रकार ग्रामों में बेड़ियां जाति के लोग अपनी लड़कियों को नाच गान में प्रशिक्षित कर नृत्यांगना बना देते है। इन्हें बेड़नीं कहते है। बेड़नीं गायक भी होती हैं। राई नृत्य के अतिरिक्त सामान्य रूप से भी गाती नाचतीं है। परन्तु यह वेश्यावृती नहीं करती। फाग नृत्य में नाचने पर राई कहलाती है। देहातों में लोग वेड़नी व राई नृत्य देखनें के वड़े शौकींन होते हैं।

रंडी नृत्यः- रंडियां प्रायः नौटकियों में अधिक नृत्य गान करतीं है। इस प्रकार नौटंकी में वह स्त्री पात्र का भी अभिनय करतीं हैं । पैरों में घुघंरू वांध आकर्षक, लुभावनी वेशभूषा में विदूषक के साथ नृत्य करती है और दर्शकों का मनोरंजन करतीं हैं। यह नृत्य शास्त्रीय नहीं होता इसलिये यह लोक नृत्य है।

शिखंडी नृत्यः- बुन्देलखंड क्षेत्र में हर शादी में वर पक्ष से शिखंडी (खसुवा लोग) आकर नृत्य करते है व गीत गाकर मनोरजंन करते है। इनका सहायक ढोलक वजाता है, व गाने में सम देता है पुरस्कार प्राप्त करते हैं एवं मनोरंजन कर चले जाते हैं।

दल दल घोड़ी नृत्यः- इस नृत्य में धोड़ा तथा घोड़ी के चेहरों के मुखोंटों को नृत्यकार अपनी कमर तक घोड़ी घोड़ा नुमा बांस से बनें हुये ढांचों को पहनतें है। ऐसा प्रतीत होता है कि नृत्य करनें वाला घोडी पर बैठा है। पैरों में घुघंरू बंधे होते है। लोगों ने इसे दल दल घोड़ी नृत्य का नाम दिया है। नृत्य कार सजता है, पुरूष नृत्यकार मुकुट बांधता है। स्त्री नृत्यकार स्त्री की वेशभूषा में सुसज्जित होता है।

नट नटनी नृत्यः- प्रायः नट लोग खेल तमाशा करते है। इनमें नट तथा नटनीं ढोलक में नृत्य भी करते है।

अपनी कला बाजी के साथबीच में गान तान दर्शकों के मनोरंजन को बढ़ा देता है।

ग्वाल नृत्यः- ग्वाल कृष्ण के सखा थे। ग्वाल पीले वस्त्र पहन कर सिर मुकुट बांधकर बांसुरी बजाते है व घुघंरू पैरों में बांधते है। सुंदर सवैया भक्ति के, दान लीला के गीत गाकर कृष्ण ग्वाल का अभिनय करते है। लोग ग्वाल को दान दक्षिणा देते है।

बृजवासिनी नृत्यः- बुंदेलखण्ड क्षेत्र में बृजवासी नाम की एक जाति के लोग हारमोनियम व ढोलक के साथ गाते बजाते है। व अपनी स्त्री ब्रजवासिनी को नृत्य कराते है। गांवों में इस प्रकार नाच गाकर जीवकोपार्जन करते चलते है।

पारिवारिक नृत्यः- जब परिवार में शादी, पलना, मुंडन, कुआपूजन दस्टौंन आदि के शुभ अवसर आते हैं तो परिवार के पुरूष, स्त्रियों व रिश्तेदार नृत्य करके अपना आनंद प्रगट करते हैं। देवी देवताओं के मंदिर में स्त्रियाँ नृत्य करती है। बहू के आनें पर उत्सव में भी स्त्रियॉ नृत्य करती है। बारातों में सम्बन्धी पुरूष वर्ग भी अब नृत्य करनें लगे है। जो आधुनिक नृत्य होते हुये भी सामान्य रूप धारण करता जा रहा है। देवताओं के सम्मुख भी परिवार जन नृत्य करते है।

समूह नृत्यः- नई बह के आगमन पर प्रसन्नता में वर पक्ष की औरतें समूह नृत्य व फुटकर नृत्य कर अपनी प्रसन्नता प्रगट करतीं है। ढोलक में दादरे व मनोरंजक लोकगीत भी गाती है।

जुगिया नृत्यः- बुन्देलखण्ड में जुगिया (बाबा) नृत्य बड़ा प्रसिद्ध है। बारात चले जाने पर वर पक्ष के यहाँ एक जुगिया (बाबा) बनता है एक उसकी पत्नी बनती है और यहॉ दोनों का काल्पनिक विवाह सम्पन्न होता है। बाबा खूब प्रसन्न होता है, व नाचता है इस जुगिया नृत्य में बहुत सी औरतें साथ में अपना आनंद प्रकट करने हेतु गाती, बजाती व नाचती है।

मुखौटा नृत्यः- इस नृत्य में नृत्यकार बड़े–बड़े चेहरे, स्त्री पुरुष के रीछ, बंदर, घोड़ा आदि के लगाकर और अपना चेहरा ढककर वस्त्र पहनकर मुखौटा नृत्य द्वारा जनता का मनोरंजन करते है।

कठपुतली नृत्यः- कठपुतलियों में भी विभिन्न प्रकार के खेलों का प्रदर्शन कठपुतली नचानें वाले करते है। सूत्र की सहायता से अनेक उपदेशपरक कठपुतली नृत्य सूत्रधार प्रस्तुत करते है। पर्दे के पीछे से आवाज देकर कठपुतलियों के खेल को इनके नृत्य को आकर्षक वनाते हैं।

ढिमरयाई नाचः- यह प्रायः ढीमर जाति के लोगों में शादी शुभ अवसरों पर देखने को मिलता है। गान, तान , भजन तथा लोक–गीतों के साथ नर्तक नाचता है। गाता भी है। यह पुरुष होता है। स्त्री वेषधारी यह नृत्यकार ढोलक, मजीरां झींका व हारमोंनियम सांरगी के साथ नाचता हैं। यह लोक नृत्य विदूषक के साथ अच्छा लगता है। सजकर लोगों से पैसा प्राप्त करते है।

घोडा नृत्यः- शुभ अवसरों पर घोड़ा पालनें वाले अपने अपने घोड़ों का सुंदर नाच बताते है। घोड़ों को सजाते है। पैरों में घुंघुरू पैजनियाँ, झाझें आदि पहनाते है। व घोडा नाचते है। दो पैरों के वल भी घोडा का नृत्य दिखाकर मनोरंजन करते है। यह पहले घोड़ों को सिखाया जाता है।

रीछ व बंदर नृत्यः- जीवकोपार्जन के लिये गांव गांव में रीछ बंदर वाले नाच दिखानें आते हैं। बंदर व रीछ को पहले सिखाते हैं। व फिर उदर पूर्ति के लिये नाच नचाते हैं।

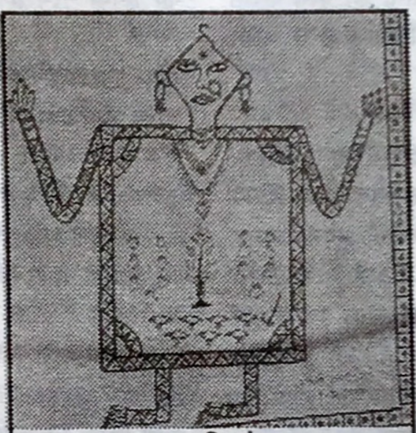
इस प्रकार बुन्देलखण्ड में लोक नृत्य द्वारा मनुष्यों का स्वस्थ मनोरंजन होता है। नृत्य की यह कला शाश्वत है।

ग्राम व पो0-स्यावरी (झांसी)

बुंदेली लोक चित्रकला : एक दर्शन

- डॉ हरीमोहन पुरवार "बुन्देलरत्न"

मानव ने जब से होश संभाला है उसने अपने शरीर की पुष्टता के लिये जहां भोजन की व्यवस्था की है वहीं अपने मन मस्तिष्क की रिक्तता को भरने का भी एक संतोषजनक उपक्रम किया है । यही क्रियाशील उपक्रम कला बन गया । तूलिका जब इस उपक्रम में माध्यम बनी और रंगों ने अपना ताना बाना बुना तभी चित्रकला की उत्पत्ति हुयी । इस चित्रकला को जब लोक जीवन द्वारा अंगीकार किया गया तब यह लोक भावनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर लोक चित्रकला के रूप में प्रतिष्ठित हुयी। गुफाओं की भित्री पर उकेरे गये तमाम पशु पक्षियों के चित्र उनके शिकार के दिनों से इस लोक चित्रकला की यात्रा प्रारम्भ हयी थी और आज की तमाम धाराओं को अपने में समाहित करते हुये तमाम क्षेत्रीय परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हुये स्थानीय चित्रकला के नाम से प्रसिद्धि पाई। बुन्देलखण्ड के जन मानस में रची–बसी यही चित्रकला बुन्देली लोक चित्र कला बनी जिसमें बुन्देलखण्ड के सामाजिक, आध्यात्मिक राजनैतिक एवं धर्मिक आयामों की छटा दृष्टिगोचर होती है। बुन्देली लोक चित्रकला में, चौक पूरना, अल्पना, भिति चित्र, चित्रपट, थोज, मेंहदी, महावर, लिपाई–पुताई आदि अनेक उपविधायें समाहित हैं।



हरछठ चित्रांकन

सौजन्य- श्रीमती सन्ध्या पुरवार

बुन्देली लोक चित्रकला में हमें लोक मानस के मन, हृदय की संवेदनाओं, शिक्षण, एवं पारम्परिक आस्थाओं के विभिन्न पहलुओं के दर्शन होते हैं। बुन्देली लोक चित्रकला की सभी उपविधाओं में सामाजिक मनोविज्ञान का दर्शन, सामाजिक समरसता हेतु हमारा मार्ग प्रशस्त करता है। इसमें छिपा दर्शन एवं मनोविज्ञान अनूठा है। आध्यात्म से ही दर्शन की पवित्र गंगा बहती है जिसमें गोते लगाकर जीवन के यथार्थ दर्शन से साक्षात्कार होता है और अद्वितीय परम आनन्द की प्राप्ति होती है। मानव की बुद्धि और भावों के प्रतिबिम्ब से द्वैत विष्शिटाद्वैत एवं अद्वैत को दृष्टि मिलती है। द्वैतवाद के अर्न्तगत ब्रह्म, तथा जीव को अलग अलग ही माना जाता है जबकि विशिष्टाद्वैत में ब्रह्म निराकार मानते हुये, उसी को सर्वोपरि स्वीकार किया जाता है तथा जगत को मिथ्या मानते हैं। इसी कारण अद्वैतवाद में निर्गुण को सगुण साकार मानते हुये उसी की पूजा अर्चना वन्दना से मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रयास किया जाता है। अद्वैतवाद में ब्रह्म को निर्गुण निराकार मानते हुये, उसी को सर्वोपरि स्वीकार किया जाता है तथा जगत को मिथ्या मानते हैं। इसी कारण अद्वैतवाद में निर्गुण ब्रह्म को सगुण ब्रह्म से ऊँचा मानते हुये उसे परमार्थिक सत्य के रूप में स्वीकार किया जाता है तथा ब्रह्म एवं जीव में कोई भेद नहीं माना जाता है। जीव ही ब्रह्म एवं ब्रह्म ही जीव है, की कल्पना को साकार स्वरूप प्रदान करता है यह अद्वैतवाद। दर्शन की दृष्टि से ब्रह्म जगत, माया एवं जीव ये चार ऐसे आधार हैं जिन पर विशिष्टा द्वैतवादी मार्ग में सगुण ब्रह्म की आराधना की जाती है तथा मुक्ति हेतु शरणागत, भगवत्कृपा तथा निश्छल भक्ति भावना ही आधारभूत है। बुन्देली लोक चित्रकला में दर्शन के प्रमुख चारों अवयवों (ब्रह्म, जगत, माया एवं जीव) का दिग्दर्शन हमें विविध माध्यमों से होता है। हरछठ, कजरी नौमीं आदि ऐसे भिति चित्र आलेखन हैं जिनको सर्वशक्ति सम्पन्न ब्रम्ह की शक्ति स्वरुपा महिला की आकृति के विशाल अमाशय में अन्य चित्रांकन कर ब्रह्म की सगुण सतता को स्वीकार किया जाता है । कजरी की नौंमी में नेवला पालना सर्प आदि माया के प्रतीक के रूप में जहां अंकित होते हैं वहीं पशुपक्षी, पेड़पौधे आदि जगत का प्रतिनिधित्व करते हैं। घट में जल होना जीव का द्योतक है। अतः लोक चित्रकला में बुन्देली जन मानस विशिष्टाद्वैतिवाद को न जानते हुये भी दर्शन के अवयवों को न जानते हुये भी, उनका अंकन कर अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्ति का परिचय देता है बुन्देली चित्रकला की तमाम उपविधाओं में हमें प्रतीकों के माध्यम से जिस दर्शन एवं सामाजिक नियमों का भान होता है वे निश्चितरूप से ग्राह्य बुन्देली लोक चित्रकला की विभिन्न उपविधाओं में दर्शन के विभिन्न घटकों का आभास होता है।

१. चौक पूरना - सभी मांगलिक कार्यों के अवसर पर त्योहारों पर इस क्षेत्र में चौक पूरे जाते है। गेहूं या चावल के आटे से वर्गाकार अथवा त्रिभुजाकार अथवा आयताकार आकृति बनाकर उसे विभिन्न रेखाओं से अलंकृत करके एक ऐसी सम्पूर्ण आकृति बनाई जाती है जिसके देखने मात्र से ही मन प्रफुल्लित हो उठता है। चौक के माध्यम से अतिथि अथवा देव आवाहन कर उन्हें आसन देने की मन भावना प्रगट होती है। देव गण जिस स्थान पर आसन ग्रहण करते हैं वह स्थान पवित्र हो जाता है और उस स्थान की रज से अनिष्ट का नाश होता है। इसीलिये पूजा अर्चना के पश्चात् सुहागवती स्त्रियां अपने पति के

दीर्घायु एवं संतान के उज्जवल भविष्य हेतु अपने आंचल के छोर से चौक को अंचराती हैं जिसे चौक अंचराना कहते है। चौक पूरना–पवित्रता, स्वच्छता का पूरक है और इसकी आकृति मन को प्रमुदित करती है। चौक पूरने में जगत की कल्पना साकार हो उठती है।

२. अल्पना :- गेहूं चावल के आटे का पानी में घोल बनाकर उसके द्वारा वर्गाकार अथवा त्रिभुजाकार आकृति बनाकर उसमें प्रकृति के पूरक पक्षियों, आस्था के सोपान देव जनों एवं विभिन्न मन हर्षा ने वाली आकृतियों से उसे पूरित किया जाता है। अल्पना एक माध्यम है ईश्वर के श्रीचरणों में मन एकाग्र करने का, मन को आनन्दमय करने और समाज को प्रदूषण मुक्त करने का । अल्पना सिर्फ पवित्र स्थान पर ही उकेरी जाती है । तथा यह 'माया' का स्वरूप दर्शाती है ।

3. भित्ति चित्र :- विभिन्न धार्मिक उत्सवों पर दीवार पर विभिन्न रंगों की सहायता से ये चित्र बुन्देली महिलाओं द्वारा अंकित किये जाते हैं। इन चित्रों में सम्बन्धित उत्सव के कथानक का दृषांकन होता है तथा कुछ सर्वभौम सत्य के प्रतीकों का भी अंकन होता है। इन भित्ति चित्रों के माध्यम से जहां शिक्षा दी जाती है वहीं कोमल मनों पर अपनी प्राचीन वैभवमयी संस्कृति के आयामों को भी अंकित किया जाता है। चित्रों के माध्यम से शिक्षण क्रिया विधि अत्यन्त सुगम हो जाती है। भित्ति चित्र भी शिक्षण का ही माध्यम है। भित्ति चित्रों में जो चिन्ह अंकित किये जाते हैं वे उद्देश्यपरक होते हैं। बुन्देली लोक चित्रकला में प्रयुक्त चिन्ह दर्शन के प्रमुख तत्वों की ओर इंगित करते हैं।

अ– सूर्य चन्द्रमा का अंकन –

हम जब जिस सौर्य मण्डल में रह रहे हैं उसमें सभी कुछ सूर्य के आस–पास ही है। वह थी हमारी शक्ति का आदि स्रोत है। उसके द्वारा ही हमें प्रकाश मिलता है। तम का नाश होता है। एक ऐसा सत्य जो कि शाश्वत है। चन्दमा भी सामाजिक कलाओं का पूरक है तम की किरण से मार्ग प्रशस्त करता है और मन की उद्विग्नता को शीतलता प्रदान करता है। प्रकृति के ये दोनों शाश्वत चिन्ह अंकित कर प्रकृति की शाश्वतता का भान कराया जाता है और उन्हीं को प्रेरणा स्रोत बनाकर इनकी ही भांति शाश्वत बनने के लिये समाज में कुछ कर गुजरने का शिक्षण दिया जाता है।

ब– ऊँ का अंकन –

ऊँ तो साक्षात् ब्रह्म ही है। उसके अंकन से ब्रह्म से साक्षात्कार एवं उसके माया भ्रम से निकलकर सत्य को समझने का एक विकल्प है।

स– साँतिया का अंकन –

भित्ति चित्रों मे सांतियों का अंकन विशेष दर्शन युक्त है। सतिया का चिन्ह स्वयं में भारतीय सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण दर्शन को अपने में समाहित किये हुये हैं। सांतिया में चार भुजायें होती हैं जो कि मानव जीवन की चार अवस्थाओं, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास का जहां प्रतीक है वहीं अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष रूपी चारों स्थितियों का भी दिग्दर्शन कराती है। ये चारों भुजायें वर्गाकार रूप में सीधे चक्राकार स्थिति को बनाती है। परिणाम स्वरूप यह चक्राकार स्थिति हमें भारतीय जीवन मूल्यों के अनुसार सदैव कार्यशील होने की प्रेरणा देतीं है। इन चारों भुजाओं के आपसी चक्राकार स्थिति से चार खुले हुऐ प्रकोष्ठ तैयार होते हैं । जिनमें बिन्दु स्थित रहता है। यह बिन्दु मानव का प्रतीक है। अस्तु मानव को चारों अवस्थाओं में अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष हेतु सतत् प्रयासरत रहने का अनोखा प्रेरणा पुन्ज है यह सांतिया। उसके अंकन से जगत का लोक के मन हृदय पर सार्थक प्रभाव डालने का एक सशक्त उपक्रम है।

द– पशुपक्षियों एवं पेड़ पौधों का अंकन –

इन भित्तिचित्रों में पशुपक्षियों एवं पेड़पौधों का चित्रण भी खूब मिलता है। वस्तुतः पशुपक्षी पेड़–पौधों प्रकृति के प्रतीक हैं। इसके अंकन से यह शिक्षा देने का प्रयास किया जाता है कि दुनिया के माया जाल में रहते हुये प्रकृति के साथ तारतम्य सदैव बनाये रखना चाहिये जिसे प्रकृति चक्र संतुलित बना रहे और समाज में प्रदूषण बाधा कम से कम हो।

य– कलश अथवा घट अंकन –

कलश अथवा घट पूर्णता का प्रतीक है। इसके अंकन से ये शिक्षा देने का प्रयास किया जाता है कि सम्पूर्णता मन के संतोष से आती है। मन यदि संतोषी होगा तो मन माया के मोह जाल को पार करता हुआ इस ब्रह्माण्ड की परम सम्पूर्ण सत्यता का आभास शीघ्रता से कर लेगा। घट का पात्र होता है जिसमें जल भरा रहता है। जल की कोई आकृति नहीं होती है इसे जैसे पात्र में रखा जाये यह उसी की आकृति ग्रहण कर लेता है। इस घट का आध्यात्मिक

पक्ष भी यही है कि जल जो कि आत्मा का सूचक है तथाघट–शरीर का। यह आत्मारूपी जल जिस घर रूपी शरीर में रहेगी, यह उसी की आकृति ले लेगी और जब घट टूट जावेगा तो यह जल रूपी आत्मा पुनः मुख्य जल से साथ मिलकर एकरस हो जावेगी। अर्थात घट का अंकन जो पूर्णता का संदेश देता है। वहीं वह यह भी निर्दिष्ट करता है कि शरीर पर मोह मत करो तथा उसमें व्याप्त जल रूपी आत्मा के तत्व को पहिचानो। लोक जीवन में आध्यात्मिक गूढ़ता के इस रहस्य को समझाने का एक सुलभ माध्यम है घट कलश का अंकन।

र– *देव अंकन –*

इन भित्ति चित्रों पर विभिन्न देवी देवताओं का भी अंकन किया जाता है। ये देवी देवता गण भी अपने शरीर की आकृति से हमें सामाजिक शिक्षा देते हैं। जो कि साकार ब्रह्म के द्योतक हैं।

त्रिदेव अंकन :-

कहीं–कहीं पर तीन पुतरियां बनाकर उनके नीचे ब्रह्मा, विष्णु, महेश लिख दिया जाता है। ये तीनों देव भारतीय दर्शन में आदि गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ब्रह्म मन मे ज्ञान का उदय करते हैं, विष्णु उस ज्ञान को पालते हैं तथा महेश अज्ञान का विनाश करते हैं। त्रिदेव अंकन यह इंगित करता है कि हमें अज्ञान के तम से निकलकर ज्ञान की ज्योति को जलाकर उसको अपनाकर ही अपना जीवन निर्वाह करना चाहिये।



करवा चौथ आलेखन

सौजन्य- श्रीमती सन्ध्या पुरवार

श्री गणेश अंकन :-

बुन्देलखण्ड में उत्सवों पर जो भित्ति चित्र आलेखन होता है उसमें श्री गणेश के चित्र का अंकन बहुधा होता है। साथ ही साथ विवाह आदि शुभ अवसरों पर भी दीवाल पर श्रीगणेश का अंकन किया जाता है। श्री गणेश का स्वरूप अत्यन्त भाव प्रधान एवं सामाजिकता से ओतप्रोत है। श्री गणेश का ठिगना स्वरूप हमें यह शिक्षा देता है कि समाज में व्यक्ति को छोटा बनकर ही रहना चाहिये जिससे समाज के प्रत्येक व्यक्ति व वर्ग का स्नेह प्राप्त हो सके। श्रीगणेश का सिर गज का है जो बुद्धि धैर्य व गम्भीर का द्योतक है। श्री गणेश का उदर बड़ा है जो कि यह प्रेरणा देता है कि समाज में रहते हुये व्यक्ति को सबकी सुनकर उसे चुपचाप उदरस्थ कर लेना चाहिये। श्री गणेश मोदक प्रिय है। अलग–अलग बूंदी को एक साथ मिलाकर मोदक बनाकर, उसे ग्रहण करने से जिस प्रकार से शारीरिक पुष्टता प्राप्त होती है उसी भांति समाज के सभी बिखरे पड़े लोगों को एकत्रित कर सामाजिक कार्यों में लगाने से समाज में प्रगति रूपी पुष्टता दिखलाई पड़ती है। श्री गणेश की सवारी चूहा है जिकी प्रवृत्ति होती है कि वह वस्तुओं को कुतर कर नष्ट कर देता है कि समाज का तोड़ने वाली शक्तियों पर धीरज तथा गम्भीरता का अंकुश लगाकर उन्हें नियंत्रित किया जा सकता है तथा उनका सकारात्मक योगदान लिया जा सकता है। अतः श्री गणेश के चित्रांकन का यह दर्शन है समाज में विनम्र रहकर सबको साथ लेकर चलना चाहिये।

श्री दुर्गा अंकन :-

कुछ उत्सवों पर भित्तिचित्रों मे मां दुर्गा का भी अंकन किया जाता है। मां दुर्गा का भव्य स्वरूप जहां माता के दिव्य प्रेम की अनुभूति कराता है वहीं उनका क्रोधी स्वरूप दुष्टता के दमन का भी प्रतीक है। "नारी" समाज का एक ऐसा अंग है जिके अभाव में समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वह बुन्देलखण्ड में तो प्रेरणा स्रोत है। श्री दुर्गा का अंकन समाज में नारी के स्थान एवं उसके अलौकिक स्वरूप से कर्तव्य की प्रेरणा ग्रहण करने को बाध्य करता है।

शंख दीप आदि का अंकनः-

कुछ कुछ भित्ति आलेखनों में शंख का अंकन किया जाता है। शंख की ध्वनि से बैक्टीरिया का नाश होता है तथा भूत बाधा भी दूर होती है। अतः शंख ध्वनि करने की प्रेरणा इस अंकन से मिलती है। दीप तम में प्रकाश का वाहक है जिसके अंकन का यह सार है कि अज्ञान को समाप्त कर ज्ञान के ज्यातिर्मय प्रकाश में जीवन यापन करना चाहिये। भित्ति चित्र आलेखनों की एक विशेषता यह है कि ये अधिकांश भित्ति चित्र जब

बनाये जाते हैं तो एक महिला उदर भाग में ही वृतोत्सव से सम्बन्धित अन्य अंकन किये जाते हैं यह महिला की आकृति प्रकृति के सर्वशक्तिमान नियंता ब्रह्म की शक्ति होती है तथा उसे ही सर्वशक्ति सम्पन्न मां भवानी का स्वरूप माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन भिति चित्रों के अंकन के समय तथा बाद में भी मन के अंदर यह अटूट विश्वास होता है कि इस विषय जो कुछ होता है वह सब प्रकृति देव के अनुसार ही होता हैं और हम सभी मात्र कठपुतली बनकर अपने अपने चरित्रों को अभिनीत करते हैं। यह भित्तिचित्र के अंकन का वेदान्तिक दर्शन निश्चित रूप से लोक जीवन को माया मोह से विलग करके कर्मण्ये वाधि ाकारस्ते माँ फलेशु कदाचिन्'' के मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करता है। गीता के कर्मयोग को लोक जीवन का एक अभिन्न अंक बनाने का यह चित्रांकन एक अभिनव प्रयोग है जो लोक जीवन की शाश्वत्ता को मूर्त रूप देता है। लोक द्वारा अपनाई यह लोक चित्रकला जहां सामाजिक नीति निर्धारण का दिशा बोध कराती है वहीं आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग भी प्रशस्त करती है। दीपावली, भैया दूज, कजरी की नौमीं, नागपंचमी, गुरूपूर्णिमा, होली, आसमाई पूजन, हरि ज्योति पर्व, कुनघुसी पूनौ, आदि उत्सवों पर बुन्देलखण्ड में महिलायें विभिन्न रंगों के माध्यम से आलेखन करके अपनी इस लोक चित्रकला को अमरत्व प्रदान करती है।

४. चित्रपट :- कागज अथवा कपड़े पर चूना, हल्दी, आलता आदि की सहायता से पूजा में काम लाये जाने वाले चित्रों का अंकन किया जाता है। कृष्ण जन्म के समय अष्टमी के दिन श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं को कागज पर अंकित कर उनका पूजन किया जाता है। यह चित्र ''कन्हैयाजू का पद'' के नाम से जाना जाता है। चित्रपट के माध्यम से थोड़े से स्थान पर बहुत कुछ अंकित करके, शिक्षा देने का माध्यम हैं ये चित्रपट। उदाहरणार्थ श्री कृष्ण कंस वध, कालिया नाग मर्दन आदि लीलाओं के अंकन से अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार के खिलाफ बच्चों में लड़ने की प्रवृत्ति पैदा करना ही इस चित्रपट का वास्तविक मनोविज्ञान होना चाहिये।

५. थापे - विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर अपने प्रियजनों के साथ ठिठोली का एक दौर चलता है जिसमें चावल के आटे को हल्दी तथा चूना के साथ रंग कर हाथों की हथेलियों में लगाकर अपने प्रियजनों की पीठ पर हथेली की छाप को अंकित किया जाता है। इसे ही थापे लगाना कहते हैं। मेरे विचार से थापे पंच परमेश्वर का प्रतीक है इन्हें लगाकर पंच परमेश्वर की उपस्थिति मान कर उन्ही के साक्ष्य में शुभ कर्म सम्पादित किया जाता है। अतः थापे मात्र हाथ की छाप और ठिठोली ही नहीं है वरन् इससे सर्वसत्ता सम्पन्न ईश्वर की उपस्थिति महसूस करने का विकल्प खुलता है।

६. मेहंदी, महावर - शुभ अवसरों पर स्त्रियां अपने हाथों पैरों में मेहंदी रचाती हैं। यह मेहंदी विशेषकर वर्षा ऋतु में रचाई जाती है। मेंहदी की पत्तियों का यह आयुर्वेदिक गुण है कि उनकी तासीर सम होती है जो कि बदलते मौसम में रक्त प्रवाह को नियंत्रित करता है। मेंहदी रचाने में स्त्रियां हाथों तथा पैरों में विभिन्न प्रकार के बेल बूटों पुष्पों आदि का अंकन करती हैं। पैरों पर महावर लगाकर पैर के पंजों का श्रृंगार किया जाता है। महावर लगाने से पैर में फटने वाली बिवाई से आराम मिलता है। कवि की महावर सम्बन्धी ये पंक्तियां बहुत सुन्दर हैः–

पांय महावर दैन कौं नाईन बैठी आय ।
फिर फिर जानि महावरी, एड़ी मीड़ित जाय ।।

७. लिपाई-पुताई - बुन्देलखण्ड के ग्रामीण अंचल में घरों को स्वच्छ रखने हेतु दीवारों पर पुताई एवं फर्श पर गोबर से लिपाई की जाती है। यह लिपाई–पुताई बड़ी ही कलात्मक होती है। कलई, गेरू के रंगों का प्रयोग करके चौक कमल पुष्प, सितारा आदि अंकन अत्यन्त चिन्ताकर्षक होता है। मांगलिक अवसरों पर विशेष रूप से लिपाई–पुताई होती है। तभी तो कहा जाता है –

गईया को गोबर मंगाओ बारी सजनी
ढ़िग दै आंगन लिपाओ महाराज
मुतियन चौक पुराओ बारी सजनी
आंगन कलस धराओ महाराज

बुन्देलखण्ड के लोक मानस में रची बसी लोक चित्रकला सामाजिक एवं आध्यात्मिक दर्शन से ओत प्रोत हैं ।

निदेशक-
बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई

बुंदेली: दशा और दिशा

-पं० गुणसागर "सत्यार्थी"

"कभी–कभी हम अपनी परंपरा, इतिहास अथवा जन–श्रुति को इतना स्वीकार कर लेते हैं कि उसकी वास्तविकता से परिचित नहीं होना चाहते और उसके ब्योरों में जाने में हमें आलस्य आने लगता है। जातीय स्मृतियों की अवचेतन अनुगूंज ही हमारे लिए इतिहास बन जाती है और उसे जनश्रुति का दर्जा देकर हम अपनी देशभक्ति अथवा संस्कृति–प्रेम का गर्व करते रहते हैं। ***हमारे लिए दीवानगी एक बड़ा और प्रिय मूल्य बन जाता है और इसकी तुलना ज्ञान अथवा वास्तविकता एक उपेक्षणीय और अकाम्य वस्तु।*** हम सामान्यतः अपने परिवेश को पहचानते तो है, उसे जानते नहीं हैं।..."

डॉ0 कान्ति कुमार जैन के इस उद्धरण में कुछ शब्द मैंने मोटे अक्षरों में केवल इसलिए लिखे हैं कि बुंदेली भाषा के प्रति आज जो दीवानगी ही मात्र हमें दिखाई दे रही है उसकी तुलना में उसका ज्ञान अथवा यथार्थ जाने बगैर हम कहीं दिशाहीन तो नहीं दौड रहे हैं? तब तो उपरियुक्त उद्धरण भी ***"बुन्देलीः दशा और दिशा"*** विषय की चर्चा में अवश्य हमारे लिए प्रेरक सिद्ध होता है।

बुन्देली के प्रति दीवानगी ने हमें कहां से कहां पहुंचा दिया? इसके अनेक प्रमाण हमारे सामने हैं। जैसे कि एक स्वयं–भू बुन्देली के महाकवि जो एक मठाधीश भी बने हुए है नें अपनी स्वयं–भू अखिल भारतीय स्तर की बड़ी संस्था के बैनर पर "बुन्देली के प्रतिनिधि कवि" शीर्षक से 51 बुन्देली कवियों का परिचय सहित वृहत संकलन प्रकाशित किया है। वह संकलन जब अनायास मेरे हाथ में आया तो मुझे लगा कि इस ग्रन्थ का संपादक गाँव के गमैयों द्वारा ऊबड़–खाबड़ बोली जाने वाली बोली को ही बुन्देली मान बैठा है। अन्यथा बुन्देली को बोली–उपबोली या विभाषा के स्तर से उठा कर एक साहित्यिक भाषा का स्तर जो दिया गया उसके इतिहास एवं क्रमिक विकास की ओर भी दृष्टि गई होती। वह भूल गए कि बुन्देली का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास हिन्दी के पहले महाकवि विष्णुदास ने किया था। ईसुरी वगैरह तो बहुत बाद के व्यक्ति हैं। विष्णुदास का रचना काल पन्द्रहवीं सदी का पूर्वार्ध ठहरता है और उनके द्वारा प्रणीत "महाभारत" बुन्देली भाषा का प्रथम ग्रन्थ ठहरता है। इसी आधार पर डॉ0 हरिहर निवास द्विवेदी मानते हैं कि बुन्देली और बृजभाषा दोनों का ही विकास मध्यदेशीय मध्ययुग की "भारव" जिसे 'ग्वालेरी' भी कहते थे से हुआ है। है भी सच, साहित्यिक भाषा का विकास गमैंयों की ऊबड़–खाबड़ बोली से कभी नही होता । वह तो साहित्यिकारो द्वारा परमार्जन के बाद सृजन से होता है और मध्ययुग में मध्यदेश का कला–साहित्य और संस्कृति की केन्द्रीय धुरी ग्वालियर थी। उस दरबार में साहित्यिक भाषा का भी विकास हुआ और संगीत का भी। तोमरों के पतन के बाद वहां के सृजनधर्मी व्यक्तित्व आश्रयविहीन हुए और ग्वालियर से पलायन किया कुछ वृन्दावन पहुंच कर भक्ति भाव में लीन हो गए। तो उसी समय ओरछा में बुन्देला साम्राज्य का अभ्युदय हो रहा था, तो कुछ लोग ओरछा आकर आश्रय पा गये। दानों वर्गो के लोग अपने साथ साहित्यिक भाषा के रूप मे "ग्वालेरी" को ले गये। स्थानीय टोन के प्रभाव के अंतर के सिवा आज बुन्देली और ब्रजभाषा में किंचित कोई अंतर नहीं दीखता। वही व्याकरण वही शब्द सम्पदा और वही थोड़े बहुत अंतर से लोक साहित्य। इस प्रकार हम पाते हैं कि बुन्देली भी साहित्यिक भाषा के रूप में ब्रजभाषा की भांति "मध्ययुगीन हिन्दी" ही है। इसे साहित्यिक भाषा के रूप मे स्थापित करने वाले ओरक्षा दरबार के अन्तिम "राज कवि" स्व0 मुन्शी अजमेरी "प्रेम" जिनका वास्तविक नाम श्री प्रेम बिहारी था व उनके बुन्देली शिष्य स्व0 राम प्रसाद शर्मा उपरीन, व ज्येष्ट पुत्र पं0 गुलाबराय जैसे न जाने कितने बुन्देली के कवि जिन्होंने बुन्देली का प्रचुर मात्रा में भंडार भरा है उक्त वृहत संकलन में नदारत पाये गये और ऐसे लोग बुन्देली के प्रतिनिधि कवि बना दिये गये जिन्होंने कभी कभार भूले बिसरे दो या तीन रचनायें जीवन में कुल जमा बुन्देली की तुकें जोड़–जाड़ ली हों। लगता है इस संकलन मे मंच से तालियां बजवानें बालों को ही बुन्देली का प्रतिनिधि मान लिया गया है। मैंने यूं ही पुस्तक को खोला तो पृष्ठ क्र0 48 पर "दो कल छड़ी" शीर्षक से जो पंक्तियां पढ़ी तो आँखे फटी की फटी रह गई कि इसमें बुन्देली कविता का लावण्य व यथार्थ कहॅा है ? क्या ऐसे संकलनों से बुन्देली की दशा किसी अच्छी दिशा की ओर बढ़ सकेगी ? देखिए वह कलछड़ी–

बुन्देलखण्डी
हैज द प्लेज
टु वास फेस
एण्ड टेक करूला
दैन ईट "खुरमा" एण्ड "ठडूला " । "

बुन्देली के प्रति ऐसी दीवानगी भी किस काम की ? जो बुन्देली जैसी सरस एवं लावण्यु मुक्त, समर्थ, साहित्यिक भाषा को ऐसे भ्रष्ट संकलनों के प्रकाशन से अधःपतन की ओर ले जाये। मात्र इतना ही नहीं, ऐसे दीवानों का मानना यह भी है कि चूंकि बुन्देली में गद्य साहित्य का अभाव है इसीलिये वह साहित्यिक

भाषा के रूप मे स्थापित नहीं हो सकी। बुन्देली केवल लोकगीतों व लोकसाहित्य तक सीमित एक गमैया – बोली है ....वगैरह । अतः बुन्देली की प्रकृति के विरुद्ध उसमे बलात गद्य लिखकर एक बुन्देली गद्य संकलन 'बांके बोल बुन्देली के' शीर्षक से छापा गया। बुन्देली के ऐसे दीवानों सें मेरा विनम्र प्रश्न है कि मध्ययुगीन हिन्दी के रूप मे साहित्यिक भाषा के सिंहासन पर विराजमान ब्रजभाषा मे क्या निबंध, उपन्यास, कहानी आदि बिधाओं मे उन्होंने गद्य पढ़ा है? जब ब्रज भाषा अपने पद लालित्य की दम पर एक साहित्यिक भाषा के रूप में दम–खम से स्थान ले सकती है तो बुन्देली क्यों नही ले सकती? उसे बलात् गद्य साहित्य की अपेक्षा क्यों करनी चाहिए ?

घूम–फिर कर हम पुनः वहीं आ जाते है कि बुन्देली की दीवानों की कमी नहीं है उनकी तो भीड़ खड़ी है अतः उस भीड़ के कोलाहल में सत्यार्थी की सच्चाई को कोई सुनने वाला नहीं हैं। वे गॉव के गमैयों द्वारा बोली जाने वाली बोली को बुन्देली मान कर जब ठढूला और करूला जैसी तुकों को बुन्देली की प्रतिनिधि कविता मानेंगे तो भला पद लालित्य की आशा कैसे की जा सकेगी ? इसी सन्दर्भ में कुछ बुन्देली कवियों के उद्धहरणों को देखें –

पहला उदाहरण :–

"नईं जानें का हॉन लगौ
मोरी खटिया पे लगी मसैरी में
मखा खौयलें परसों ।
(डॉ0 श्याम 'सुन्दर दुबे) हटा दमोह'

दूसरा उदाहरणः–

"...महुआ–बेर यहॉ की मेवा,
बहुरी–सतुआ होत कलेवा ,
तऊ यहॉ के ज्वान फौज में ,
करत देस की हरदम सेवा। ....."
(स्व0 भगवतीप्रसाद निगम)बरहरा (हमीरपुर)

तीसरा उदाहरणः–

"....इन औरन नें करौ कलेऊ
धरौ काल कौ बासौ।
मो खों तौ भूखई सी नइयों
अपनों करौ गियासों।......
(कैलास मडवैया वानपुर)

उपर्युक्त तीनों उदाहरणों से एक–एक शब्द मैं बुन्देली प्रेमियों के सम्मुख रख रहा हूँ कि वे इन शब्दों का शब्दार्थ बतावें वे शब्द है– मखा खौयलें, बहुरी और गियासौ वगैर सन्दर्भ के शब्दार्थ कुछ कठिनाई से होता है। इसलिये बुन्देली की कथित कविता में उनके प्रयोगों को भी प्रस्तुत किया गया है। बेशक यह शब्द निरर्थक नहीं है। उनके अपने सीमित क्षेत्र में गमैंयों द्वारा बोले भी जा रहे हैं। परन्तु उनका प्रयोग अति सीमित क्षेत्र में होने से वे बोली से भी नीचे उप बोली तक ही सीमित है। उन्हें भाषा तक लानें में बहुत मसकत करनीं पड़ेगी। इन तीनों शब्दों का शब्दार्थ मैनें उसी सीमित क्षेत्र के लोगों से जाना जो इस प्रकार है:–

मखाखौंयलें अलख सबेरे (दमोह जिले का हर क्षेत्र) , बहुरी– भुंजा अनाज (राठ का क्षेत्र) और ग्यासौ– ध्यान, खबर (बानपुर क्षेत्र) विनम्र प्रश्न यही है कि यमुना से लेकर नर्मदा तक और चम्बल से लेकर टोंस नदी तक फैले भू–भाग बुन्देलखण्ड का प्रतिनिधित्व क्या ऐसी अति क्षेत्रीय शब्दावली की कथित कविताऐं कर सकेंगी?

बुन्देली की आज बेशक यही दशा है जो अपनी–अपनी ढपली और अपना–अपना राग बनकर ठिठुर गई है। यदि बुन्देली को साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित करना है तो उसके यथार्थ को दीवानगी से हटकर समझना होगा। अन्य स्थापित भाषाओं से कंधें से कंधा मिलाकर चलना होगा व देखना होगा कि वे किस पगडंडी से पैदल चल राज सिंहासन तक पहुंची है राजस्थान भी बहुत बडा भू–भाग है जो भौगौलिक दृष्टि से प्रायः दो भागों में विभाजित है मेरु भाग जिसे मेवाड़ कहते है और मरू भाग जिसे मारवाड़ कहते हैं इन दोनों भागों में हाड़ौती, मेवाड़ी, मारवाड़ी, खाडाली, गोडवाड़ी....आदि अनेक बोलियॉं प्रचिलित है। परन्तु राजस्थान के सृजनशील साहित्यिकारों नें बोलियों और क्षेत्रीय प्रभावों से ऊपर उठकर राजस्थानीं को साहित्यिक भाषा – डिंगल रूप में ऐसा विकसित किया है जो समूचे राजस्थान का प्रतिनिधित्व करती है। ठीक इसी प्रकार हम ब्रजमंडल के किसी भी गॉव में जाकर देखें कि वहॉं के ग्रामवासी जो बोली बोलते हैं वही ज्यों कि त्यों आज तक किसी ब्रजभाषा के कवि ने नहीं लिखी। यदि ब्रजभाषा के कवि भी आज के कथित बुंदेली कवियों की तरह गमैंयों की बोली में तुकें जोड़ते होते तो ब्रजभाषा भी बुन्देली की तरह कभी भी एक प्रतिष्ठित साहित्यिक भाषा का रूप नहीं ले सकती थी। तो क्यों नहीं हमें राजस्थान और ब्रजभाषा के कवियों से प्रेरणा लेकर बुन्देली को केवल पद लालित्य की कसौटी पर खरा सिद्ध करने की दिशा में कमर कस लेना चाहिये? बुन्देली को अति ग्रामीण गमैंयों की बोली से व क्षेत्रीय प्रभावों से ऊपर उठ कर एक ऐसा मानक स्वरूप निखारना होगा जो यमुना से लेकर नर्मदा तक और चम्बल से लेकर टोंस नदी तक फैले सम्पूर्ण बुंदेलखण्ड की प्रतिनिधि बुन्देली हो। वही बुन्देली की प्रतिनिधि कविता होगी। उदाहरण के तौर पर सागर के क्षेत्र में 'नहीं' के अर्थ में 'नें' का प्रयोग बोल चाल में होता है। मै नहीं जाऊँगा को यदि सागर के क्षेत्रीय प्रभाव में "हम नें जैहैं" लिख दिया जावे तो सागर के बाहर सभी जगह पर वाक्य का अर्थ है

'में झुक जाऊँगा' ही लगाया जावेगा। क्योंकि 'नें जानें' का सार्वजनिक बुन्देली अर्थ झुक जाना अथवा गाड़ी में जुत जाना होता है– 'गाडी में बेला नें दो।' तब यह बेहद जरूरी है कि लिखित भाषा में यदि, हम लिखें कि 'हम ना जै है' अथवा 'हम नँईं जै हैं' तो इसे समूचा बुन्देलखण्ड एक ही अर्थ में स्वीकार करेगा। ठीक इसी प्रकार ललितपुर के क्षैत्र में एक वचन को भी बहुवचन में बोलते है जैसै– 'बुखार चढ़े' मानों एक नहीं बहुत से बुखार एक साथ चढ गए हों। कहाँ तक कितने उदाहरण दें? बुन्देली के प्रति दीवानगी की राह छोडकर हमें गहरे पानी पैठने की जरूरत है और बुन्देली का एक सर्वमान्य स्वरूप बिकसित कर बुन्देली का भंडार भरना ही होगा। बुन्देली के पूर्ववर्ती कवियों में विष्णुदास, आचार्य केशव, ईसुरी, मुशी अजमेरी, 'प्रेम' नाथूराम माहौर जैसे कवियों की बुंदेली को आदर्श मानकर चलना होगा। यह नहीं कि यदि ईसुरी नें लिखा था– कच्ची भींत उठी माटी की छाई फूल चारे की....। तो वह मूर्ख था उसे बुंदेली का ज्ञान नहीं था। चूंकि हमारे गांव का अनपढ गमैंया मजदूर भींत को 'भींट' या 'भींठ' बोलता है तो हम उसे ही प्रमाण मानकर लिखेंगे। –

"... आंगन में फतकुल तुरई जमीं, भींटन बौलारे बढन लगे।..."

(कैलाश मडवैया)

वे जानते है कि असल बुन्देली वही है जो अनपढ गमैयां बोल रहा है जबकि साहित्यिक भाषा के रूप में बुन्देली का विकास उस मार्ग पर कभी नहीं होगा भाई आप गद्य लिखें या पद्य । बुंदेली को बोली के स्तर से ऊपर क्षेत्रीय प्रभावों से बचाते हुए परिमार्जित कीजिए, यही बुंदेली की सही दिशा होगी।

कुण्डेश्वर, टीकमगढ़

बुन्देलखंड का विकास क्यों नहीं ....?

-महेन्द्र कुमार 'मानव'

बुन्देलखंड ऐतिहासिक, पुरातात्विक, साहित्यक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत समृद्ध है। लेकिन बुन्देलखण्ड बहुत पिछड़ा हुआ है और उसका विकास नहीं हुआ है। विकास क्यों नहीं हुआ इसके कारणों पर विद्धानों और राजनेताओं को विचार करना चाहिए! माना जाता है कि भारत आपसी फूट के कारण गुलाम बना! वही हाल बुन्देलखंड का है! बुन्देलखंड में जहाँ वीर पैदा हुए, जिन्होंने सत्ता से लोहा लिया, वहां जयचंद भी पैदा हुए, जिन्होंने सत्ता से लोहा लिया एवं जयचंद भी पैदा होते रहे जो स्वार्थ के लिए सत्ता के गुलाम बन गये! मुगलकाल में जहां छत्रसाल ने मुगल सल्तनत से लोहा लिया वहीं ओरछा और दतिया ने मुगल बादशाहों के सामने घुटने टेक दिए! यह बात अलग है कि छत्रसाल का विद्रोह वैयत्तिक अनुभवों के आधार पर रहा हो! लेकिन अगल बुन्देलखण्ड के राजा एक होकर मुगल सल्तनत से लोहा लेते तो बुन्देलखंड की आजादी रहती। ब्रिटिश काल में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों से लोहा लिया। उस समय भी दूसरी शक्तियों ने उसका साथ नहीं दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि बुन्देलखंड पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। यह बात अलग है कि लक्ष्मीबाई के विद्रोह के पीछे रानी के वैयक्तिक कारवा रहे हों, विद्रोह तो असन्तोष के कारण ही उत्पन्न होता है। भारत का पहला स्वतंत्रता युद्ध सन् 1857 में हुआ, उसका कारण भी अंग्रेजों की फौज में असन्तोष था। जिसको अंग्रेज Munity का नाम देते हैं। अंग्रेजों ने बुन्देलखंड के शौर्य से घबड़ा कर ही बुन्देलखण्ड के टुकड़े किये। उन्होंने एक टुकड़ा यू0पी0 के साथ जोड़ दिया, एक टुकड़ा सी0पी0 के साथ जोड़ दिया और एक टुकड़ा बहुसंख्यक कमजोर राजाओं के कब्जों में रहने दिया। जिन्होंने आसानी से अंग्रेजों की गुलामी स्वीकार कर ली और बुन्देलखंड को छिन्न–भिन्न कर दिया।

इसलिए हमारे पिछड़ेपन का मुख्य कारण हमारा विखंडन है। यदि हम अपना विकास करना चाहते हैं तो हमें फिर से जुड़ना पड़ेगा। मध्य बुन्देलखंड में बुन्देलखण्ड के किस–किस हिस्से को शामिल करें? – इस प्रश्न पर बहुत वर्षों से विचार मंथन होता रहा है। हमारा सुझाव है कि बुन्देलखण्ड में उ0प्र0 का झांसी संभाग, म0प्र0 का सागर संभाग, सतना जिले का कुछ हिस्सा और चित्रकूट, एवं दतिया जिला रखा जाये। इस प्रकार बुन्देलखण्ड में 12–13 जिले हो जाएंगे। अभी इस भाग पर शासन उ0प्र0 सरकार और म0प्र0 सरकार का है, जब तक बुन्देलखण्ड पर दो सरकारों का शासन रहेगा तब तक बुन्देलखण्ड का विकास नहीं होगा। बुन्देलखण्ड के विकास के लिए उसे एक शासन के नीचे रखना होगा तथा उसके समग्र विकास की बात सोची जा सकेगी। यदि उ0प्र0 शासन और म0प्र0 शासन अपना–अपना हिस्सा अलग करने और नया बुन्देलखंड राज्य बनाने का विरोध करते हैं तो दोनों प्रदेशों के जन प्रतिनिधियों को बुन्देलखंड के विकास को दृष्टि में रखकर पृथक बुन्देलखंड राज्य बनवाने के लिए संघर्ष करना चाहिये।

-ई-१४०/१,प्रोफेसर कॉलोनी, भोपाल

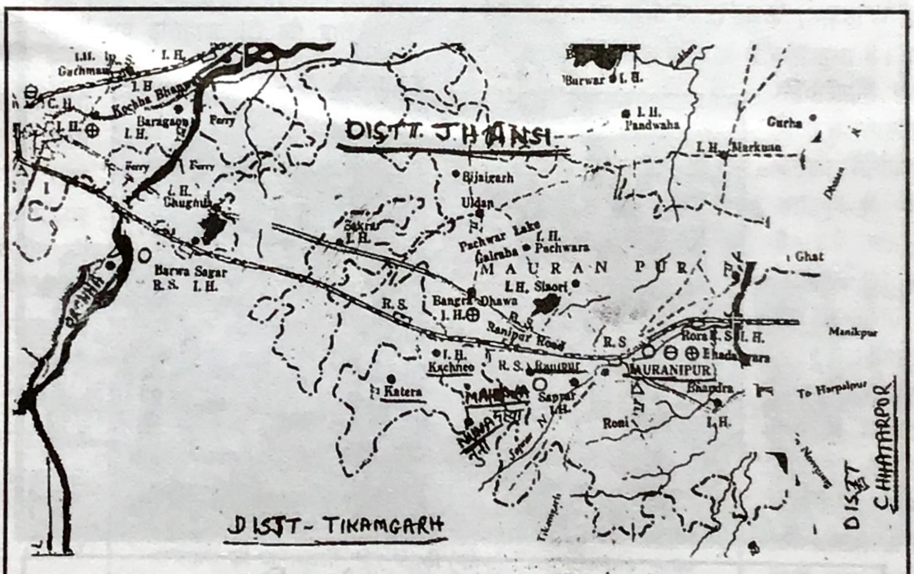
एक ऐतिहासिक भ्रंश –

छत्रसाल का जन्म स्थान – विवादों के घेरे में

– हरिविष्णु अवस्थी

इतिहास लेखन एक गहन अध्ययन एवं गंभीरतापूर्वक किए गए शोध का विषय है। इसकी एक सुनिश्चित वैज्ञानिक प्रक्रिया है । इतिहासकार द्वारा प्रस्तुत विषयवस्तु की प्रामाणिकता, इस बात पर निर्भर करती है कि उसने प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्धित, प्रकाशित, अप्रकाशित उपलब्ध कृतियों, पुराभिलेखों, समाज में विद्यमान साक्ष्यों, क्षेत्रीय आंचलिक एवं स्थानीय जन–श्रुतियों, दन्त कथाओं आदि को इतिहास की सुनिश्चित वैज्ञानिक कसौटी पर कस कर उसकी प्रामाणिकता पर कितना गंभीर मनन किया है। विषय वस्तु से सम्बन्धित स्थलों का व्यक्तिगत रूप से किया गया भ्रमण, निरीक्षण एवं विश्लेषण भी इसका एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है।

इतिहास के शोध–छात्रों का शोध कार्य किसी एक निश्चित कालखण्ड, एक निश्चित क्षेत्र तक ही सीमित होता है। शोधार्थी यदि समर्पित भाव से लगन के साथ शोध की सभी विधियों को अपनाते हुए शोध करता है, तो निश्चित रूप से वह समाज को खोजपूर्ण एवं प्रामाणिक जानकारियाँ उपलब्ध करा सकता है। आज वस्तु स्थिति इससे पूर्णतः भिन्न है। एक ओर जहाँ हर विषय के शोधार्थियों की संख्या बढ़ रही है वहीं दूसरी ओर शोध कार्य को बिल्कुल हल्का–फुलका कार्य मान लिया गया है। अब उद्‌देश्य शोध कार्य कर नये तथ्यों को प्रकाश में लाना नहीं अपितु ऐन–केन–प्रकारेण पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त करने की जुगाड़ बिठाना होता जा रहा है।



पुस्तकालय या घर में बैठकर, नये पुराने प्रकाशित ग्रंथों के पृष्ठ उलट–पलट कर, जूँठी सामग्री बटोरने की क्रिया को क्या शोध माना जा सकता है ? ऐसे शोध से क्या कुछ नया ज्ञान मिल सकेगा? यह प्रश्न गंभीर एवं विचारणीय है। शोधार्थी का दायित्व है कि वह समाज के समक्ष तथ्यपूर्ण, प्रामाणिक एवं अप्रकाशित सामग्री ही प्रस्तुत करें, न कि संशय एवं भ्रमपूर्ण सामग्री। यदि शोधार्थी द्वारा समाज को तथ्यहीन, भ्रामक तथा कपोल–कल्पित तथा सत्य से परे सामग्री परोसी गई तो वर्तमान समाज और आने वाली भावी पीढ़ी दिग्भ्रमित होकर भटकती रहेगी और वह कभी भी सत्य से साक्षात्कार नहीं कर पायेगी।

इतिहास के पुनरीक्षण एवं गणवेशात्मक अनुशीलन की आवश्यकता तो सदैव एवं निरंतर रहती है। निरंतर होने वाले अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप प्राचीन इतिहास साहित्य कला एवं संस्कृति के अनेक सोपान, नित नये रूप में प्रकाशित होते रहते है।

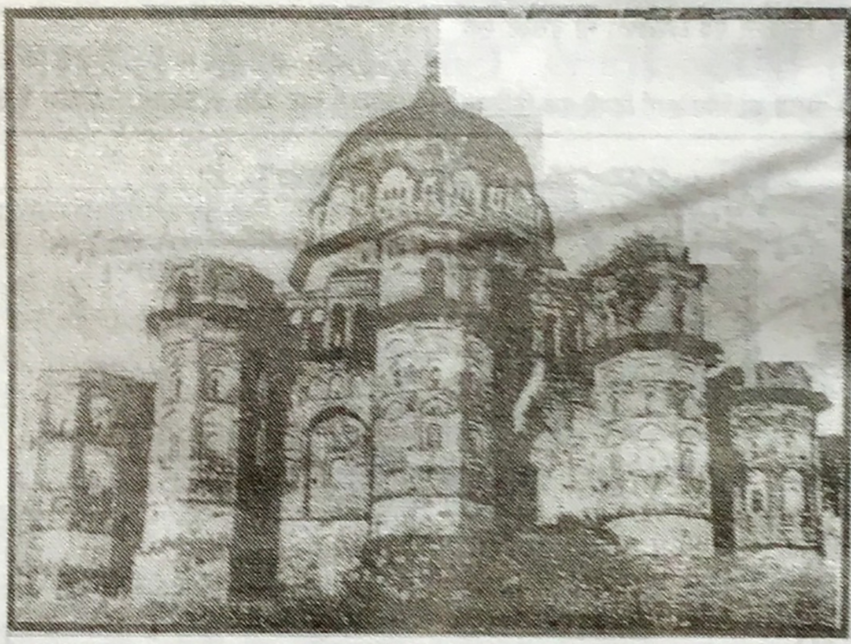
कभी–कभी ऐसा भी देखा गया है कि जब कोई अप्रकाशित महत्वपूर्ण तथा शोध के माध्यम से प्रकाश में आता है तो वह एक ही दिन में सैकड़ों वर्षों से स्थापित मान्यता को पूरी तरह पलट कर रख देता है।

आँचलिक इतिहास पर शोधकार्य किया जाना नितांत आवश्यक है, क्योंकि अंचलों से जनपदीय एवं जनपदीय से राष्ट्रीय इतिहास की रचना होती है। आँचलिक एवं जनपदीय इतिहास ही राष्ट्रीय इतिहास की रीढ़ है। संक्रमण काल से गुजर रहे इस युग में, इतिहास लेखन की सुनिश्चित प्रक्रिया के अनुसार शोध कर इतिहास लेखन किया जाना युग की मांग है। भावी पीढ़ी के सही दिशा निर्देशन हेतु इसकी महती आवश्यकता है। साहित्य एवं ऐतिहासिक क्षेत्रों के स्थापित विद्वान मनीषी यदि प्रमोदवश, तथ्यहीन एवं भ्रामक जानकारियों की पुष्टि करते रहे तो एक दिन सत्य का स्थान असत्य ग्रहण कर लेगा और सत्य को ग्रहण लग जायेगा।

"बुंदेलखण्ड भारत का ऐसा भू–खण्ड है, ऐसा प्रदेश है, जो बहुत कुछ उपेक्षित रहा है। वीरभूमि और साहित्य भूमि रहते हुए भी, थोड़ी बहुत यहाँ की बातें कतिपय कवियों द्वारा प्रकाश में

आई। इतिहास की दृष्टि से इतिवृत्त हिन्दी में और कुछ दूसरी एक दो भाषाओं में तथा अंग्रेजी के गजेटियरों में लिखा गया है। कटनी के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ. हीरालाल ने भी गजेटियर के रूप में ऐतिहासिक सामग्री बुन्देलखण्ड के विभिन्न जिलों की संकलित की थी। बाबू वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में भी बुंदेलखण्ड के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन पर खासा प्रकाश डाला है, किंतु विशुद्ध इतिहास की दृष्टि से इस दिशा में उल्लेखनीय ठोस काम नहीं हुआ है । काश, इस प्रदेश को यदुनाथ सरकार या गौरीशंकर हीराचंद ओझा जैसे इतिहास लेखक प्राप्त हुए होते। सौभाग्यवश अब बुंदेलभूमि के कुछ शोध–छात्र, अपने श्रमशील शोध–कार्यों द्वारा इस क्षेत्र के इतिहास, साहित्य, कला एवं संस्कृति को प्रकाश में लाने हेतु तन–मन से संलग्न है।

'हमें बुंदेलखण्ड के दीवाने नहीं जानकार चाहिए।... कभी–कभी हम अपनी परम्परा, इतिहास अथवा जनश्रुति को इतना स्वीकार कर लेते हैं कि उसकी वास्तविकता से परिचित नहीं होना चाहते हैं और उसके ब्योरे में जाने में हमें आलस्य आने लगता है। प्रो. डॉ. कांतिकुमार जैन का यह कथन ओरछेश रुद्रप्रताप के तृतीय पुत्र, उदयाजीत की जागीर 'महेबा' के संबंध में तो पूरी तरह खरा उतरता है। बुंदेलखण्ड के इतिहास से संबंधित दो प्राचीन काव्य ग्रंथ प्रमुख हैं। पहला है *'वीरचरित'* (वीरसिंह जू देव चरित्र) रचयिता केशव दास मिश्र, और दूसरा ग्रंथ है ***'छत्रप्रकाश'*** रचयिता हैं ***लालकवि (गोरेलाल)***। बुंदेलखण्ड में ओरछा नाम का राज्य सबसे प्राचीन था । इसके विखण्डन से ही बुंदेलखण्ड में अनेक छोटे–बड़े बुंदेला एवं गैर बुंदेला राज्यों की स्थापना हुई। इसी ओरछा राज्य के एक जागीरदार के वंशज छत्रसाल थे, जिन्होंने पन्ना नामक राज्य की स्थापना की थी।



महाराजा छत्रसाल का स्मारक, महेवा जिला छतरपुर

पन्ना राज्य के संस्थापक बुंदेल केसरी महाराजा छत्रसाल संबंधी इतिहास का प्रमुख स्रोत है लालकवि (गोरेलाल) कृत *'छत्रप्रकाश'*। इतिहासकारों ने इसी ग्रंथ के आधार पर छत्रसाल संबंधी इतिहास का लेखन किया है। सन् 1828 में डब्ल्यू. आर. पाग्सन ने एक पुस्तक **'A History of the Bundelas'** लिखी थी जिसे मोटे तौर पर 'छत्रप्रकाश' का ही अंग्रेजी अनुवाद कहा जा सकता है । इसके ठीक एक वर्ष बाद मेजर प्राइस ने 'फोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता से 'छत्रप्रकाश' मूल रूप में प्रकाशित कराया था । सन् 1903 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'छत्रप्रकाश' प्रकाशित हुआ । सन् 1916 में इसी संस्था द्वारा इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित कराया गया । इसके सतहत्तर वर्ष पश्चात सन् 1973 ई0 में डॉ0 महेन्द्र प्रताप सिंह ने 'छत्रप्रकाश' का सम्पादन कर उसे पटल प्रकाशन नई दिल्ली 48 द्वारा प्रकाशित कराया । ज्ञातव्य है कि डॉ0 सिंह उस समय देशबन्धु कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) के हिन्दी विभाग में कार्यरत थे ।

डॉ0 महेन्द्र प्रताप सिंह ने बुन्देलखण्ड की पुस्तकों में पढ़ी अधकचरी जानकारी के आधार पर बिना इस क्षेत्र का भ्रमण किये 'छत्रप्रकाश' में तथ्यहीन एवं भ्रामक जानकारियां पाद–टीप के माध्यम से पाठकों को दी। छत्रसाल के पूर्वज उदयाजीत को 'महेवा' की जागीर तत्कालीन ओरछा नरेश रुद्रप्रताप द्वारा की गई **थी।** *"उदयाजीत उदित नर देवा, जिन उदयाचल कियौ महेवा"* (छत्रप्रकाश पृ0 13) **पंक्ति में** 'महेवा' शब्द का उल्लेख है । डॉ0 सिंह ने इसी पृष्ठ में नीचे पाद–टीप में लिखा कि – "महेवा" – 25°14' उ0 तथा 79°0' पूर्व यहां कपिलनाथ महादेव का मंदिर है । इसे रुद्र प्रताप ने अपने तीसरे पुत्र उदयाजीत (छत्रसाल के पूर्वज) को जागीर में दिया था । यहाँ जैन–बौद्ध काल की मूर्तियों के अतिरिक्त बुंदेलों के महलों के खंडहर भी हैं ।" यह विवरण ओरछा स्टेट गजेटियर के पृष्ठ 79 पर 'महेवा' के विवरण में मेल खाता है । इस विवरण में डॉ0 सिंह ने बिना सोचे–समझे अपनी ओर से एक पंक्ति बढ़ा दी – "यह स्थान नौगांव छावनी के निकट सड़क से कुछ दूरी पर स्थित है ।" जबकि नौगांव छांवनी 25°5' उ0 तथा 79°30 पू0 एवं नौगांव छावनी के निकट स्थित 'महेवा' जिसे मऊ–महेवा

कहा जाता है 25⁰0' उ0 तथा 79.30 पू0 एवं नौगांव छावनी के निकट स्थित 'महेवा' जिसे मऊ–महेवा कहा जाता है 25⁰0' उ0 तथा 79.30 पू0 पर स्थित है । इस प्रकार छत्रसाल के पूर्वजों के स्थान 'महेवा' को जो वर्तमान में टीकमगढ़ (म0प्र0) जिले में स्थित है को छतरपुर जिले में बता दिया गया ।

पं0 श्री निवास जी शुक्ल चम्पतराय की अवशिष्ट जागीर महेवा (छतरपुर) को ही मानते हैं । स्वर्गीय कृष्ण बल्देव वर्मा मोर पहाड़ी (महेवा) को तह0 गरौठा (झांसी) में स्थित बताते हैं । राधा चरण गोस्वामी महेवा (छतरपुर) को ओरछा राज्य में स्थित होना बताते है। बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास के लेखक गोरेलाल तिवारी ने पृ0 162 पर उदयजीत की जागीर महेवा को छतरपुर में माना । वहीं दूसरी ओर पृ0 162 पर छत्रसाल के जन्मस्थान मोर पहाड़ी को कटेरा के निकट बताया। बाबू बृजरत्नदास ने तो महेवा को महोवा (चन्देल शासकों की राजधानी) मान लिया।



सुकनई नदी के तट पर स्थित भवनों के भग्नावशेष महेवा जिला टीकमगढ़

छाया : निशांत फोटो, टीकमगढ़

यह तो हुई साहित्यकारों एवं इतिहासकारों की बात। अब म0प्र0 तथा उ0प्र0 शासन द्वारा प्रकाशित गजेटियर्स के विवरणों पर भी एक दृष्टि डाल ली जाये जिन्हें 'दस्तावेजी प्रमाण' की संज्ञा दी जाती है। हमीरपुर गजेटियर पृ0 39 के अनुसार उदयजीत की जागीर महोवा थी। झांसी गजेटियर के पृ0 47 के अनुसार छत्रसाल टीकमगढ़ के राजा थे। ज्ञातव्य है कि छत्रसाल के काल में टीकमगढ़ नगर था ही नहीं। टीकमगढ़ नगर की स्थापना तो सन् 1787 में ओरछेश विक्रमाजीत ने की थी। टीकमगढ़ गजेटियर पृष्ठ 60 पर उदयाजीत को महोबा का प्रशासक दर्शाया गया है। इसी प्रकार सागर जिला गजेटियर में चंपतराय को महोबा का शासक दर्शाया गया है। एक दृष्टि छतरपुर गजेटियर पर भी डाल ली जाये। छतरपुर जिला गजेटियर के पृष्ठ 41 पर उल्लेख है कि "यह महोबा के शासक उदयजीत का वंशज चंपतराय था। इस प्रकार उ0प्र0 शासन द्वारा प्रमाणित जिला हमीरपुर एवं जिला झांसी तथा म0प्र0 शासन द्वारा प्रकाशित जिला टीकमगढ़ जिला सागर एवं जिला छतरपुर गजेटियर्स में पूर्णतः सत्य से परे जानकारी दी गयी है। कोई शोध छात्र जब इन ग्रंथों को पढ़ेगा तो वह महोबा को 'महेवा' के स्थान पर मान्यता देगा। जबकि महेवा की वास्तविक स्थिति निम्न, विवरण अनुसार है।



छत्रसाल की जन्मस्थली 'मोर पहाड़ी'(महेवा) जिला टीकमगढ़ म०प्र०

रुद्र प्रताप (1501–1531 ई0) ओरछा राजवंश के आदि पुरूष माने जाते हैं। उनकी पहली महारानी (करैरा के गंगा दास पवांर की पुत्री) से तीन पुत्र उत्पन्न हुए। प्रथम पुत्र भारती चन्द्र एवं द्वितीय पुत्र मधुकर शाह क्रमशः ओरछा के राजा हुए । बुन्देलखण्ड का इतिहास तीसरा खंड लेखक कविमणि कृष्ण दास पृ0 3–4 के अनुसार – "राव उदयाजीत महाराज रुद्र प्रताप के तीसरे पुत्र थे। इनका जन्म सम्वत् 1575 माघ शुक्ल 1 गुरुवार को हुआ था। इनके पिता ने रहने के लिए इन्हें जतारा के महल दिये थे और बैठक में ग्राम 'स्यावनी' दिया था, किन्तु वहाँ रहने योग्य स्थान न होने से इनकी माँ इन्हें 'कटेरा' ले गई थी। कटेरा ओरछा से 20 मील पूर्व है। इस समय इनकी आयु केवल 13 वर्ष की थी। कटेरा से 3 मील दक्षिण पठारी के जंगल मे 'सुकनई' नदी के किनारे महेवा में जब रहने योग्य जगह बन गई, तब स्यावनी की बैठक तोड़कर 'महेवा' सं0 1603 को बैठक का गांव बनाया। इस प्रकार सन 1546 में महेवा की बैठक हुई। गांव की आबादी धीरे–धीरे बैठक होने पर हुयी। महाराज छत्रसाल का जन्म इसी महेवा का है । महेवा ओरछा से 20 मील पूर्व है जो अब कई ऊजड़ बस्तियों में बसा हुआ है। इसे आजकल 'नुना महेवा' कहते हैं। दूसरा महेवा है जिसे छत्रसाल ने बसाया था। यह उनका सैनिक अड्डा था। यह छतरपुर से 10 मील पश्चिम में है। इसे 'मऊ–महेवा' कहते हैं। छत्रसाल का समाधि स्थान यहीं पर है।

बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास लेखक डॉ0 के0पी0 त्रिपाठी पृष्ठ 110 के अनुसार– "ओरछा के महाराजा रुद्र प्रताप (1501–31 ई0) ने अपने तीसरे पुत्र उदयादित्य को ओरछा के पूर्व में लिधौरा के पास नुना–महेवा की 12 हजार रुपया की जागीर दी थी। उदयादित्य के महल अभी भी भग्नावशेष स्थिति में खड़े हुए हैं। उनके 6 पुत्र प्रेमचन्द, हृदय नारायण, भारती चन्द, गंगादास काशीदास और राघवदास थे। उदयादित्य की मृत्यु पश्चात् प्रेमचन्द को जागीर दी गई थी। उन्होंने जागीर को अपने 3 पुत्रों में विभाजित कर दिया। भगवंत सिंह को महेवा, मान सिंह को शाहपुर और कुंवर सिंह को सिमरा (सभी जतारा परगने में) दिया था। भगवंत सिंह के 4 पुत्र खड़गराय, चन्द्रभान, सुभानराय और चम्पतराय थे। चम्पतराय को महेवा जागीर दी गई थी। .... छत्रसाल का जन्म जतारा परगने स्थित मोर पहाड़ी की घाटी में ही 26 मई 1649 में हुआ था। यह स्थल महेवा के दक्षिण पूर्व में है।"

ओरछा स्टेट गजेटियर पृ0 79 के अनुसार – "Mahewa, tahsil Jatara - A village lying in 25⁰14' N., and 79⁰0' E. It is

well kenown for the shrine of kaplinath mahadeo. This village was granted by Ruydra Pratap to his son, udayaditya, the ancestor of champt Rai and of all the the Dangahi Bundelas. - The place-of-udayaditya still stauds here."

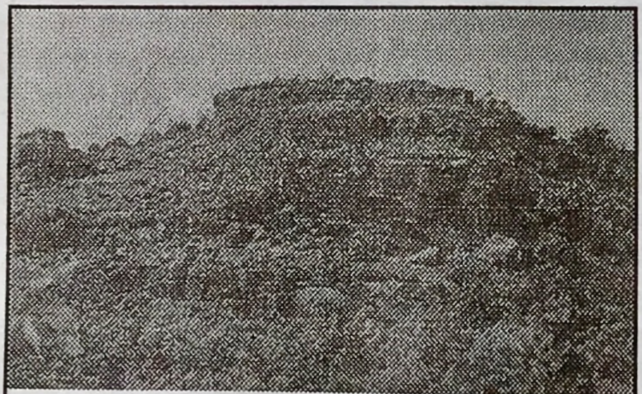
ओरछा राज्य का भूगोल पृ0 32 ''महेवा – यह नगर महाराज कपिलनाथ महादेव के लिए प्रसिद्ध है। इसको महाराजा रुद्र प्रताप ने अपने पुत्र को दिया था।'' छत्रसाल ग्रंथावली सम्पा0 वियोगी हरि पृ0 1 (भूमिका) – ''तीसरे पुत्र का नाम उदयादित्य था। इन्हें महेवा की



कपिलनाथ महादेव का मंदिर, (महेवा) टीकमगढ़

जागीर मिली थी।'' पाद–टीप–यह गांव बड़ी मऊ (झांसी) से 5 कोस दक्षिण की ओर है, आजकल इसे नुना महेवा कहते हैं।'' बुन्देलखण्ड केसरी महाराज छत्रसाल बुंदेला ले0 डॉ0 भगवानदास गुप्त पृ0 17– '' महेवा ककर कचनए से लगभग 6 मील दक्षिण में बसाया था।''

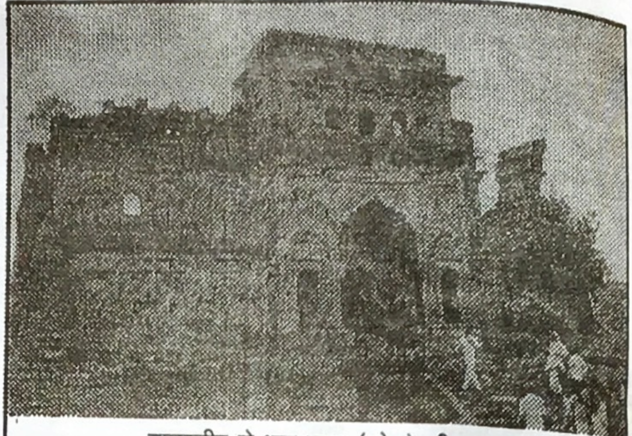
'मधुकर पाक्षिक' वर्ष 1 अंक 21, 1 अगस्त 1941 लेख–महेवा के भग्नावशेष, लेखक भगवान दास श्रीवास्तव पृ0 29 '' नुना जतारा से कोई आठ–नौ मील है और वहां से महेवा की पहाड़ियां दिखाई देती हैं। लगभग तीन–चार मील का फासला है। .... हम लोग पहले 'पुराना महेवा' देखने गए जहां चम्पतराय के मंत्री रहा करते थे। पुराना महेवा सुकनई नदी के किनारे पर है। नदी के दूसरी ओर मंत्री के महल हैं।'' महाराजा छत्रसाल द्वारा मऊ (सहानिया) के राज्य के



प्राचीन किले के भग्नावशेष, महेवा (नुना) टीकमगढ़

छाया : निशांत फोटो, टीकमगढ़

बंटवारा सम्बन्धी जो दस्तावेज मिती कार्तिक सुदी 13 सं. 1887 को लिखा गया था उसका निम्न अंश भी दृष्टव्य है .... जो श्री श्री



उदयाजीत के भग्न महल (महेवा), टीकमगढ़

छाया : निशांत फोटो, टीकमगढ़

कक्का जू साहेब राव चंपतराय जू को ओड़छे से जागीर लगी हती वा जागीर मैंने उनको सौंप दई, जब हमने अपने पराक्रम सै जाघा पाई वा जीती तो जागीर को नाम काहे को करो जावे। काहे को बनकै दब कै लेय, मैने खुसी के साथ मय सनद के जागीर ओड़छे वालन को सौंप दई जाये, आगे पीछे कौनहु बात कौ फिसाद ना होवे।''

इसी क्रम में वीर सिंह जू देव (प्रथम) ओरछेश (1905–24 ई.) द्वारा उदयाजीत के नाती (प्रेमचन्द्र ज्येष्ठ पुत्र के ज्येष्ठ पुत्र) भागौत दास (भगवतराई/भगवंत सिंह) को महेवा जागीर के पट्टे की जो द्वितीय प्रति दी गई थी वह महेवा की स्थिति को स्पष्ट करने की दृष्टि से एक दस्तावेजी प्रमाण के रूप में अवलोकनीय है। जिसके वापिस करने की चर्चा उपरोक्त पत्र में की गई है।

(मुहर) सही ।।

श्री महाराधिराज राजा वीर सिंघ देव ऐते श्री महाराजकुमार भैया भागौतदास देव जोग्य पटौ प्रदंत सेवा सासन गाउ तेरह तथा एकु तिहाई 13S1S अज परिगनै जतहरा वगैरह के दए । बोलु प्रमान हजूर पं0 श्री कन्हरदास महता श्री केसौदास प्रधानु रामदासु श्री सुजान साहि लिखिंत नाराइनदासु पटौ सही–ब्यौरा गांउनि की तनखाह कौ=

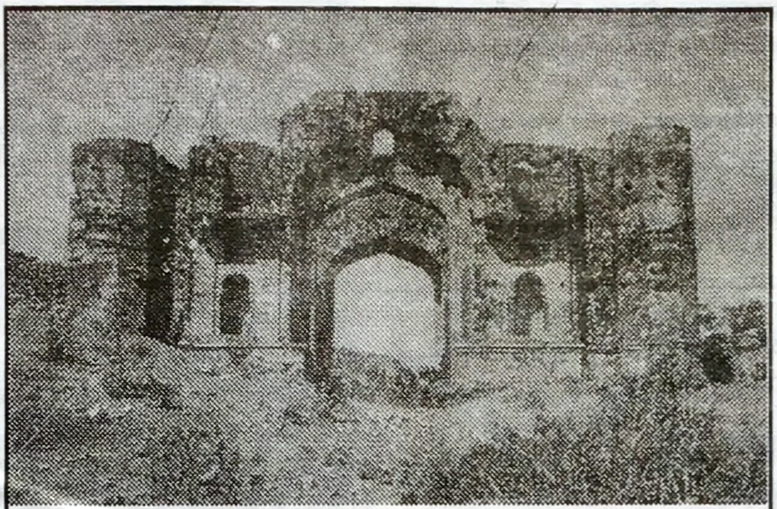
अज परिगनै हवेली जतहरा

मौजे––––––––––––	6	त स्याउरी मौजे 4	
मौ0 महेवा	मौ0 मडोनी	मौ0 नुनहां	मौ0 बंधरौनी
1	1		
दरियापुरु	जुगटौन	मौ0 =)	
1	1		
बमौरी	साहवाजीद पुरू	अज तपेटिहर कौ मौजे	
1	1	1	
पठारी	स0 1681	मौ0 खगटौनि	
अ़ज परिगनै एरछ मौजे		1	
1		अज परिगनै जहागीरपुर	
मौ0 तैदुवा		मौजे ।S।S	

1	मौ0 बाउलि	मौ0 गड़मऊ	
मौजा0 स्याउनी मह जू मैं पैमचंद का		1	तिहाउ
हीसा होय सु0 भागौदासु पावै			SIS

(संवत 1669 वर्ष नाम आषाढ़ बदि 1 दिने पहिलौ पटौ गिरिगयौ तब यह फेरि लिख्यौ फागुन सुदि सनौ मुकाम आसेनि।)

ज्ञातव्य है उक्त पट्टे में जिन ग्रामों का उल्लेख हुआ है उनमें से एरछ (एरच) गड़मऊ स्थान वर्तमान झांसी (उ0प्र0) जिले में है और शेष उल्लिखित ग्राम वर्तमान में टीकमगढ़ जिले की जतारा तहसील में स्थित हैं। पट्टे के अतिरिक्त पूर्व में दिए गये अन्य विवरणों जो नाम आये हैं जैसे – कटेरा, ककर, कचनए यह महेवा (जिला टीकमगढ़) ग्राम के सीमावर्ती स्थान है। जो वर्तमान में झांसी जिले में स्थित है।

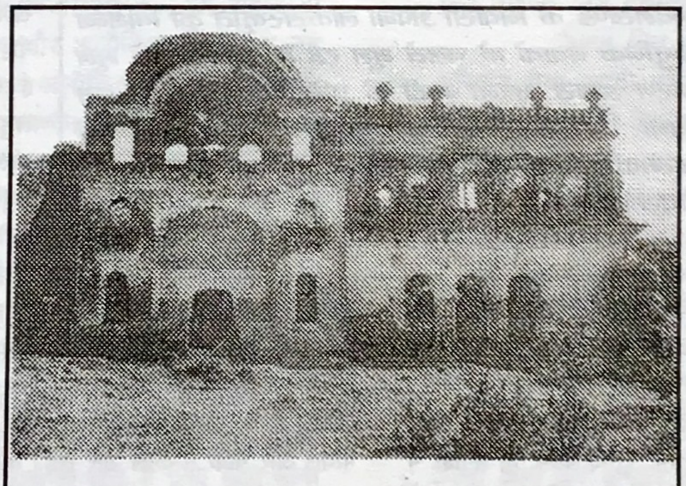


हाथी दरवाजा, महेवा (छतरपुर)

उपरोक्त विवरणात्मक वर्णन 'महेवा' की स्थिति स्पष्ट करने हेतु पर्याप्त होगा। छत्रसाल के जन्म स्थान के सम्बन्ध में इतिहासकारों एवं विद्वानों ने दो स्थानों का उल्लेख किया है। कुछ इतिहासकार छत्रसाल का जन्म ककर–कचनए ग्राम में और कुछ मोर पहाड़ी के जंगल में मानते हैं। बुन्देलखण्ड का इतिहास ले0 डॉ0 मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' विन्ध्य प्रदेश का इतिहास ले0 गुरू रामप्यारे अग्निहोत्री, बुंदेल केसरी छत्रसाल ले0 गोवर्धनदास त्रिपाठी, बुन्देलखंड का ऐतिहासिक मूल्यांकन ले0 राधाकृष्ण बुन्देली, श्रीमती सत्यभामा बुंदेली, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास ले0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का वृहद् इतिहास लेखक डॉ0 के0पी0 त्रिपाठी, राष्ट्र गौरव स्मारिका बुन्देली बाँकुरे (साहित्य अंक) ले0 श्री श्रीनिवास शुक्ल, ओरछा का इतिहास, लेखक ठा0 लक्ष्मण सिंह आदि इतिहासकार/विद्वान छत्रसाल का जन्म मोर पहाड़ी में होना मानते हैं इन विद्वान इतिहासकारों में से किसी ने मोर पहाड़ी को महेवा के किसी ने कटेरा तथा किसी ने ककर कचनए के निकट बताकर 'मोरपहाड़ी' की स्थिति को स्पष्ट किया है। बुन्देलखण्ड केसरी महाराजा छत्रसाल बुन्देला लेखक डॉ0 भगवानदास गुप्त एवं बुंदेलों का इतिहास ले0 भगवानदास श्रीवास्तव एवं भगवानदास खरे ने छत्रसाल का जन्म ककर कचनए ग्राम में अथवा इसके जंगल में माना है। विस्तार भय से यहाँ ग्रंथों एवं उनके लेखकों मात्र का उल्लेख भर किया गया। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि कटेरा एवं ककर कचनए ग्राम झांसी जिले में स्थित है किन्तु इन ग्रामों की सीमाएं महेवा (टीकमगढ़) की सीमाओं से आबद्ध है।

ओरछेश रुद्रप्रताप के तीसरे पुत्र उदयाजीत की जागीर बुन्देल केशरी महाराजा छत्रसाल के पूर्वजों का कार्यक्षेत्र एवं जन्मस्थल होने के कारण महेवा (टीकमगढ़) का एक ऐतिहासिक महत्व है। दुर्भाग्यवश महेवा सैकड़ों बरसों से उपेक्षित है उसे छत्रसाल की जन्मभूमि के कारण जो गौरवपूर्ण स्थान मिलना चाहिए था, वह उसे कभी भी प्राप्त नहीं हो सका। महेवा में ऐतिहासिक धरोहर के रूप में सुखनई नदी के तट पर स्थित प्राचीन महल एवं नगर के ध्वंसावशेष भूमिसात होते जा रहे हैं। इस धरोहर से न तो समाज को कुछ लेना–देना है और ना ही शासन को। समाज के धन लोलुप व्यक्ति इन प्राचीन महलों में गढ़े धन की तलाश इन्हें खोद कर करते रहते हैं। यदि शासन द्वारा इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो महेवा में शेष बची हमारी ऐतिहासिक धरोहर के पूर्णतः समाप्त होने में अब अधिक समय नहीं लगेगा।

टीकमगढ़ जिले में स्थित ऐतिहासिक महत्व के प्राचीन नगर महेवा के समान ही छतरपुर जिले में नौगाँव छावनी के निकट स्थित प्राचीन नगर महेवा भी ऐतिहासिक दृष्टि के कम महत्वपूर्ण नहीं है जिसे महाराज छत्रसाल ने अपनी जन्म भूमि महेवा (टीकमगढ़) की याद में पश्चिम बुन्देलखण्ड में एक प्राचीन नगर मऊ (सानियाँ) के निकट बसाया था। बुन्देलखण्ड का इतिहास तृतीय खण्ड लेखक एवं कवि पृ0 77 के अनुसार – "छत्रसाल द्वारा मऊ महेवा ग्राम बसाकर सैनिक अड्डा की स्थापना – जब छत्रसाल के संगठन में वृद्धि हुई और उनके कार्य क्षेत्र का भी विस्तार बढ़ा तो उन्हें अब ऐसे स्थान की आवश्यकता पड़ी जहाँ अपने परिवार सहित सुरक्षित अवस्था में रह सकें और फौज को रख सकें। इस विचार से छत्रपुर से 10 मील पश्चिमोत्तर दिशा में फाटा–पहाड़



हृदयशाह का महल, महेवा (छतरपुर)

व गुरैया पहाड़ों को आड़ में देकर अपनी जन्म भूमि महेवा के नाम पर 'महेवा ग्राम' बसाने की नीव मार्गशीर्ष कृष्ण 2 संवत् 1728 वि0 को डाली और उसके समीपवर्ती एक प्राचीन ग्राम मऊ का जीर्णोद्धार कराया। आजकल यह ग्राम 'मऊ महेवा' कहलाता है । इस ग्राम में अब तक महाराज छत्रसाल के समय के बहुत से स्थल हैं ।" छत्रसाल ग्रंथावली (भूमिका) संपादक – वियोगी हरि पृ0 5 में भी इसका उल्लेख किया है । यथा–मऊ के समीप आपने अपने पूर्वजों की जागीर के गाँव के नाम पर दूसरा महेवा बसाया । पीछे मऊ महेवा मिलकर एक बड़े नगर में परिवर्तित हो गए ।" ओरछा का इतिहास ले0 ठाकुर लक्ष्मण सिंह, बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास ले0 डॉ0 के0पी0 त्रिपाठी, जूवीनियल हिस्ट्री आफ चरखारी ले0 जागेश्वर तिवारी, बुन्देलखण्ड केसरी महाराजा छत्रसाल बुंदेला ले0 डॉ0 भगवानदास गुप्त, बुंदेलों का इतिहास ले0 भगवानदास श्रीवास्तव एवं भगवानदास खरे, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास ले0 गोरे लाल तिवारी आदि विद्वान इतिहासकारों ने भी अपने ग्रंथों में इसी आशय का उल्लेख किया है ।

त्वरित लाभ अथवा सस्ती ख्याति अर्जित करने हेतु इतिहास के साथ इस तरह की छेड़–छाड़ आगामी पीढ़ियों के साथ किया गया, निश्चित ही एक अक्षम्य अपराध होगा ।

-किले का मैदान, टीकमगढ़

बुन्देली माई की राम कहानी

- प्रो0 लखन लाल खरे

भोतइ पोंचे भये कोनउं बड़े मानुष ने एक बेर कइती, कै कौनउं देश खें जड़मूल से उखारने होय तो फौज–फांटा की जरूरत नइयां। उते की बोली–बानी, खान–पान, रीत–रिवाज, हरां–हरां बदल देव, वो देश आपइं मर जैहें। मोय लगत के हमाय लरका सोइ नय जमाने की हवा में बिगर गय। कोऊ जनें लर रय मोरो अलग घर बनवाने खों (बुन्देलखण्ड प्रान्त)। नोनी बात है। पै जब मोरे प्रानई (संस्कृति) न रेहैं तो अलग घर की के लानें बनें?

मोरी बड़ी बेन ब्रज बोली ने मध्यकाल में भौत तरक्की करी। इतनी, कै बा खुदई भाषा कहाउन लगी। मैं अपनी बेन से कोनउं कम न हती, पै मैं पिछड़ गई। अब तो मोरे मौड़ा–मौड़ी लो मोरी बोली में बात करतन में सरमात। मोरी दूसरी बेनन के मौड़ा–मौड़ी सब अपनी–अपनी मताइयन की बोली बोलत। इन्दौर से निकरबे बारो अखबार नई दुनियां तो हप्ता में एक दिना एक पन्ना में मालवी बेनइं (बहिन) की बातें छापत।

मोरे घर की खचउ पनड़यन को कभउं दूर–दूर लो नाव हतो, अब कोउ नइं जानत। मिरजाई कउं दिखा परत सो सबरे हंसत हैं। स्वापा तो शांत से हो गय। और जब मोंरइ नई रय, तौ फिर मोंराइ छट काय पै मनत।

> ***बुन्देलखण्ड के निवासी अपनी लोकसंस्कृति को विभिन्न आधुनिक दबावों के चलते भूल रहे हैं। इसके पीछे मूल कारण हमारा अपनी माटी के प्रति घटता प्रेम है। इस रचना में श्री खरे ने 'बुन्देली' की वेदना को आत्मकथात्मक शैली में व्यक्त कर हमें चिन्तन को विवश किया है।***
>
> ***-संपादक***

पेलां मोरे नाऊ कक्का कैसे रूच–रूच कें दौना–पनवारे बनाउत ते। ब्याव–काजन में कढ़ी–बरा–चना की दार–भात–शुद्ध घी सें बनी कलोंजी की धूम मचत ती। पइ–पावने आउत ते सो लुचइं तो बनतइ हतीं, पै कढ़ी–बरा अटक कें बनत ते। मैं एक बेर अपनी मालवी बेन कें गइती। ओई दिना उनके घरे कछू पइ–पावनें आय ते। उनके लाने दाल बाटी बनी। मैने पूंछी – जिजी, पावनन खों जो का बनाव? लुचइं काय नइं बनाईं? बे बोलीं – 'बैन, हमाए घर को जोई रिवाज है। हमाए इते तित–त्योहार–ब्याव–काजन में बाटी जरूर बनत। हमाए इते को पकवान तो जोइ आ' मोय मनइं मन भोत सरम लगी, कै देखो तो एक मोरी बेन को घर है, जिते के आदमी अपनी रीत निभांय जा रय और एक मोरे मोड़ा–मोड़ी हैं नास मिटे, के ठांड़े–ठांड़ें लुचई–साग खाबों सीख गये।

कभउं–कभउं मोरो जी ललचान लगत–डुबरी–लटा–महेरी–रसखीर–गुड़ला खाबे खों, पै मन मार कें रे जात। कोदों–कुदई–समा–लठारा एक दिना मोय एक फोटू में दिखा परे। बड़ी देर में चीन पाई उनें। मरे से हो गए बिचारे। बिरचुन सतुआ तो कभउं–कभउं हाट में दिखा जात। एक दिना मोय भोत बुरई बरोंटी आई। का देखो, के कचरियां–बिजोरे–बरीं ठडूला और सूरन की साग–सब मरे डरे। भारी डर लगो मोय। कभउं–कभउं भटा–गकरियां खाबे खों मिल जात सो ओई खों सबरे दाल–बाटी कन लगे, काय सें के भटा–गकरियां कय से नाक कटत उनकी।

परसाल को बसकारो बिना कजरी–आला (आल्हा) ने निकर गओ। न कउं तीजा के फुलारा डरे ते, न कीर्तनियन के कीर्तन गाय ते। न दसरथ की राम–राम भइती न लीला देखवे मिली ती। कतकारियन ने कातक लो नई अनाव तो, न आंवरी तरें भोजन भय ते। दो–तीन मोंड़ियन से मैनें पूंछी, कै नौरता काय नइं खेलो? सो वे हँसन लगी। उलटे मोइ से पूंछन लगीं के जो का होत? ई साल कोउ ने मोय बुड़की के लड़ुवा लो नई खुवाय। तेवरस की साल नगरिया, झूला मजीरा बजाउत, ईसुरी गाउत गांव भर के गय ते होरी जरावे। रमतूला सोइ बजो तो; पै ई साल की होरी कबे जर गइ, पतोइ नइं लगो। फगुआरे आय, सो कुजाने का गा रय ते–रंग बरसे भीगे चुनरवारी–ऐसइ कछू अंट–संट सो गा रय ते। मोय भोत बुरव लगो। गुर की परिया तो कुजाने कब से नइं टूटी। बहू से कइ मैनें, के पनमेसरी त्यौहार है, पैजना तो पेर ले, पुंगरिया पेर ले, ऊने मों बिचका कें पावन में पायलें और नाक में कील डार लई। करधनी तोउ नइं पैरी।

कां लो कइये। घर के कुरवा सेंई आंख फूटत। जब अपनो दाम खोटो है तो परखइया खों का दोस देबें। मोरे लरकइ मोरी गत कर रय। इनन खों इतनी बुद्धि दें दो भगवान, के जे सुधर जांय और मोरी सुध लेबें।

- शास0 महाविद्यालय, कोलारस शिवपुरी

बुन्देली वातायन में बापू

-रमेश शंकर सक्सेना

पूज्य महात्मा गाँधी का अवतार भारतीय जन–मानस के क्षितिज पर इस प्रकार उदित हुआ कि उसके धवल तेजोमय प्रकाश से इस युग की संस्कृति प्रदीप्त हो उढ़ी। भारतीय विचारकों और दर्शन शास्त्रियों ने जो कुछ कहा ,उसे यथार्थ मे व्यवहारिक जीवन में ढालकर बापू ने दिखा दिया। यही कारण है कि बापू संसार के अन्य विचारकों और दार्शनिकों की अपेक्षा अपने जीवन काल में ही सर्वाधिक ख्याति प्राप्त कर लोकप्रिय हो गये। नगरों की विशाल अट्टालिकाओं से दीन की द्वार देहली तक " एक चवन्नी चाँदी की , जय बोलो महात्मा गाँधी की " के स्वरों से गुंजित हो गई। वे एक व्यक्ति न होकर "युग" बन गये और उनके कर्म "युग–कर्म"। फलस्वरूप गाँधी जी के एक इशारे पर कोटि–कोटि लोग अपना सर्वस्व निछावर कर उनके अनुयायी हो गये। व्यवहारिक जीवन में आध्यात्म का समावेश , राजनीति में चरित्र की शुद्धता गाँधी–जीवन दर्शन का मूल मंत्र था। अतः स्वभावतः धर्मप्राण लोक संस्कृति के प्रतीक लोक–गीतों के स्वरों में महात्मा गाँधी एक अवतारी पुरुष बन गये । बुन्देली युवतियों के मुख से निसृत एक लोक गीत की झाँकी देखियेः–

"गाँधी जी जग मे प्रगट हुए , पृथ्वी का भार उतारन को।
श्रीराम की माता कौशिल्या हैं , श्री कृष्ण की माता जसोदा हैं।
श्री गाँधी की माता भारत हैं, पृथ्वी का भार उतारन को।
श्री राम के हाथ में धनुष बाँण , श्री कृष्ण के हाथ में सुदर्शन है।
श्री गाँधी के हाथ में चरखा है ,पृथ्वी का भार उतारन को।।"

वास्तव में जब कोई महापुरुष अपने त्याग और तपस्या के बल पर जीवन में ऐसा कुछ कर दिखलाता हैं–, जो सहज ही सर्वमान्य हो, सर्वश्रेष्ठ हो अनुपम और अलौकिक हो – तो वह व्यक्ति जन साधारण से ऊँचे उठकर अलौकिक पुरुष बन जाता है । चाहे वह भगवान राम हों या भगवान कृष्ण , बुद्ध हों अथवा ईसा। एक लोक कवि ने गॉधी जी की तुलना भगवान विष्णु से करके अपने बुद्धि कौशल के साथ ही अपने श्रद्धा सुमनों को पिरोया हैः–

"मोहन देख देश में गुरखा , गरज करें दुःख बरखा।
तुरत प्रगट् भये आन–वान में , लग न जाय कऊँ करखा।।
कर दो "श्याम" चीज लयें चारऊ पदन प्रेम मे परखा।
सत्य शँख है , गदा अहिंसा , चक्र सुर्दशन चरखा।।"

कितनी सुन्दर और सटीक कल्पना है ? एक अन्य लोक कवि ने तो गॉधी जी का अवतार स्वराज्य लेने के लिए हुआ माना है–

"जब– जब एक राशि मिल राजै , दुस्मन होत पराजै ।
रामचन्द्र ने रावण मारो , निसचर सहित समाजै ।।
कृष्णा चन्द्र ने कंस पछारो , द्विज देवन के काजै ।।
गौरमेंण्ट सें विन असि , मथुरा गाँधी लेत सुराजै ।।"

बिना किसी अस्त्र – शस्त्र के प्रयोग से अहिंसात्मक तरीके से गर्वमेण्ट से स्वराज्य प्राप्त कर लेने के कारण गाँधी जी कुछ अर्थो में "लोक कवि की धारणानुसार भगवान राम और कृष्ण से भी आगे हैं। लोक कवि के प्रस्तुतीकरण का बाँकापन दर्शनीय है। गाँधी जी राम–कृष्ण के समान देवत्व भले ही प्राप्त न कर सकें, परन्तु वे महान योगी थे ,महात्मा थे – लोक मान्यतायें इस सत्य को स्वीकार करतीं है, तभी न चरवाहों के स्वरों से निकल पड़ता हैं?

" ऐसो जोगी न देखो यार, जैसो भयो कलजुग में गांधी।
अरे। गाँधी के हो गये नाम, जैसे भये राम–कृष्ण कें।।"

शरीर से भले ही बापू दुर्बल काय रहें हों , परन्तु उनका बल संसार जानता था :–

बापू हते बड़े बलधारी जिनको जानत दुनिया सारी,।
पर स्वारथ के लाने जिननें छोडे महल अटारी।।
देश विदेसन लगा लगोंटी घूमें खादी धारी,।
विन हथियारन लड़ी लड़ाई ,कर गये देश सुखारी।।

देश– विदेशों में लंगोटी लगाकर घूमने वाले क्षीणकाय बापू महात्मा जी के सत्य–अहिंसा रूपी शस्त्रों द्वारा देश स्वतंन्त्र हो गया, और लोक रागिनी में सोहरे की धुन सुनाई देनें लगीं। एक लोक गीत की बानगी लीजियेः–

"आज दिन हो गयो स्वतंन्त्र।
एक लंगोटी वाले बाबा को, फुरगओ जो मंत्र।।
जिनके राज न सूरज डूबे , झूठे भये तिनके मनसूबे।
बिन तकरार बिन हथियारन , भयौ रार कौ अन्त।।
"आज दिन हो गयो स्वतंत्र".

हरिजन सेवा, खादी ग्रामोद्योग, कुष्ठ निवारण और समाज सेवा के माध्यम से उन्होंने देश की दुखती हुई रग को पहचान कर सहज ही लोगों की श्रद्धा प्राप्त कर ली थी :–

गाँधी तुम हो गुरू गुसैयाँ , पँरू तुम्हारी पैयाँ।
जगा दये भारत के बासी, दे दई सत्य धनैयाँ ।।
तारे पूत, अछूत, विधरमी, उड़ी छूत की छैयॉ।
कहतं महेस कलेस नसाके , पाली दीन चिरैयाँ।।

सच्चे कर्मयोगी की तरह पल–पल ,छिन–छिन छीज–छीज कर बापू ने सोते हुए भारतबासियों को जगाकर दीन चिरैया पालीं। ऐसे ही महामानव के अन्त समय का एक चित्रण –

करनी कहो कूर कमतर की , छाती कर बज्जुर की।
तीस जनबरी सन् अड़तालीस , श्री बिड़ला मंदिर की।।
घर की एक कुरैया से भई , दुर्गति सव घर भर की।
गोली बनी मौत बापू की , बच्चई के रे कर की।।

और एक गोली से जब उस हत्यारे को आत्म शान्ति न हुई तो एक अन्य लोक कवि के शब्दों मेंः–

"तौऊ न मानो तो हत्यारो ,तीन तड़ातड़ मारी।।
गिरे तमारौ खाके नैचें , फिरी पुतरियाँ प्यारीं।।
चलती वेर विचारे वोले ,सुन लो भैया साँसी ।।
जीने मोखों गोली मारी ,उए न दिइयो फाँसी।।"

बापू की मृत्यु का समाचार फैलते ही सर्वत्र निस्तब्धता छा गई। अपना सम्पूर्ण जीवन देश सेवा में ' हवि ' कर देने वाले गाँधी के बलिदान को देखकर यामिनी के श्यामल आँचल में भगवान भास्कर ने लज्जा से मुँह छिपा लिया देश का जन जन बिलख–बिलख कर रो उठा । पेड़–पौधे शोक में झींमनें लगे। पक्षी अपनी चपलता भूल गये। एक युग का अवसान हो गया, कवि रो उठाः–

"दुनिया भर के प्यारे बापू ,हो रई हा–हा दैया ।
करो भुन्सरा तुमने नई तर ,लग गई ती लौ–लैया।।
अपने काजें कुछू करो नईं , जीवन दै दओ पूरौ।
उनके बिना इतै कौ कुल्लन ,रै गयो काम अधूरौ।।"

भौतिक रूप से गाँधी जी चले गये। उनकी नश्वर देह आज हमारे बीच भले ही नहीं है ,परन्तु उनकी स्मृति नहीं भूलती, वे दिन–रात आँखों में दिखलाई देते हैं:–

बापू हमें द्रगन में झूलें निस बासर ना भूलें ।
जुग के देव सुधारक जग के आतीं उन दिन विन सूलें।।

लोक गीतो को धरती का गीत कहा जाता है। उनके माध्यम से धरती गाती है। लोक–गीत हर्ष–विषाद ,आशा–निराशा , पीड़ा–ग्लानि आदि सभी भावों को बिना किसी औपचारिक परिवेश में बाँधे सीदे–सादे भावो में व्यक्त कर देते हैं। लोक भाषा में रचे गये इन गीतों के माध्यम से जन–जीवन की संस्कृति और भावनाओं का पता लगाता है। गाँधी जी तो सादा ज़ीवन ,उच्च विचार के मूर्तस्वरूप थे।

वे हमें एक मार्ग बतला गये , जिस पर चलना ही हमारी सच्ची बापू श्रध्दा है–

..बापू हम तोरी कई करहैं ,जोर–जोर न धरहैं।
कोऊ जोरै लाख करोरन, एक काम न सर है।।..

एक अन्य लोक–कवि अपने साथियों को सलाह देता है:–

"सब कोई गाढा पैरो भाई , जासो होय भलाई।
घर–घर राँटा–चरखी धर लेव ,बनवा लेव नटाई।।
छोड़. देव इजलास तसीली,, अरू दीमानी भाई।
शौकत अली ,गाँधी जी नें ,सव खाँ दओ जगाई।।"

किसी भी जन–नायक के प्रति सच्ची श्रध्दा का प्रतीक उसके नाम और गुणों का जाप करना नहीं , बल्कि उसके आदर्शों पर चलना है। उनके द्वारा प्रतिपादित सिध्दान्तों का पालन करते हुए पद–चिन्हों पर चलना ही अभीष्ट है।
बापू द्वारा लाये स्वराज्य की रक्षा हेतु लोकगीतकार की बाणी में एक आव्हानः–

"भैया अब सुराज के लाने ,तन–मन से लग जानें।
करो फैसला धर अपने में ,ना जइयो कोऊ थाने।।
विस्कुट और वराण्डी छोडो ,समां लठारा खानें।
द्विज खुमान अब पराधीनता से, नातों न रानें ।।

- शिक्षक, बल्देवगढ़,जिला टीकमगढ़

दो कवितायें

आरक्षण

राजनीति की गोट पर
शतरंजी चाल...
योग्यतम् की अवहेलना
अयोग्यों की ढाल,
संभावित, डाक्टर, इंजीनियर
आई.ए.एस., आई.पी.एस. बनने से पहले
गर्भ में पल रहे,
मादा भ्रूण की मानिंद
गर्भ में ही खत्म किये जा रहे हैं।
आखिर थर्टी–सिक्स परसेंट का यह आरक्षण,
राजनीति देश को कहां ले जायेगी...?
हमारे देश का कुटिल राजनीतिज्ञ
क्या कभी इस बात को समझ पायेगा
योग्यतायें आज विदेशों के पलायन को
ललायित क्यों हैं...?
अपने देश की माटी की वो सौंधी महक,
क्यों कर कम हुई...?
वास्तविक आरक्षण,
केवल योग्यताओं को,
आगे लाने का होना चाहिये,
जाति–धर्म के नाम पर
नौकरियों का यह आरक्षण,
तृतीय श्रेणी वाले को,
प्रथम पर तो ले आया है
किंतु, क्या ढूढ़ी गई ऐसी योग्यतायें हमें
अच्छे डाक्टर, इंजीनियर, अधिकारियों की
जमातें दे पाई हैं...?

अन्तर्जातीय विवाह

अब सनातनी समाज की भी
कायाकल्प हो चली है।
ब्राम्हण की बेटी, कायस्थ के घर
क्षत्रिय की बेटी, वैश्य के घर चली है।
कुछ समय और रुकिये
देखिये, सारा का सारा समाज ही
परिवर्तन की ओर भाग चला है।
जातिबंधन की दीवारें ढह चुकीं हैं,
जो रूढ़िवादी हैं,
चीखते चिल्लाते रह जायेंगे
अन्तर्जातीय विवाह को,
अब भला कहां रोक पायेंगे...?
इक्कीसवीं सदी का प्रवेश,
इस तथ्य को रेखांकित कर चला है,
बुझे मन से ही सही
हमने जातिबंधन को तोड़ा है,
हम आप इसी बदलाव
को ही तो आज,
"जनरेशन गेप"
का नाम देते हैं।

- श्रीमती विजयश्री बुन्देला
महल परिसर, छतरपुर (म0प्र0)

लोक दशहरा

- भैया लाल व्यास

संकेतः– (तुरही, रमतूला ,डफ, ढोल, नगाड़ा, तथा शहनाई वाद्य वृन्दों के रण–सूचक उभार और धीरे–धीरे विलय)

सूत्रधार का उभरता स्वरः–

(पार्श्व में सारंगी सितार की धीमी संगति)

वर्षा ने अपने रंगों की अंतिम झलक दिखाई ।
सरसा ने अपने अंगों में भर ली शरद–जुन्हाई।।
क्वांर मास की कोरी किरनैं तप से तेज हुई।
ज्वार और भाटों की भवरें अब निस्तेज हुई।
पूजा का परिवार समेटे आया सुखद महीना।
लोक–दशहरा जन–जीवन में उभरा भीना–भीना।।
रमतूला ,तुरही की ताने–आने बनीं समय की ।
शहनाई के स्वर में जागीं जोतें भव्य उदय की।।
रण के बाजे बजे कि वीरें ने ले ली अंगड़ाई ।
राम–नाम लेकर उठ बैठी भारत की तरुणाई ।।
काली की पूजा ने काले पाप सभी धो डाले ।
पुण्य पताका फहरी जग में विजयगान संभाले।।
इतिहासों ने पन्ना फिर से पलटा परम्परा का ।
नये ज्ञान का सम्पुट देकर पूजन किया धरा का ।।
जय के गीत विजय की बेला समता भाव लिये है।
लोक और वैदिक संस्कृति को नित नव रूप दिये हैं।।

वाचन (पुरुष स्वर):– भारतीय चिन्तन की विजय का पावन प्रहर गूँजने लगा एक बार फिर आध्यात्मिक जीवन का प्रखर स्वर, पाप पर पुण्य की ,अन्याय पर न्याय की, क्रूरता पर नम्रता की, अहँ पर सरलता की, वैभव पर साधुता की जय के पताके फहराने लगे। लोग भगवान राम की विजय को गाने लगे। वर्षा ने अपने वेग समेटे और भेंटे शरद ने सुगन्धित, स्वच्छ पुष्पों के पुण्यमय गुम्फन–

वाचन (महिला स्वर):– शारदीय नवरात्रि का सुखद आगमन। आराधना ध्यान और साधना का चिन्तवन्। देवी दुर्गा काअभिवादन और गूंजने लगा घर–घर में लोक भजनों का कीर्तनमय वातावरण। श्रद्धालु पूजा–पाठ में रम गये और लोक जीवन में जवॉरों के घटों की स्थापना के साथ होने लगे तांत्रिक किया–कलाप ! माता के भजनों और छन्दों में – राम की उपासना और मंत्रो में, सपृशती के पाठों में – घर में और घाटों में , नदी में कछारों में – त्यागों की भरमारों में , तात्पर्य यह है कि जन–जीवन की गुंजारों के दशहरा उत्साह भरे गीतों में उभरने लगा। कहीं शास्त्रीय स्वरों मेंतो कहीं लोक धुनों में भाव निखरने लगे, देवी के भजन की धुन पर लिखा सरस शैली का गीतः–

आया है आया रे! दशहरा वीरों का त्योहार कि माई तेरी जय करे हो माँ !
आया है आया रे! दशहरा धीरों का त्योहार कि माई तेरी जय करे हो माँ।।
मावस बीती रे , किरन सूरज की ऊगी पार कि माई तेरी जय करे हो माँ।।
धरती चली रे , रंगीले बांधे बन्धनवार कि माई तेरी जय करे हो माँ।।
घर–घर गूँजे रे ,विजय की भेरी की झंकार कि माई तेरी जय करे हो माँ।।
भर–भर भेजे रे , बहिनियाँ आशीषों के हार कि माई तेरी जय करे हो माँ।।
माता पूजे रे , पिता भी बोले जय–जय कार कि माई तेरी जय करे हो माँ।।
बेटा पूजे रे , चमकते –दमके से हथयार कि माई तेरी जय करे हो माँ।।
जगती पूजे रे , निखरते ढाल और तलवार कि माई तेरी जय करे हो माँ।।
भगती पूजे रे , जवारे देवी के घर–द्वार कि माई तेरी जय करे हो माँ।।
आया है आया रे दशहरा 0

वाचनः–(पुरुष स्वर):– लोक जीवन के द्वन्दों को दशहरे के तापस भरे उत्सव ने दूर कर दिया। जन–जीवन ज्योर्तिमय होने लगा। उनके निजी कष्ट और अभाव कोने पकड़ने लगे और भक्ति भरे गीतों के गूँजते स्वर–पुरुष मानो रोम–रोम से झड़ने लगे। नव दुर्गा की पूजा। जौ बोये घटों की स्थापना और साधना रात–दिन के जीवन का अंग बन गई। त्याग से चढ़े उनके तेवर उन्हें सामान्य से विशिष्ट बनाने लगे –उनके जीवन को गुन–गुनाने लगे।

वाचन(महिला स्वर):– महिलाओं ने महिमामयी लक्ष्मी, जगदम्बा बनके उन्हें संजोया –सवारा और जवारो की हरतिमा उनके जीवन की जीती–जागती सी तस्वीर बन गई। घुल गई उनकी पीड़ा से पोषित जिन्दगी की कहानी जाग गया मन का पौरूष मानी–एक और लोक जीवन का यह जगमगाता स्वरूप तो दूसरी ओर भाव विभोर विशिष्ट जनों का शिष्ट और प्रतिभा

मण्डित रूप उनका बौद्धिक क्रिया–कलाप। माँ दुर्गा का आराधन भगवान राम का अभिवादन और विजयादशमी का सारगर्भित विवेचन – मुखरित होने लगा एक और निवेदन गीतः–

ज्योतिमय कर दे मुझे माँ।
सत्य शिव सौन्दर्य के भण्डार से भर दे मुझे माँ।।
ज्योतिमय कर दे मुझे माँ!
भीड़ में जाकर जगत की मै स्वयं को खो चुका हूँ।
जागती हैं वासनायें मूलतः में सो चुका हूँ।।
त्याग का तप पूर्ण कर लूँ–एक ही वर दे मुझे माँ।
ज्योतिमय कर दे मुझे माँ!
चल रहा हूँ रात–दिन पर मार्ग ही भूला हुआ हूँ।
चन्दनो से आँख फेरे धूल में फूला हुआ हूँ।।
साँच को सच बाँच पाऊँ और अवसर दे मुझे माँ।।
ज्योतिमय कर दे मुझे माँ!
मान के अभिमान के मन से कभी नाता नहीं हो।
द्वार के आचार सुख दें कोई दुख पाता नहीं हो।।
एक ऐसा सहज श्रद्वा से सना घर दे मुझे माँ।।
ज्योतिमय कर दे मुझे माँ!

वाचन (पुरुष):– वरिष्ठ बन्धुओं के अनुष्ठानों से सजे वन्दना के ये गायन जहाँ विजयादशमी के प्रभावों को अमर करते रहे हैं वहीं जन सामान्य में गूजंते कबीर के बेटा, सन्त रविदास के चेलों और नामदेव के भाइयों तथा श्रम के सपूतों के ये सहज लोक रंजक स्वर क्या असर डालते है? वे दशहरे की लोक –जीवन मे व्याप्त अमिट छाप को फिर– फिर उजागर करते हुये राम के रूपों को अपने इकतारा में अपनाते चलते है :–
गीतः–(दशहरे पर कन्याओं द्वारा गाये जाने वालेगीत''चन्दा रामरामलेव''की धुन पर)

भैया राम राम बोल– सीताराम – राम बोल–राम भला करे।
भैया श्याम–श्याम वाले –राधे श्याम श्याम बोल –श्याम भला करे ।।
राम नाम जाप सभी पाप करे दूर।
रावण की माया भी होय चूर–चूर ।।
राम भला करे।
श्याम भला करे ।।
सोने की लंका के रहे ना निशान,
राम नाम याद करो राम है महान,
राम भला करे।
श्याम भला करे ।।
कंसों के कष्टों से पाना है पार।
कृष्ण– कृष्ण मंत्र जपो – कृष्ण है उदार ।।
राम भला करे।
श्याम भला करे ।।
द्वन्दों से दूर सदा सत्य रहे पास।
राम कृष्ण अंतर में वास करे वास।
राम भला करे
श्याम भला करे ।।
नौ दिन के त्यागों की दसवें दिन जीत।
दुर्गा की देन यही दशमी की रीत।।
राम भला करे
श्याम भला करे ।।

वाचन (महिला स्वर):– पुरुषों के पौरुष भरे ओजस्वी स्वरों में जहाँ दशहरे के देव– दर्शन जन–जन को होते हैं। वहीं महिला ग्राम्य स्तर से लेकर सामान्य नागरी तक अपनी तपस्या में कोई कसर नहीं करती। जवारों के बोझ से बोझिल सुन्दर सजे घटों को अपने सरों पर संभाले घर के मन्दिर से माँ दुर्गा से देहली तक जाते– श्रद्धा सुमन चढ़ाते वे नहीं अघातीं। माँ के दर्शनों का पुन्य उनके नौ दिन की उपासना का सफल समापन उनके शारीरिक श्रम और मानसिक भ्रमों को एक कोने मे समेट देता है। देवी के दर्शनों को लालायित उनकी आँखें सधी होती है तो भजनों की धुनों मे उनकी वाणी रमी ही तो रहती हैं, बाले निकल पड़ते हैं:–
गीत :–(देवी का लोक भजन)

कैसे के दर्शन पाऊँरी माई तेरी लागी किवरियाँ ।
माई के द्वारे एक निर्धन पुकारे ।
देओ माया घर जाऊँरी –माई तेरी लागी किवरियाँ।
माई के द्वारे एक अन्धा पुकारे।
देओ नयन घर जाऊँरी – माई तेरी लागी किवरियाँ।
माई के द्वारे एक बांझ पुकारे।
देओ ललन घर जाऊँरे माई तेरी लागी किवरियाँ।।
कैसे कै दर्शन पाऊँरी माई तेरी लागी किवरियाँ ।।

वाचन(महिलास्वर):– माँ बहनों का उपासना से सना– उनके हृदय से निकला निवेदन उनके अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये नहीं सामाजिक कल्याण की कामना लिये है और इसी में समाया है। भारतीय उदात संस्कृति का समूचा सार।

वाचन (पुरुष)– जन–जन के मानस में रमी इन महिमा मंडित महिलाओ की पुकार को माँ दुर्गा ने सुनी। लोक कल्याण हेतु उन्होने अपने मंदिर के कपाट खुलवा दिये। दर्शनो के लिऐ आतुर लाखो की भीड़ के मुखो ने जय –जय के स्वर एक साथ बोले कि पृथ्वी और आकाश डोले और तभी प्रबुद्ध जन गा उठे समर्पण के सुन्दर गीतः–
गीतः–

आज तू कर दे दया माँ !
मेरे तन –मन पर कुटिल काला सा कुहरा छा गया माँ,
आज तू कर दे दया माँ !
मैं नहीं उजला हूँ अब मैला कुचैला धूल खाया।

हार खाकर सब गर्वों कर अपने कृत्यों पर लजाया।।
तू क्षमा के नीर से धो दे तो फिर ठौऊँ नया माँ ।।
आज तू कर दे दया माँ !
सोचता हूँ अब नहीं भूलूँगा इस झूठी डगर में ।
एक लौ पर टिक रहूँगा लोभ के सौ–सौ पहर में।।
भोर का भूला हुआ मैं साँझ को घर आ गया माँ।
आज तू कर दे दया माँ !

वाचन(पुरुष) :– और माँ काली की शक्ति ने, भगवान राम की भक्ति ने अपने भक्तों को उबार ही तो दिया। उन्हें मिल गया सदा को साधना की सफलता का सवल सम्बल, महिषासुर का दमन– रावण का अन्त गूँज उठा जय–जय कार से दिग् –दिगन्त।

वाचन(महिला) :– और प्रकृति में भी तभी तो अपनी शारदीय छटा को जगती तल पर छितरा कर जन मानस को आनन्दित कर दिया स्वच्छ सरस सुगंधित पुष्पों के गुच्छों नें किया समुदाय का अभिनन्दन हँसने लगा सुखों का वातायन। विजयादशमी कहें या दशहरा हरा भरा हो गया पृथ्वी का जन जीवन, और होता रहे गीत– गुंजन।

सूत्र धारः– (सारंगी का स्वर पार्श्व में)

विपत के बादल हुये विलीन –
गगन के चाँद सितारो खिलो !
प्यार कह बाहै डाले मिलो !!
विजय के दिवस लाख आयें।
भक्ति के जीवन मुस्कायें।
अहं का पापाचार हटा।।
उठो अब बैठे बैठे दिलो।
प्यार की बाटें डाले मिले।।

संकेत :– (विजय सूचक वाध बृन्द धीरे –धीरे उभर कर तेज होते है फिर धीरे –धीरे कमशः मौन हो जाते है।)

नरसिंहगढ़पुरवा, छतरपुर

"हमारा बुन्देलखण्ड"

- कमाल उद्दीन निज़ामी 'कमर'

बुंदेली सरज़मी[1] अपनी, अलग तारीख़[2] रखती है,
कि जिसके जाम[3] से सिहबा[4], शुजाअत[5] की छलकती है।
बुन्देली सभ्यता डग डग पै, बोली में महकती है,
यहां की मिट्टी–पानी ही में, आज़ादी की मस्ती है।
यहां, पीरो[6]–जवां ने, सर झुकाना पाप समझा है।
गुलामी का सियह[7] टीका लगाना पाप समझा है।।1।।

पहाड़ी देश है यह, तपते मैदानों की कसरत[8] है,
हवाएं गर्म चलती हैं, हर एक पत्थर में हिद्दत[9] है।
किसानों की यह भूमी है, यहां सरताज[10] महनत है,
ग़रीबी है, मगर मेहमानबाज़ी[11] है, शराफ़त है।
बड़कपन के कभी, वो भारी पत्थर भी उठाये हैं।
हम अपने दुश्मनों को भी पनाहें[12] देते आये हैं।।2।।

यहीं पर विन्धियाचल शान से सर को उठाये है,
यहीं तो केन, चम्बल, बेतवा, दामन बिछाये है।
यहीं तो घाटी घाटी, मांग टेसू से सजाये है,
घना जंगल हज़ारों शेर, गोदी में बिठाये है।
ग़िज़ाली[13] हिरनियां हैं, रक़्स[14] मोरों के सुहाने हैं,
यहीं झरनों के, अल्गोजों के जोशीले तराने हैं।।3।।

यहां हर गांव बसता है, पहाड़ी ही के दामन में,
कि जैसे फूल खिलते हैं, किसी गुल्शन के आंगन में।
बुज़ुर्गों का वो दरजा है, कि जैसे अक्स दर्पन में,
यहीं तो जागती है, जिन्दगी, हर साल सावन में।
घने पेड़ों पै झूले, झूलने में जब मिचकते हैं।
पचासों नाज़नीनों[15] के बदन, इन पर लचकते हैं।।4।।

यहीं पर ईसरी की फाग है, फागों की गोरी है,
कि जिसके हाथ में, अपने पिया के दिल की डोरी है।
यहीं हरदौल के क़िस्से, जवां[16] मीठा मकोरी[17] है,
गड़रिया बन का राजा, और रानी उसकी छोरी है।
यहीं हीरे ज़मीं के पेट से बाहर निकलते हैं,
यहीं तस्वीर वाले, केन से पत्थर निकलते हैं।।5।।

करौंदे, बेर, महुये ही, किसानों की ग़िज़ाएं हैं,
यहीं खेतों की मिट्टी में, बदायें हैं, दुआयें हैं,
यहां हर ठौर पनघट, हर मकां के दर पै, गायें हैं,
यहां मन्दिर, समाधि, और भजनों की सदायें[18] हैं,
यहां की नारी–नारी सख़्त मेहनत की पुजारन है,
यहां का बच्चा बच्चा, काहिली[19] का सख़्त दुशमन है।।6।।

यह आल्हा, और ऊदल, और मल्खानों की बस्ती है,
यह हिम्मत, वीरता, तल्वार, किरपानों की बस्ती है।
यह अपनी आन पर, कुर्बान, इन्सानों की बस्ती है,
यही जौहर[20], यही तो केसरी बानों की बस्ती है।
यहीं तो छत्रसाली तेग़[21] से निकले वो अंगारे।
कि दुश्मन हार से पहले ही, अपने हौसले हारे।।7।।

बुन्देली सरज़मीं, हम को प्यारी है, हमारी है,
सुभाव से है, यह इक फूल, इक पैनी–कटारी है,
कुशादा[22]–दिल किसां है, मामता का रूप नारी है।
यहां इन्साफों–आजादी का हर इन्सां पुजारी है।
यह भारत देश की सबसे निराली इक इकाई है,
न दे प्रदेश का दर्जा, तो शासन की दुहाई है।।8।।

नारायण बाग, छतरपुर

1. भूमि, 2. इतिहास, 3. प्याला, 4. शराब, 5. वीरता, 6. बूढ़े–जवां, 7. काला, 8. अधिकता, 9. गर्मी (जलन), 10. सर का मुकुट, 11. अतिथि सत्कार, 12. शरण, 13. सुन्दर आंखों वाली, 14. नाच, 15. कोमलांगी, 16. भाषा, 17. मकोरा (फल का प्रकार), 18. अवाज़ें, 19. सुस्ती, 20. रण में पति मर जाये तो औरतें इकट्ठी आग में जल जाती हैं, 21. तलवार, 22. बड़े और खुले दिल वाले।

बुन्देली कहावतों में परिवार-व्यवस्था

-डॉ० वीरेन्द्र 'निर्झर'

व्यावहारिक जीवन-मूल्यों में परिवार का बड़ा महत्व है। परिवार व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि के विकास की कल्पना पर आधारित है। वस्तुतः परिवार के बिना मानव विकास सम्भव नहीं । इसीलिये तो सृष्टा को भी एकाकीपन अच्छा नहीं लगा और उसने पारिवारिक रूप से रहने की इच्छा से – *"एकोहं बहुस्यां प्रजायेय"* मैं अकेला हूँ बहुत से उत्पन्न करूँ का विचार किया। इस प्रकार प्राणियों के विकास के लिये साथ साथ रहने की प्रवृत्ति सर्वथा आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है और नैसर्गिक भी । ऐसी प्रवृत्ति पशु-पक्षियों एवं अन्य जीव धारियों में भी पाई जाती है। उनमें भी परिवार की भावना एवं कल्पना विद्यमान है। वे अपनी संतति के लिए घर बनाते हैं, भोजन जुटाते है और उनका संरक्षण कर जीवन संघर्ष के लिए उन्हें समर्थ बनाते है। दीमक चींटी आदि में भी यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। फिर मानव तो सभी प्राणियों में श्रेष्ठ और अधिक बुद्धि सम्पन्न विवेकवान प्राणी है। उनमें यह प्रवृत्ति अपने समस्त गुणों के साथ और अधिक विकसित रूप में प्रस्फुटित हुई है। उनका सदैव इस बात का प्रयास रहा है कि मानवीय गुणों का सही सही विकाश और उपयोग दूसरे को दृष्टि में रखकर करें। इसीलिए परिवार को द्वेष की गंध से दूर परस्पर ऐक्य, सौहार्द्र और सद्भावना से समन्वित रूप देने का प्रयास हमारे मनीषियों का रहा है।

बुन्देलखण्ड में भी परिवार का गठन ऐसे ही उन्नत आधारों पर किया गया था। कहावतों में इसके प्रमाण स्थान- स्थान पर देखे जा सकते है। बुन्देली समाज सदा से ही परस्पर एकता, समानता, प्रेम और सौहार्द्र के सुदृढ़ आधारों पर स्थिर रहा है। उसकी मान्यता थी कि – "मान्स मान्स के कामें आउत"। एक-दूसरे के प्रति सहयोग की यह भावना न केवल मानव को बल्कि समस्त सृष्टि को एक सूत्र में बांधती है। बिखराव में एकात्मता ही परिवार का परम साध्य है। परिवार का गठन मानव के साथ-साथ रहने की प्रवृत्ति का परिचायक है। जहाँ वह मिलकर चलना, एक मत होकर बातचीत करना, मिलकर समझना , एक होकर कर्तव्य पालन में एक मत होने की प्रक्रिया से समन्वित होता हैं। एकता के सूत्र में भय की स्थिति, टूटन का भाव तथा विशृंखलता का अवतरण नहीं होता और न ही ऐसी स्थितियों का भार एक ही व्यक्ति पर पड़ता है। बल्कि वह समभावं से वितरित हार और जीत में भी सबकी भागीदारी मानता है। कहावतें कहती है-

"पाँच पंच मिल कीजे काज, हारे जीते न आवै लाज।"

वे आदेश देती है– *"सौ सयाने एक मता।"*

स्पष्ट है कि जैसे सनातन से विद्यमान सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि दिव्य शक्ति सम्पन्न देवता परस्पर अविरोधी भाव से अपने-अपने कार्य करते हैं, वैसे ही तुम भी समष्टि भावना से प्रेरित एक साथ कार्यों में प्रवृत्त हो जाओ। एकता की शक्ति अक्षुण्ण है। एक और एक मिलकर ग्यारह की शक्ति रखता है। किन्तु एकाकी में शक्ति टूट जाती है। कहते हैं..... *"एक सो आदो दो सो चार।"*

एकता के लिए प्यार, स्नेह और सोहार्द्र की अपेक्षा होती है। एक-दूसरे के हिलाहित की चिंता होती है, इसके बिना एकता संभव नहीं। अतः मिलकर चलना ,एक मत होकर बातचीत करना , मिलकर किसी विषय को समझना और एक-दूसरे के काम आना एकता के आवश्यक सूत्र हैं। *"तेली का ब्याव कुँदेरों पर पर जाय"*, *"तेली कौ बैल मरै कुम्हारिन सती होय"* जैसी कहावतें एक-दूसरे के हिताहित से चिंतित ,दुख में दुखी और सुख में सुखी अपनत्व के भाव से आप्लावित हैं। एकता के लिए अपनत्व की यह स्थिति अनिवार्य है।

पारिवारिक गठन में बड़ों की आज्ञाकारिता अपना विशेष महत्व रखती है। बड़ों के अनुभव, उनके ज्ञान और आदर्श बच्चों के जीवन की प्राथमिक आधारशिला होती है। अतः उनके कथन का मूल्य परिवार में आँका जाय यह अति आवश्यक है। ये एकता के अनूठे सूत्र हैं। इसीलिए बुन्देलखण्ड में बड़ों के बड़प्पन को रखने की बात कही गई है—

1. *बड़न की पाग में सबकौ सम्मान।*
2. *जो न मानै बड़न की सीख, सो लयें खपरिया माँगे भीख।*
3. *बड़न के मौं नईं लगौ चाइये।*

परिवार में माता-पिता, दादा-दादी आदि सबके साथ रहने और उनकी आज्ञा के पालन की ओर संकेत करते हुए कठोपनिषद का कथन है–

"उत्तिष्ठ , जाग्रत ,प्राप्य वरान् निबोधत।।

–कठोपनिषद ,3 / 14

(उठो जागो तथा जो श्रेष्ठ हैं उनके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।)

जीवन में कर्तव्याकर्तव्य, धर्माधर्म, अस्ति-नास्ति के अनेक ऐसे प्रश्न उभरते रहते हैं जो अनिश्चितता को जन्म देते हैं, भ्रान्तियों को उत्पन्न करते हैं और संदेहों को उठाते हैं। ऐसी स्थितियों में विद्वान भी उचित हल नहीं खोज पाते। किन्तु गृहस्थ व्यक्ति जो परिवार के बीच रहता है। बड़ी ही सजगता और गहराई से लोक व्यवहार की मर्यादा स्थापित करता है तथा उलझनों से निकलने का मार्ग खोजता है। इस प्रकार परिवार का महत्व बहुत अधिक है। जिसमें रहकर विचारवान व्यक्ति आत्मपरीक्षण करने का अवसर प्राप्त करता है। इस प्रकार की प्रत्येक परीक्षा उसेकुन कुछ ऊपर उठा देता है। आर्य-परिवार का गठन उच्च स्तर का है। गृहपति को तलवार की धार पर चलना पड़ता है।

कार्य की धुरा सिर पर उठाकर आगे बढ़ते जाना–सब को साथ लेकर बिना किसी को अलग किये, यह कार्य परिवार के प्रधान का सबसे गम्भीर कर्तव्य माना जाता है। परिवार को उपद्रवों से बचा बचाकर रखना, राजनीति जैसी चंचल वस्तु को परिवार के भीतर प्रविष्ट न होने देना–जैसा महाभारत से पता चलता है, एक कुशल गृहस्थ ही समर्थता से कर पाता है। इसीलिए तो कहावतों में स्पष्ट कहा गया है–-

"घरइया कों घर बाँद आउत।"

वे योगयुक्त भावना से परिवार के संरक्षण, संवर्धन, प्रतिपालन और विकास करने में प्रवृत्त रहते थे तथा विघटनकारी दुष्ट तत्वों को उभरने नहीं देते थे। उनका प्रयास होता था कि परिवार के गठन में कहीं भी दरार न पड़ने पावे जिससे होकर बुरे तत्वों का भीतर प्रवेश हो। उनके परिवार विचारों के स्तर पर इस प्रकार गठित किये गये थे जिससे अनेकता के भीतर भी ठोस एकत्व की प्रतिष्ठा हो सकी थी। माता, पिता, पितामह, प्रपितामह, पत्नी, भाई, बहिन एवं आश्रित यहाँ तक कि परिवार के गऊ, कुत्ते और अन्य पशु–पक्षी भी भीतर से एक ही अदृश्य सूत्र में बँधे हुए थे। गृहपति के आचार, विचार एवं व्यवहार आदि का प्रभाव इस बन्धन में परिवार के सभी सदस्यों के चिन्तन और विचार पर अज्ञात एवं ज्ञात रूप में अवश्य पड़ता था। आज भी घर के मुखिया का प्रभाव उसकी संतति पर थोड़े–बहुत रूप में अवश्य पड़ता है। इसलिए उसे श्रेष्ठत्व धारण करना परमावश्यक है। कहावतें कहतीं हैं–

1. घर गुन बहू सार गुन बच्छा।

2. .....जीके तैसे बाप मताई तीके जैसे लरका।

गृहपति के विचारो पर ही उसके आश्रितों के विचारों का शिलान्यास होता है। अतएव उसके विचारों में सदैव समष्टि को स्थान प्राप्त होना चाहिए। तभी परिवार का अर्थ पूर्ण हो सकेगा। व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। यही कारण है कि जब हम परिवार और समाज का विवेचन करने बैठते हैं तो व्यक्ति परिवार और समाज में एक प्रकार की गहरी एकात्मता पाते हैं। प्रत्येक मनुष्य की कुछ नैसर्गिक आवश्यकतायें हैं जिनकी पूर्ति मानव एकाकी रहकर नहीं कर सकता। कुछ दृष्टान्त देखें –

1. अकेले सुभान रोवें कै कबर खोदें।

2. अकेलो चना भाड़ नईं फोरत।

सहयोगमूलक भावनाओं का यहीं से प्रारम्भ होता है। सभी में एक–दूसरे के प्रति सहयोग और सोहार्द्र के भाव उदित हों। पत्नी पति के साथ मधुर संभाषिणी हो, कटुवादिनी नहीं। वे एक–दूसरे के हिताहित की चिन्ता करें तथा स्नेह दें आज्ञापालन, ऐक्य और सद्भावना जैसे सदगुणों का विकास हो; उदारता का वरण हो; एक साथ मिलकर कर्तव्य एवं कर्मो को पूर्ण करें; मतैक्य बना रहे; परिचित अपरिचित सबके लिए हृदय में स्नेह हो; सत्कार भावना का प्रसार हो तथा एक परिवार दूसरे परिवार का पूरक बना रहे।

"आप खायें हरक्कत,बाँट खायें बरक्कत।"

का आदर्श मन्त्र स्वीकार्य हो। परिवार इसी प्रकार की सहयोगी भावनाओं का एक छोटा सा रूप है, जिसमें परम्परागत परिस्थितियों से निपटने के लिए व्यक्ति को पर्याप्त शक्ति मिलती है, किन्तु अपरम्परागत परिस्थिति से बेदागपार लग जाना जरा कठिन होता है। यही कारण है कि बुन्देली व्यक्ति पारिवारिक जीवन पसन्द करता है और उसमें रहने से अपने को अधिक सुरक्षित पाता है। पर कुछ कहावतें एकाकीपन का भी समर्थन करते हुए पायी जाती हैं –

1. पराई आसा मरे उपासा।

2. मेघ समान जल नहीं आप समान बल नहीं।

संभवतः इन कहावतों में बौद्ध–दर्शन का प्रभाव है, जहाँ उन्होंने शरीर को समेटकर बच–बचाकर काँटो के बन से पार लगना ही व्यक्ति की कुशलता माना है।

(क) पारिवारिक व्यवस्थाः- बुन्देली परिवार संयुक्त परिवार प्रणाली का आदर्श उदाहरण है, जहाँ पिता–माता, पुत्र–पुत्री, भाई–बहिन, सास–बहू, पति–पत्नी, ननद और भावज सभी आनन्द के साथ मिलकर निवास करते है। परिवार की व्यवस्था का भार परिवार के सब से बड़े पुरुष सदस्य पर होता है । इसे गृहपति या कर्त्ता कहा जाता है। संयुक्त परिवार की संरचना में कर्त्ता सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति होता हे। उसकी स्थिति सर्वोच्च होती है तथा अधिकार असीम! वह ही सम्पर्ण पारिवारिक चक्र का संचालक तथा समस्त सम्पत्ति का व्यवस्थापक होता है। वह परिवार की धुरी है और शेष सभी सदस्य उसके आश्रित। कहावतें हैं –

1. जी घर नइयाँ बड़डा सो घर डिग्गमडिग्गा ।

2. बाप की कमाई पै तागड़धिन्ना।

संयुक्त परिवार में कर्त्ता के स्थान के पश्चात उसकी पत्नी का स्थान होता है। इसका कारण कर्त्ता और उसके बीच निकटतम भौतिक तथा मानसिक संबन्ध है। वह स्त्रियों के लिए कर्त्ता के समान ही आदरणीय होती है। व्यावहारिक रूप से स्त्री सदस्यों के लिए तो वही कर्त्ता है। "सास मरी बहु कौ राज" अथवा "बिटिया को माँगो होय बऊ को माँगो न होय" कहावत से कर्त्ता की पत्नी के विशेषाधिपत्य का भाव व्यंजित होता है।

पुरुष सदस्यों में पिता या कर्त्ता के पश्चात् बड़े लड़के को ही संयुक्त परिवार की संरचना में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। इसीलिए पितृसत्तात्मक परिवारों में साधारणतया लड़कियों की अपेक्षा लडकों की स्थिति अच्छी होती है तथा उच्च भी। लोक मान्यता है कि– "जो बिटिया से साठ ,तौऊ बाप की नाठ।" यहाँ तक कि बुरे कर्म करने वाले लड़के को भी पिता के निःसंतान होने से अच्छा माना जाता है। कहते हैं–

"पूत के नाव पुतोंड़ियई भली।"

लड़के को इस प्रकार अग्रस्थ स्थान देने का कारण एक तो

श्राद्ध, तर्पण, संस्कार आदि से संबंधित अधिकार उसे प्राप्त होना है। जैसा कहावतों से सिद्ध होता है– *"बेटा नइयाँ तौ पुरखा पानी कौं सें पाहैं।"* दूसरे कर्त्ता की मृत्यु के पश्चात् उसे ही का पद प्राप्त हाता है। कभी–कभी तो वह वृद्ध पिता की उपस्थिति में ही कर्त्ता बन जाता है। "बाप सें बेटा सयानो" कहावत इसी बात की प्रतीक है।

कन्या संयुक्त परिवार में भी पराये घर के धन के रूप में देखी जाती है। कहते हैं – *"बिटिया सोहै सासरे , हौंती सोहै इतसार !"* अतः उसके लिए योग्य वर की खोज तथा दहेज की समस्या माता–पिता के लिए गहन चिन्ता का विषय बन जाती है। क्योंकि – *"जित्तो खावै सबरी बरात , उत्तो खावै दूल्हा कौ बाप।"* किसी प्रकार विवाह हो जाता है तो भी माता–पिता को चैन नहीं। लड़की की छोटी से – छोटी गलती में भी सम्पूर्ण कुल को उसका उत्तरदायी और कलंक का भागीदार बनना पड़ता है। किन्तु सुलक्षणा पुत्री को बुन्देली समाज में पुत्र से भी अधिक स्थान दिया गया है। कहावत है–

1. *बेटा से बेटी भली जो कुलवंतिन होय।*
2. *बेटा एक कुल कौ बेटी दोई कुल की।*

वधू की स्थिति संयुक्त परिवार में अत्यंत विषम होती है। आरम्भ में तो जब वह पितृगृह छोड़कर पतिगृह में प्रवेश करती है, तो बड़े आनंद मनाये जाते हैं। उसकी प्रशंसादि की भी चर्चा महीनों चलती है। *"आउती बऊ औ जनमतों पूत"* सभी को प्यारे लगते हैं। किन्तु बाद में परिवार के सभी सदस्य उससे भिन्न–भिन्न प्रकार के कर्तव्यों को पूर्ण करने की अपेक्षा करते हैं। उसके अधिकारों और सुख सुविधाओं का विचार किसी के मन में नहीं आता। यहाँ तक कि – *"बिटिया का माँगौ होय, बहू का माँगौ न होय"* । पति की ओर से भी उसे निराश होना पड़ता है। क्योंकि समाज में पत्नी के पक्षधर पति को *"जोरू के गुलाम"* की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। लोग उसकी निन्दा करते हैं।

इस प्रकार बुन्देली परिवार के गठन में परिवार के मुखिया का ही आदेश मान्य होता है , जिसे समस्त सदस्य सिर आँखों पर रखकर पालन करते हैं।

(ख) पारिवारिक संबन्धः- परिवार में माता–पिता तथा सन्तान, पति–पत्नी , भाई–बहिन , देवर–भाभी, सास–बहू ,सास–पतोहू,ननद और भावज के सम्बन्ध प्रेम और सौहार्द्र के धरातल पर स्थापित किये गये हैं। वे मधुरता के पवित्र स्पन्दन है ,किन्तु आज की परिवर्तित स्थितियों में उनमें कहीं–कहीं कटुता के चिन्ह उभर आये हैं।

माता-पिता तथा सन्तान का संबंधः-

माता का स्थान हिन्दु जीवन पद्धति में बहुत ऊँचा माना गया। पुत्र के प्रति माँ का स्नेह स्पृहणीय है। कहते है–*"पूत की मैया दूध की गैया।"* उसे संतान के सुख–दुख की विशेष चिन्ता होती है। वह कष्ट की स्थिति को जितना जानती है दूसरा नहीं जान सकता। इसीलिए तो वह पुत्र के जरा से भी दुःख में विचलित हो उठती है। "जाये की पीर मताई खो होत" पिता केवल आज्ञाकारिता तक विशेष जुड़ाव रखता है, पर माँ का करु वरुणालय सदैव पयस्राव करता रहता है–

"आस को बाप निरास की माँ।"

इसलिए तो कहावतकार वात्सल्य की वन्दना करते हुए कहता है

"जीके घर में माई ऊकी राम बनाई।"

तथा ईश्वर से प्रार्थना करता है–

"मताई कौ प्यार , छीनें नै करतार। "

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पिता और सन्तान का सम्बन्ध आत्मिक नहीं होता। पुत्र पिता के गुणों का अनुसरण करता है *"बाप गुन बेटा, सार गुन बच्छा "* कहावत लोक प्रसिद्ध है। पिता बच्चों पर नियंत्रण रखता हैं। उसके चरित्र निर्माण में सहयोगी होता है। इसीलिए उसका व्यवहार बच्चों के प्रति अंदर से मृदुल होते हुए भी बाहर से कठोर होता है, जबकि माता का व्यवहार अन्तर और बाह्य दोनों स्थितियों में समरस सरल और मधुर होता है। उसके व्यवहार में किसी प्रकार का दुराव नहीं होता। इसीलिए बच्चे– *"बाप से डरायँ, मताई के कान उमेंठें"* माँ से नहीं डरते किन्तु पिता से भय खाते है। पर जब पिता का पुत्र पर नियंत्रण ढीला हो जाता है तब– *"बाप कों पूत पढ़ावें सोरा दूनीं आठ"* की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

पति-पत्नी का संबंध :-

पति –पत्नी का संबंध आन्तरिक कर्तव्यबोध पर आधारित होता है। बुन्देलखंड की नारी पति को देवता समझकर उसकी प्रत्येक इच्छा और आज्ञा का पालन करती हुई पति व्रत धर्म का वरण करती है। उससे विचलित नहीं होती भले ही इसे प्राण भी क्यों न समर्पित करना पड़ जायें। उसके इस अक्षय व्रत के विषय में कहावतें साख भरते हुए कहतीं है––

केहरि मूँछ फनिन्द फन,पतिव्रता की देह।
सूर–कटारी सूम–धन, सिर काटे सो लेय।।

ऐसी सुशील और सुहृद नारी घर की शोभा है। पति का अगाध स्नेह भी उसके लिये न्योछावर रहता है। वह एक स्वस्थ परिवार की स्थापना,एक व्यवस्थित घर की संरचना करती है। उसके स्वस्थ विचारों से परिपोषित होकर परिवार सुखी और संमृद्धशाली बनता है। अन्यथा पुरुष अकेले की औकात जो एक संभ्रात और एक निष्टपरिवार का स्वप्न भी देख सकते है। कहा गया है– *"विन बैयर के घर करैं सोरह साख लवार।"* बृद्धावस्था में भी ऐसी पतिपरायणा नारी पति के लिये बहुत बड़ा सहारा होती है। कहा जाता है– *"मत बारे कह की माँ मरे ,मत बूढ़े की जोय।"* किन्तु दूसरी ओर नारी एक वीभत्स रूप भी है। जहाँ *"खसम मार कै सत्ती होय"* की स्थिति से समन्वित वह पुरुष के अविश्वास का कारण बनती है। लोक ऐसी स्त्रियों से सावधान रहने की सलाह देते हुये कहता है–

बगड़ विरानी जै रहें , मानें त्रिया की सीख।

तीनों ऐसई जायेगें ,पाही बोबे ईख ।।

तुलसी दास जी ने ऐसी ही स्त्रियों के लिये ताड़न की व्यवस्था दी है। कहावतें भी ऐसी स्त्रियों को नियंत्रण में रखने की सलाह देती हैं। और कहते है–

"जोरू जोर की नई तो और की।"

भाई -बहिन एवं भाई-भाई का संबंधः-

बुन्देखंड में भाई–बहिन का प्रेम विशुद्ध, सात्विक, दिब्य और अलौकिक माना गया है आपसी बैमनस्य भी दोनों के खून के संबंध को अलग अलग नही कर सकती। कहा गया है– *"भइया होय अबोलनो तौऊ अपनी बाँह।"* बहिन को अपने भाई का गर्व होता है, उसके बल का भरोसा होता है, तभी तो वह दूसरो का विरोध करने में भी पीछे नहीं हटती। कहावत है–

"बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।
बिन बैयर के घर करै, सोरह साख लवार।।"

भाई बहिन के विशुद्ध स्नेह की ब्यंजक एक ओर कहावत दृष्टब्य है––

"भइया की चोट ओ टिहुनी को घाव नईं सहो जात।"

उपर्युक्त कहावतें भाई–भाई के संबंधो को भी व्यक्त करती है ।

देवर-भाभी के संबंध :-

बुन्देली परिवार मे देवर भाभी का सम्बन्ध काफी निकट और मधुर माना जाता है, कहावते हैं–

1. *भौजी की थैलिया देवरा सराफी करै।*
2. *गरीब की लुगाई सब की भौजाई।*

ससुर -बहू तथा जेठ -बहू के सम्बन्ध :-

बहुएँ ससुरं से परदा करती है, तथा बस भर उनके सामने पड़ने से भी कतराती हैं। निम्नलिखित कहावतें इसी बात की प्रतीक है ––

1. *जहाँ बहू कौ पीसनो उतई ससुर की खाट ।*
2. *कुजाँगा खता ससुर बेद।*

जेठ के साथ भी परदा तथा आदर का भाव होता है। कहावत है– *"जेठ की जिठाई राख दई।"* किन्तु कभी–कभी जेठ या ससुर के साथ बहू के अवैधानिक संबंधों की भी चर्चा कहावतें करती हैं– "जेठ के भरोसे पेट"

सास - बहू के सम्बन्ध :-

लोक साहित्य में जहाँ पिता–पुत्र, माता–पुत्री, पति–पत्नी, भाई–बहिन का लोकोत्तर प्रेम दिखाई पड़ता है , वहाँ सास–बहू, ननद–भावज और सपत्नियों में पारस्परिक कलह और कटुता का व्यवहार देखने को मिलता है । कहावतों में प्राप्त सामग्री के अनुसार सास अपनी बहू से सदैव कठोर व्यवहार करती है, शारीरिक कष्ट भी देती है और उसकी सुख–सुविधा में विघ्न बनती है। अपनी लड़की के प्रति उसका स्नेह अधिक होता है। "बिटिया को माँगो होय बऊ को माँगो न होय। "परिणामतः यह असंतोष धीरे – धीरे कलह और संघर्ष का रूप ले लेता है। यहाँ तक कि बहू अपनी सास से बोलना चालना तक छोड़ देती है। दोनों में संबंध विच्छेद हो जाता है कहावत है – "सास सें बैर परोसिन सें नातो। "इस पर सास दूसरों से उलाहना देती पाई जाती है – "सगी सास मानें ना धोबिन के पॉव लागें।" कभी–कभी तो बहू की शिकायते उसके पति से भी की जाती हैं जिससे कई बार बिना किसी अपराध के ही उसे पति की प्रताड़ना के साथ–साथ त्याग की स्थितियों का भी सामना करना पड़ता है । इन विषम परिस्थितियों के विरोध में ही बुन्देली की निम्न कहावत प्रचलित है –

"जिन घर सास न नन्दा तिन घर बड़े अनन्दा। "

ननद और भावज के सम्बन्ध :-

ननद और भावज का सम्बन्ध भी सास और बहू के संबन्धों की तरह ही कटु और विषाक्त देखने को मिलता है। ननद का अपनी माँ और भाई से भावज की शिकायतें करती है और बात–बात में भावज पर व्यंग्य–वाण छोड़ती है। उसको अपलोक लगाने के लिए नये–नये अवसर खोजती है। इन्हीं सब कारणों से ननद को भाभी की पीड़ा और परेशानियों का कारण समझा जाता हैं । कहते हैं– "ननद के पेंट नन्दई जानत।" ननद को अपने ब्यवहारों का ज्ञान तब होता है जब वह विवाहित होकर ससुराल जाती है और वहाँ उसकी ननदं परेशान करती है । कहावत है–––

" नन्द के सेऊ नन्दई भई।"

ननद के ब्यवहार से भावज को इतनीं कटुता हो जाती है कि फिर उसे ननद का मायके आना भी बुरा लगने लगता है। कभी–कभी उसके हृदय में ननद से बदला लेने का भाव भी जाग उठता हैं। और वह ननद से ब्यंग्य करते हुए कहती है–

"लुवा भैया लाये पै काम तौ भोजइयई सें परै।"

सपत्नियों में सम्बंधः-

प्रायः सपत्नियों में एक–दूसरे के प्रति ईर्ष्या के भाव पाये जाते हैं। इस ईर्ष्या का एक मात्र कारण एक दूसरे के अधिकारों पर अपना–अपना आधिपत्य स्थापित करने लगना है। जिस वस्तु में अभी तक केवल एक का अधिकार था अब दो जगह वितरित हो जाती है। यह स्थिति नारी कभी बर्दाश्त नहीं कर पाती, और फिर पति का प्रेम जिसे वह किसी जड़ वस्तु के लिए भी बॉटना पसंद नहीं करती, दूसरी स्त्री में बँट जाये उसे वह कहाँ तक सहन कर सकती है। इसीलिये तो कहते हैं– *"सौत चून की बुरई होत।"* जिसकी माँ इतनी खटकती है उस लडके के लिये वह अपने हृदय में प्यार कहाँ से संजोये। तभी तो कहते हैं–

" कॉटो सालै करील को , औ बदरौटा घाम।

लरका सालै सौत कौ, और सौंज कौ काम।।"

इस प्रकार बुन्देली परिवार में एक साथ रहनें वाले विभिन्न सदस्यों के आपसी संबंधों में प्रेम और सौहार्द्र के साथ–साथ कहीं–कहीं कुछ खनक भी सुनाई पडती है। किन्तु गृहपति की सूझबूझ और व्यवस्थापन कुशलता से भी एक सूत्र में निबद्ध परस्पर सौम्य सम्बंध बनाये हुये कार्य करते हैं।

-ए 141 ,इंदिरा नगर बुरहानपुर (म0प्र0)

बुंदेलखण्ड महिमा

-एल. एम. चौरसिया

करियो विन्ध्यवासनी दाया, खुशी राय सब रियाया ।
कण कण में बुंदेलखण्ड के, तेरा रूप समाया ।
पानी में अमृत माटी में, है हीरा की माया ।
रोग शोक सब भवभय हारी, सदा राखियो छाया ।। 1 ।।

हो गये वीर बुंदेला बांके, चल रये जिनके साके ।
नरभूषण हरदौल अमर भये, भौजी सैं विष खाके ।
मान राख लये भानेजन के, मड़वा सामू आके ।
गांव गांव में बने चौंतरा, प्रथम पूजवैं जाके ।। 2 ।।

हो गये वीर बुंदेला बांके, चल रये जिनके साके ।
छत्रसाल मुगलन में घुसकें, हरदम करे धमाके ।
रीवा फतह करो बनवाओ, द्वार बुंदेला जाके ।
चहुँदिश से बुंदेलखण्ड के, बांधे रये हैं नाके ।। 3 ।।

छत्ता ताने रओ है छत्ता, डुलन न पाओ पत्ता ।
अभिमानी दलेल के छिन में, मार उड़ा दये लत्ता ।
ज्यों नाहर के सामूँ बिल्ली, त्यों दिल्ली की सत्ता ।
नर नाहर बुंदेल केशरी, बुंदेलन कौ हत्ता ।। 4 ।।

हो गये शूरवीर वरदानी, सब जग में सम्मानी ।
चम्बल टौस नरमदा जमुना, वेत्रवती लौ छानी ।
छत्रसाल सैं लरबे बारौ, बचो न वीर गुमानी ।
वीर भूमि बुंदेलखण्ड जा, कोउ न ई की सानी ।। 5 ।।

सबसैं भूम बुंदेली प्यारी, विपत बिड़ारन बारी ।
कुदआ समा बसारा कुटकी, जुन्डी की बलिहारी ।
पिसी जवा और धान लठारा, कांकुन तन हितकारी ।
छप्पन भोग लगाकें इनके, मिटवै निर्सई सारी ।। 6 ।।

बांकी भूम बुंदेली न्यारी, हमें प्राण सैं प्यारी ।
विध्यांचल सतपुड़ा प्रकृति की, अद्भुत छटा निहारी ।
कैन, धसान, नर्मदा, चम्बल, जीवन पालन हारी ।
विन्ध्यवासिनी चित्रकूट की, महिमा अपरमपारी ।।7।।

सजकें चली बुंदेली धनियाँ, मिलकैं भरवे पनियाँ।
गरै विचौली और लल्लरी, पैरें भरीं तविजियाँ।
हांतन बाजूबंद बजुल्ला, गुंजै चूरा चुरियाँ।
ककरन डरीं छमाछम बजबें, पांवन की पैजनियाँ।।8।।

नौनी है बुंदेली बोली, बोली है अनमोली।
बोलचाल में लगै गुरीरी,मिसरी जैसी गोली।
कयें जू कांकी आव पांवनी, कहन बड़ी रसघोली।
जीजा जू सारी जू कै कें, हंस हंस करै ठिठोली।।9।।

छेड़ें लमटेरा की तानें, काँवरिया मस्ताने।
फेंटा कसैं सुआपी बांदें, धारें सुन्दर बाने।
भक्तिभाव सैं भरे लबालब, इनके हृदय खजाने।
सांचे नेम टेम व्रतधारी, हर हर के दीवाने।।10।।

चलदई कांवरिया की गोलें, हर हर बम बम बोलें।
इनके संग नरमदा जू कीं,जैकारा दे टोलें।
खग मृग वृन्द करैं अगवानी, भक्तिभाव सैं डोलें।
लमटेरा की तानें हियके, बंद किवारें खोलें।।11।।

कातक गा–गा कैं कतकारी, खोजें मदन मुरारी।
रसवारी रसिया गा रसवें, बांके रसिक बिहारी।
खेत पहारन बिलवारी गा, ढूड़े सब बनवारी।
होरी, फाग कबीर तान सैं, छाँटें छैल बिहारी।।12।।

- ग्रंथपाल,
शासकीय महाविद्यालय, बिजावर (छतरपुर)

पटा -बनैठी

- डॉ. सीता किशोर

0.0 भिन्नार्थी शब्दों का युग्म है *पटा – बनैठी*। उच्चारण के स्तर पर प्रथम पद अपरिवर्तनीय हैं और द्वितीय पद की अन्त्य ध्वनि परिवर्तित होकर "बनैती" व्यवहार में है। पटा–बनैती के कौशल मध्यकाल से लेकर वर्तमान तक निर्विवाद अखाड़ों के आकर्षण हैं।

0.1 पटा–बनैटी के अभ्यास को पटेबाजी और अभ्यास करने वाले को पटेबाज कहा जाता है।

0.2 कोश में संस्कृत पद 'पट' से विकसित 'पटा' लगभग दो हाथ लम्बी किर्च के आकार की लोहे की पट्टी को कहा गया है।

0.3 बनैटी को पटेबाजी के अभ्यास में सहायक माना जाता है। बनैती बांस की लगभग चार फीट लम्बी लाठी के दोनों सिरों पर गेंद के आकार में कपड़े लपेट कर बनाई जाती है।

1.0 *आकार* –पटा की बनावट लोहे की लम्बी किर्च जैसी होती है। लोहे की पतली पट्टी जो अंतिम सिरे पर सँकरी होती हैं और पहला सिरा लोहे की दो पट्टियों के द्वारा हत्ता से जोड़ दिया जाता है।

1.1 सामान्य रूप से पटे के पांच भाग हैं –

1. हत्ता 2. पकड़ 3. मुट्ठा 4. ठोक – पट्टियां और 5. दुधारी

1.1.1 हत्ता – लोहे का खोल जो पटे का आदि भाग है । पटेबाज अपना हाथ कलाई तक इसमें डाल लेता है ।

1.1.2 पकड़ – हत्ते में जिस स्थान तक उँगलियां पहुँचती हैं वहां पर लगी हुई लोहे की छड़ को पकड़ कहा जाता है, जिसे पटेबाज उँगलियों से साध कर पटे पर अपनी पकड़ मजबूत करता है ।

1.1.3 मुट्ठा – हत्ते का वह सिरा जो पटे से जुड़ा होता है, वह मुट्ठा अथवा मोहरा कहा जाता है । इसका आकार गोलाई लिये हुये होता है और बाहरी पर्त पर शेर आदि की आकृति उकेर दी जाती है ।

1.1.4 पट्टियां – एक डेढ़ अंगुल चौड़ी और चार–पांच अंगुल लम्बी दो लोहे की पट्टियों से हत्ता और पटा को तीन कीलें ठोक कर जोड़ दिया जाता है।

1.1.5 दुधारी – पटे का मुख्य भाग है, जो पहले सिरे पर ऊपर नीचे ठुकी लोहे की पट्टियों के कारण लफ नहीं पाता और शेष भाग अभ्यास के समय लहरा लेता रहता है।

2.0 हत्ता या दस्ताना पीतल, तांबा अथवा लोहे का ढलवां होता है। एक पर्त खुली रहती है, जिसमें पटेबाज अपने हाथ को कोंचा या कलाई तक डाल कर पकड़ को साध लेता है ।

3.0 *संचालन* – आमने–सामने आकर के पटेबाज दाहिने हाथ में पटे और बांये हाथ में ढाल लेकर एक–दूसरे पर पटे का प्रहार और बचाव करते हैं ।

3.1 पटेबाजी के अभ्यास में सहायक ढाल ढलवा लोहे की जो डेढ़ फीट के लगभग गोल होती है। ढाल की पेंदी ऊँची और किनारे झुके होतें हैं । पेंदी में अंदर चार कुन्दे लगा कर रस्सी पिरो दी जाती है जो बांये हाथ में पकड़ कर पटे के प्रहार का बचाव करती है। अभ्यास में सुलभता से उपलब्ध करने के लिये ढाल का छोटा रूप ऊपर की पर्त खाल और नीचे की पर्त कपड़े की लगाकर बना लिया जाता है।

वीर प्रसूता बुन्देली माटी के शूरवीरों के सामने शत्रुओं को आने के पूर्व सैकड़ों बार सोचना पड़ता था। इसका कारण बुन्देलखण्ड के रणबांकुरों का युद्ध कौशल में दक्ष होना रहता था। गांव–गांव में अखाड़ों की परंपरा के साथ युद्ध कौशल सिखाने की परम्परा भी थी। विभिन्न अस्त्र–शस्त्र थे, जो आज विलुप्त हो रहे हैं। इसी तरह के अस्त्र 'पटा–बनैठी' के बारे में बुन्देलखण्ड के विद्वान डॉ0 सीता किशोर ने इस आलेख में जानकारी प्रदान की है।

-सम्पादक

3.2 पटेबाजी के अभ्यास में जिरह – बख्तर और झिलम टोप पहनने की परम्परा भी रही है जो धीरे–धीरे लुप्त हो गई ।

4.0 *प्रहार* – पटेबाजी के प्रहारों को दांव कहा जाता है । ये मुख्य रूप से तीन और सामान्य को मिला कर पांच है । इनके नाम क्रमशः 1. सिर 2. कम्मर 3. चीर 4. तमाचा और 5. बाहिरा हैं । प्रहार के लक्ष्य अंगों को इन दावों के नामकरण का आधार बनाया गया है ।

4.1 सिर – दांये हाथ में पटा लेकर दाईं झूम के साथ जब प्रतिद्वन्दी की गर्दन को प्रहार का लक्ष्य बनाया जाता है तब दांव का नाम 'सिर' होता है ।

4.2 कम्मर – प्रतिद्वन्दी द्वारा आक्रमण के दांव का काट कर दिये जाने के परिणाम स्वरूप पटा आक्रामक की कमर के बाईं और वेग के साथ आ जाता है, तब उसी वेग को प्रत्यावर्तन के साथ प्रतिद्वन्दी की कमर में पटा घुसेड़ने का दांव कम्मर वर्ग में आता है ।

4.3 चीर – प्रतिद्वन्दी द्वारा कम्मर–दांव की काट कर देने पर आक्रामक चीर – दांव द्वारा सामने वाले पर प्रहार का लक्ष्य प्रतिद्वन्दी को चीर कर दो फांक कर डालने का बना लेता है इस दांव में पटा आक्रामक अपने सिर की ऊंचाई तक लहराता है।

4.4 तमाचा – सिर, कम्मर और चीर मुख्य दांवों का काट हो जाने पर प्रहार का लक्ष्य तमाचा मारने की मुद्रा जैसा कनपटी को बनाया जाता है। इस प्रहार की काट प्रतिद्वन्दी अपने अंग को झुका कर सकता है।

विवाह के मंगलगीत

- डॉ0 (श्रीमती) गायत्री बाजपेयी

विवाह स्त्री पुरुष का वह पारस्परिक संबंध है जो धर्म और नियम से आबद्ध होता है। हिन्दु जाति में विवाह को एक धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मान्यता दी गई है। बुन्देलखण्ड में जब वर एवं कन्या के विवाह संस्कार की तिथि निश्चित हो जाती है तो वरपक्ष एवं कन्या पक्ष दोनों ही तरफ विवाह की पूर्व तैयारी एवं उनके रीति रिवाज प्रारम्भ हो जाते हैं। इस अवसर पर दोनों ही पक्षों में अनेकानेक रसासिक्त मधुर गीत गाये जाते हैं। वर पक्ष के यहां गाये जाने वाले गीतों को बन्ना कहा जाता है। इन बन्ना गीतों में माता–पिता एवं वर की कोमल एवं मधुर कल्पनाओं व भावनाओं को सरस ढंग से अभिव्यक्ति मिलती है। पुत्र के विवाह की असीम लालसा माता–पिता के हृदय में रहती है। मां का हृदय पुत्र के विवाह की कल्पना मात्र से आल्हादित हो उठता है यहां तक कि वह अपने जीवन को ही व्यर्थ समझने लगती है। ऐसे ही भावों से आपूरित यह गीत है जिसमें माता कौशिल्या पुत्र राम के अविवाहित रहने की कल्पना मात्र से अपने जीवन को निरर्थक व सारहीन समझ रही हैं गीत में व्यक्त मॉ के भाव एवं विवाह की कल्पना दर्शनीय है–

जीना जन्म मोरे सबये अकारथ मोरे घर राम कुंआर।
को मोरे रामा के मुकुट समारे को विधि रचे बियाव।
को जो राम जी की झपुरिया लगावै सो महकत जात बरात।
भैया भरत उनके मुकुट समारे सो लक्ष्मण सजी है बरात।
बहिन सुभद्रा झपुरिया लगावै सो महकत जात बरात ।
जीना जन्म मोरे......

बुन्देलखण्डी लोक विश्वास के अनुसार जैसे ही बरात निकासी होती है तो शुभाशुभ विचार किया जाता है। भारतीय परम्परानुसार कौआ का बोलना अशुभ माना जाता है। इसी गीत की अंतिम पंक्तियों में कुछ ऐसे ही भाव व्यक्त किये गये हैं। भगवान राम की बरात जा रही है जैसे ही बरात प्रस्थान करने लगती है कौआ बोलने लगता है। जिससे मां का हृदय अनिष्ट की आशंका से आकुल हो शुभाशुभ विचार की इच्छा प्रकट करता है। गीत की इन पंक्तियों का भाव दर्शनीय है–

निकरी बरात गुइईन उनके बाजी दाहिन बाहिन बोले हे काग
कागा के सगुन विचारों भैया भरत कउने विधि बोले है काग
कि कछु मंडपे अनबन हुइये सो कि रे दइजे थोरे होय
नाहि मंडपे अनबन हुइये सो नाहि दइजे कम होय सीता को
ब्याहव अजोध्या से आइहै राम लिखे बनवास जीना .....

(पृष्ठ क्र0 31 का शेषांश)

4.5 बाहिरा – यह दांव पटे को आवर्त की मुद्रा में घुमा कर आक्रामक द्वारा प्रतिद्वन्दी की कमर से लेकर सिर तक की देह–सीमा को लक्ष्य बनाकर किया जाता है। इस दांव की काट बैठक अथवा उचट्टा द्वारा की जाती है।

5.0 ***पैंतरा*** – पटेबाजी में पैंतरा एक ओर प्रहार क्षमता बढ़ाते हैं तो दूसरी ओर दांव की काट करने के अवसर की सतर्कता को बल देते हैं। प्रहार–क्षमता और सतर्कता पैंतरा के दो ध्रुव हैं। पैंतरा मुख्य रूप से 1. दांया 2. बायां 3. अगाड़ी और 4. पिछाड़ी हैं।

6.0 ***प्रदर्शन*** – पटेबाजी के प्रदर्शनीय करतब अंचल के अनुरूप स्थिर कर लिये जाते हैं। प्रदर्शन में प्रहार, काट, घुमाव एक से अधिक प्रतिद्वन्द्वियों के प्रहारों के काट और जमीन में कतार बांध कर गाड़े गये 6–8 और 10 पटों को थप्पी देकर फलांघना शामिल हैं।

7.0 ***बनैती*** – बांस की लाठी और रस्सी से बनाई जाने वाली बनैतियों के आधार पर इसके दो प्रकार हैं।

7.1 बनैती का मुट्ठा लगभग चार फीट का होता है और इस मुट्ठे के दोनों सिरों पर गेंद की आकार में कसकर कपड़ा लपेट दिया जाता है। लपेटे गये कपड़े के ऊपर एक मजबूत कपड़ा सीं दिया जाता है और इन लट्टुओं के बन जाने पर बनैती तैयार हो जाती है।

7.2 बांस की लाठी के मुट्ठे के स्थान पर उसी अनुपात की रस्सी के सिरों पर कपड़े की गेंदें बना कर प्रदर्शनीय बनैती बनाई जाती है।

7.3 घुमाने की दृष्टि से बनैती एक दस्ती और दो दस्ती होती है। एक दस्ती में मुट्ठा मोटा और दो दस्ती में कुछ पतला होता है।

8.0 बनैती का संचालन दायें बांयें और सामने की ओर घुमाकर किया जाता है। दायें–बांये के घुमाव का सम्मिलित नाम –मुर्रा है। इन तीन घुमावों के अतिरिक्त चौथा घुमाव चौतरफा का होता है जिसे झकोरा कहा जाता है।

8.1 बनैती में पैंतरा दायें, बायें और सामूँ बदले जाते हैं। प्रदर्शन का आकर्षण पैंतरेबाजी से बढ़ जाता है।

8.2 रात के समय बनैती के सिरों वाले गोलों में आग लगा कर रोशनी को चक्राकार कर दिया जाता है।

8.3 पटा के साथ बनैती को पकड़ने के लिये पटे के हत्ते के ऊपर चील अथवा हवाई जहाज की शक्ल में रख लिया जाता है।

9.0 ***पटा*** – बनैती हत्ते के पास बनैती को रख कर के पटेबाज दोनों को कसकर पकड़ लेता है और इस दशा में प्रहार के साथ रक्षा भी एकाकार हो जाती है।

9.1 पटा – बनैती प्रहार और रक्षा का सम्मिलित प्रदर्शन है। दांव और काट के करतब निरंतर अभ्यास से आते हैं। पटे के प्रहार और बनैती के काट दर्शक को आनंद में डुबो देते हैं।

- सेंवढ़ा, दतिया म.प्र.

वरपक्ष के यहां बरात गमन के अवसर पर अनेक नेग चार होते है। दुल्हे को फूफा एवं जीजा, आदि द्वारा सजाया जाता है। जिसका वर्णन बनरा गीतों में अत्यंत ही सजीव ढंग से किया जाता है। ऐसे ही भावों का इस गीत में वर्णन किया गया है उसके श्रंगार के लिये फूफा जीजा आदि श्रंगार सामग्री लिये हुये खड़े हैं सभी लोग बनरा की प्रतीक्षा कर रहे हैं–

राजा बनरा सोवे अटारी सबै सखी देखे खां ठारी।
चंदन का टीका फूफा लये ठाड़े खौरे तो काढ़ो हजारी सबै सखी देखें.....
केशरिया जामा दर्जी लये ठाड़े पहिरो राजा हजारी सबै सखी ..
पैरो के जूता चमरा लये ठाड़े बांधो तो बनरा, हजारी सबै सखी .....
कैशरिया साफा जीजा लये ठाढ़े बांधो तो बनरा हजारी .....

बुन्देलखण्ड में दूल्हे को ढाई दिन का राजा माना जाता है। उसे उसी प्रकार से सम्मान प्राप्त होता है जो एक राजा को दिया जाता है। निकासी के समय दूल्हे के सिर पर मौर बांधने की प्रथा भी बुन्देलखण्ड अंचल में है। विवाह के अवसर पर प्रत्येक वर वधु को राम सीता, पिता को दसरथ और जनक तथा माता को कौशिल्या और सुनयना के रूप में स्वीकार किया जाता है। अतः समस्त वैवाहिक गीतों में ये प्रतीक रूप में उपस्थित रहते हैं। उक्त गीत में बनरा के विशिष्ट साज श्रृंगार का वर्णन हुआ है–

बैठे कौशिल्या की गोद अवधपुर में राजा बनरे ।
माथे में मोरे बाधों राजा बनरे कलगिन में नाच रही मोर अवधपुर राजा बनरे।
गले में गोफे पहिरो राजा बनरे टिकवन में नाच रही मोर अवधपुर........
कानन कुण्डल पहिरो राजा बनरे मोतिन में नाच रही मोर अवधपुर.......
केशरिया जामा पहिरो राजा बनरे पनरस में नाच रही मोर अवधपुर......
पावन तोड़ा पहिरो राजा बनरे भोजन में नाच रही मोर अवधपुर.....

इस गीत में वर की वेशभूषा का विस्तृत वर्णन हुआ है। विवाह के शुभ अवसर पर वर की रूप छवि का वर्णन गीतों में स्त्रियों द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग से किया जाता है। विविध प्रकार से सुसज्जित वर को कुदृष्टि से बचाने के लिये वर की माता, बहन, आजी आदि द्वारा राई नौन उतारने का प्रचलन भी बुन्देलखण्ड में है। अतः इस आशय के अनेक गीत प्रचलित है। ऐसा ही एक गीत जिसमें बनरा को घर से बाहर जाने के लिये रोका जा रहा है । क्योंकि बुन्देली मान्यता के अनुसार लगुन चढ़ जाने के पश्चात् वर घर से बाहर नहीं निकलता है। ऐसे ही वर्जन भावों एवं कुदृष्टि से बचने के उपक्रम का उल्लेख करता यह गीत–

बनरे बजरिया न जाव तुम्हारे कोउ जादू न डारे
बनरे मनावन गे उनके आजुल दादी राई नून उतार तुम्हारे कोई जादू न डारे...
बनरे मनावन गे उनके बाबुल अम्मा राई नून उतार, तुम्हारे कोई......
बनरे मनावन गे उनके चाचा चाची राई नून उतार, तुम्हारे कोउ.....

इसी प्रकार से कन्या पक्ष के यहां भी अनेक रसासिक्त गीत गाये जाते है। जिन्हें बन्नी कहा जाता है।भारतीय समाज में कन्या का विवाह एक भीषण समस्या के रूप में विद्यमान है। विवाह योग्य कन्या माता पिता के लिए एक असाध्य चिंता की तरह छाई रहती है। यही कारण है कि पुत्री का जन्म होते ही माता पिता का हृदय विषाद और वेदना से आच्छन्न हो जाता है। आँखों की नींद मन की शांति जीवन का सुख और हृदय का आनंद विवाह योग्य कन्या को देखकर नष्ट हो जाता है। विवशता और विकलता के भीषण ज्वारों में उद्वेलित माता–पिता का हृदय निरन्तर करुणा और दुःख से आपूरित रहता है। कन्या के विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले इन गीतों में माता–पिता के करुणा विगलित हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति होती है। माता–पिता के दुःख से कन्या अपरिचित नहीं होती उसे भी प्रतिपल यह अनुभूति व्यथित करती है कि उसका जन्म ही क्यों हुआ है। अगर उसका जन्म न होता तो आज उसके माता–पिता को इतनी चिन्ता और परेशानी का सामना न करना पड़ता । ऐसे ही भावों की अभिव्यंजना इस करुण गीत में हुई है–

काहे का बापा मोरे कुइया खुदायो काहे लगायो लख आम
काहे का बापा मोरे कन्या जो जन्मी काहे बढाओ जिया सोच
पनिया भरे खां बेटी कुइया खुदाई चौहके खां लख आम
धरम करे खां बेटी कन्या जो जन्मी कटे जन्म के पाप
छिपा बिन हूम दूध बिन अचवन बिना धिया धरम न होय,

पापों से मुक्ति दिलाने वाली कन्या को हिन्दू समाज में उपेक्षित एवं घृणित स्थान प्राप्त होने का एक मात्र कारण दहेज की समस्या है। अपने हृदय के टुकड़े का दान करते समय माता–पिता वरपक्ष वालों के समक्ष अपनी सामर्थ्य के अनुसार संपत्ति और अपनी सारी प्रतिष्ठा रख देते है। तब कहीं कन्या का विवाह सम्पन्न हो पाता है। प्रत्येक माता–पिता की हार्दिक अभिलाषा होती है कि उनकी बेटी उनसे भी अधिक सम्पन्न घर में जाय जहां उसे मायके से अधिक सुख सुविधायें उपलब्ध हों। ऐसे ही भावों को लिए यह गीत जिसमें कन्या के माता–पिता के समक्ष समस्या है कि वह अपनी पुत्री के विवाह के लिये घर वर देखने के लिए किसे भेजे? कौंन है जो उपयुक्त सभी चीजें अच्छी तरह से देख सकेगा? एक व्याकुल और क्षुब्ध पिता के मन की करुण वेदना इस गीत में अभिव्यंजित हुई है–

केही पठाऊँ बखरिया जो देखे केही चंदन चहुंपार।
केही पठाऊँ सुघर वर देखे केहि के हैं उनवार।
नाउ पठाऊँ बखरिया देख बरिया चंदन चहुंपार।
ददुली पठाऊँ सुघर वर देखें कह के हैं उनवार।
लीपी पोती बखरिया देखी देखी चंदन चौपारा।
गुदूड़े खेलत सुघर वर देखे रामलखन उनवार।
थारी भरी मोती ऊपर धरा नारियल राम के लगन चढ़ाय।
लगन चढ़ाय जनक घर लौटे दसरथ सजी बरात।
बाजत आवै करैली के बाजा घूमत आवे निशान।
पूछत आवै भरत शत्रुघ्न कौंन जनक जी के दुआर।
जबहि रमैया मोरे दौरे आये सोने के कलश धराये।
केही पठाऊं.......

प्राचीन समय में नाई और बारी ही घर वर देखने जाया

करते थे उन्हीं के बताये अनुसार माता–पिता अपनी पुत्री का विवाह तय कर दिया करते थे। विवाह संबंध तय हो जाने के पश्चात् विवाह की तिथि निश्चित करने का समय आता है जेठ मास के विवाह में अनेक मुश्किलों और परेशानियों का सामना करना पड़ता है। अतः कन्या अपने पिता को जेठ माह में विवाह न करने का परामर्श देती है। इस गीत में कन्या कि मनोभावों की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

बार–बार में बरजो रे दादुल जिठवा न रचयो बियाव।
घुड़ला बछड़वा धूपन मर जइन्हें शिववर जइन्हें कुम्हलाय
इतने वचन तुम कहे बोली बेटी मैं कुछ कुल केर हीन
घुड़वा बछेड़वा मैं बागा बंधाहियों शिववर तम्बूवा तनाय
सोने का पिंजरा बनबइन्हों मोरी बेटी वाही मा रखियो चुराय
झूठे वचन तुम कहे बोले दादुल झूठे हमें न सुहाये
सोने के पिंजरा में भइया की दुलरिया हमखां लिखे परदेश
ऊसर–ऊसर डुलिया जात है पचरंग आठ कहार
गउअन के चरवइया भैया माई घर कहियो संदेश
हमरी पुतारिया माता गंगा बहावे हम तो चले परदेश
बार–बार में बरजो रे दादुल जिठवा न रचयो बियाव।

उक्त गीत में कन्या के करूणा विगलित हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। पुत्री का विवाह पिता की चिर प्रतीक्षित अभिलाषा की सुखद पूर्ति है। अतःवह आनंद विभोर हो बरात के स्वागत में अपना सर्वस्व लुटा देना चाहता है । वह बरातियों को अधिक से अधिक सुविधायें प्रदान करना चाहता है । लोकगीतों में इस प्रकार के भावों का बड़ा ही सुन्दर निरूपण हुआ है। कुछ ऐसे ही भावों को अभिव्यंजित करता यह गीत जिसमें पिता पुत्री का संवाद वर्णित है–

जो मैं जनतयों सुघर वर अंइहे सो गलियां मै रखलयौ झराय
गलियां झराउतो इतर से किंछउ तो सो फुलवा मैं रखतयौ बिछाय
ओ ही फुलवा से सुघर वर आइहैं मौरन की मौती झर जाये
जितने का बाबुल मोरे दाइज दइहैं उतने के मोती झर जाय
इतने वचन तु कहे बोली बेटी मैं कछु कुल केर हीन
अचहड दइहों बेटी पचहड़ दइहों छड़का सो दहो लदाये।
जौ मै जानत यो सुघर...

द्वारचार के पश्चात कन्या पक्ष के यहां अनेक नेगचा सम्पन्न होते हैं। द्वारचार के पश्चात् वर और कन्या द्वारा मण्डप नीचे एक दूसरे के ऊपर चावल फेंकें जाते है यही पर प्रथम बा वर कन्या को एवं सास,साली,सरहजों आदि को देखता है। कु ऐसे ही भावों को प्रकट करता यह गीत जिसमें वर मालिन अपनी पत्नी,सास,साली और सरहज का परिचय जानने की जिज्ञा प्रकट करता है।

सोने का खभौना मोतिन विधि आयो उड़की लड़ेरी ठाड़
वहां से आवे दुलरी दुलेरूवा सो मालिन देयो बताय
कउनी है सारी कौउनी सराजै कउनी है कमिनी हमार।
सोन का कटोरा दहिया परोसे वो ही शिववर सरहज तुम्हा
गुड़िया खेंलत चोपरिया बैठी वो ही शिववर साली तुम्हार
सगली रैन सुहगवा मॉ बीती वो ही शिववर कमिनी तुम्हार
नौ मन सुनवा मंडपे तरे संकल्पे वो ही शिववर सास तुम्हा
सोने का खभौना.....

इस प्रकार बुन्देलखण्ड मे विवाह के अवसर पर गाये ज वाले इन गीतों मे विविध रसों की सरस अभिव्यंजना हुई है।

- सह0 प्राध्यापक (हिन्
महाराजा महाविद्यालय, छतर

कविता-

भूल गईं आराम को

- माधव शुक्ल 'मनोज'

वह लकड़ी की मुहरी लादे
आती एक गरीबनी
नमक मिर्च के लिये सोचती
मोल–भाव के दाम को ।

वह घसिहारिन–घास काटती
दिन–दिन भर मैदान में
पोली, दो पोली ले गेहूँ
चली कांखती शाम को ।

वह मजदूरिन दूर गांव से
आती भूख संभाल कर
जो अपनी महनत पर जीती
भजकर अपने राम को ।

बूढ़ी धनियां लीप रही है
आंगन लम्बरदार का
क्षीण बुढ़ापे के जीवन में
भूल गई आराम को ।

वह विधवा रमिया का बेटा
ढोर चराता गांव के
जिसकी पांच बरस की मूरत
सहती वर्षा–घाम को ।

वह खेतों की रानी अब तक
अपना करम–टटोलती
हाय, विधाता इस जीवन में
जोड़ न सकी छदाम को ।

कोहेफ़िज़ा, भोपाल

मानक बुन्देली की समस्याएँ

- डॉ० कैलाश बिहारी द्विवेदी

बुन्देली एक विस्तृत भू–भाग की जन–भाषा है । ग्रियर्सन ने इसकी भाषिक इकाई का क्षेत्रफल लगभग 1,14,675 वर्गमील आँका था। प्रश्न यह उठता है कि इतने व्यापक क्षेत्र में व्यवहृत भाषा का एक सार्वभौमिक मानक रूप आज तक क्यों नहीं उभर सका ?

इसका सबसे बड़ा कारण है – इसका प्राकृतिक परिवेश। यह पूरा क्षेत्र नदियों, पहाड़ों और जंगलों के दुर्लंघ्य प्राकृतिक अवरोधों से भरा पड़ा है । जहाँ बुन्देली को मैदानी क्षेत्र मिला वहाँ इसका दूर–दूर तक विस्तार हो गया है । दक्षिण में नागपुर के मैदानी क्षेत्र अमरावती, चाँदा और भण्डारा जिलों में यह नागपुरी हिन्दी के रूप में जा पहुँची है, तो उत्तर में इटावा, मेनपुरी और आगरा जिलों में ब्रजभाषा से जा मिली है । परन्तु इसका मूल स्थान जिसे कहना चाहिए – अर्थात् विन्ध्य पर्वत श्रृंखला के क्षेत्र में इसके अनेक उपबोली रूप उभर आये हैं । यह समस्या मुख्यतः बुन्देली के पूर्वी क्षेत्र की है।

ऐतिहासिक कारणों से बुन्देली का पश्चिम भाग कौरवी और ब्रज से भी प्रभावित हो गया है और उसमें एकरूपता कुछ अधिक है क्योंकि एक तो यह मैदानी क्षेत्र है दूसरे दिल्ली के मुसलमान शासकों के मालवा और दक्षिण विजय–अभियानों को मार्ग भी यहीं होकर रहा है । पठानों के सुल्तान काल से मुगल औरंगजेब तक यह क्रम चलता रहा । इस कारण इस क्षेत्र के शब्द समूह, व्याकरणीय कोटियों में तथा अन्य भाषा–प्रवृत्तियों में नव प्रवर्तन भी होता रहा है, इसलिए बुन्देली के पश्चिमी रूप की अलग पहचान बन गयी है ।

लगभग 4 करोड़ लोगों द्वारा बोली जाने वाली बुन्देली के 'मानक स्वरूप' को विकसित करने की आज परम आवश्यकता है। इसके अभाव में एक सर्वमान्य, सर्वस्वीकृत तथा प्रभावी भाषा का रूप बुन्देली ग्रहण नहीं कर पा रही है। इसके रास्ते में आने वाले अवरोधों पर 'बुन्देली भाषा' के विशेषज्ञ डॉ0 कैलाश बिहारी द्विवेदी (जिन्होंने बुन्देली शब्द कोष भी तैयार किया है) ने इस आलेख में प्रकाश डाला है, जिसे नज़र अंदाज नहीं किया जाना चाहिए ।

- संपादक

उपर्युक्त प्राकृतिक एवं समाजैतिहासिक कारकों (Sociolinguistie factors) के अतिरिक्त कुछ अन्य भाषा वैज्ञानिक कारण भी हैं जो पूरी बुन्देली में तात्विक एकता होते हुए भी उपबोली रूपो ने की पहचान बनाते हैं ।

बुन्देली के पूर्वोत्तरी क्षेत्र में हकार का प्रयोग मध्यमान रूप में पाया जाता है, परन्तु बनाफरी उपबोली क्षेत्र में हकार में महाप्राणत्व की अधिकता रहती है । यहाँ तक कि ***'साँउन'*** को ***'साँहुन'*** कहा जाता है, जबकि मूल शब्द ***'श्रावण'*** में न कहीं 'ह' है न बीच में महाप्राण ध्वनि है जिसके विकसित रूप में 'ह' रह गया हो । बीच में 'व' है, जिसका 'उ' में रूपान्तरण ध्वनि विज्ञान सम्मत है ।

मध्य तथा पश्चिमोत्तर क्षेत्र में हकार काफी निर्बल हो जाता है और अनुनासिक हकार प्रायः स्वरीकृत हो जाता है । जैसे – कहाँ–काँ, जहाँ–जाँ, जगह–जगाँ, नहीं–नँईं, स्याही–स्यायी, परन्तु हकार लोप की प्रवृत्ति एकान्तिक नहीं है । जहाँ शब्दों पर बल देने का भाव मन में हो वहाँ हकार स्पष्ट रहता है । जैसे ***'अहार ढकेलै पहार'*** लोकोक्ति में 'अहार' की महत्ता और 'पहार' की विशालता के कारण इन पर बल देने का बोध मन में बना रहता है । ***'जग जाहर'*** मुहावरे में 'जाहर' (ख्यात) पर बल देने की दृष्टि से 'हा' का प्रयोग यथावत रहता है । अन्यथा पहार का पार और जाहर का जार रूप भी पाया जाता है । पश्चिमी क्षेत्र में शब्द पुनर्रचना की प्रवृत्ति के कारण 'ह' का यथोचित प्रयोग होने लगा है । इसके दो कारण नव प्रवर्तन और नव्य प्रवर्तन (शिक्षा का प्रसार) है ।

उपर्युक्त जिन क्षेत्रों में हकार बहुलता है वहीं महाप्राण ध्वनियों का अधिक प्रयोग होता है। मध्य क्षेत्र में यदि शब्द की आद्य ध्वनि महाप्राण हो तो यथावत् रहती है। बीच की महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण हो जाती है। जैसे घूँघट>घूँगट, बघार>बगार, दूध>दूद आदि।

बुन्देली के मध्य और उत्तरी क्षेत्रों में रकार लोप की प्रवृत्ति पायी जाती है, परन्तु इन दोनों क्षेत्रों में **रकार** लोप की भिन्न –भिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं। मध्य क्षेत्र में रकार सामान्यतः स्वरीकृत हो जाता है। जैसे अटारी>अटाई, हमारौ>हमाऔ, भुंसारौ>भुंसाऔ परन्तु यदि शब्द में केवल दो ही ध्वनियाँ हों और उनमें 'र' चाहे पहले हो या बाद में यह यथावत रहता है । जैसे – अरा, तरा, गारौ, मोर, भोर, बेर, फेर, टेर, राँट, खार आदि।

उत्तरी क्षेत्र में रकार लोप के कारण 'र' की पूर्व या पश्च ध्वनि में लोप हो जाता है। जैसे – हर्दी>हद्दी, धरदौ>धद्दो, मिर्च>मिच्च, कुचर>कुच्च आदि। कुछ प्रयोगों में यह प्रवृत्ति मध्य क्षेत्र में भी पायी जाती है। जैसे करलो>कल्लो, धरलौ>धल्लो, कर डारौ>कड्डारौ, मार डारौ>माड्डारौ आदि।

बलाघात में भी भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में अन्तर पाया जाता है। कहीं शब्द के साथ बलवाची 'इ' तथा कहीं 'उ' दीर्घ रूपों का प्रयोग होता है। जैसे हमईं–हमऊँ, उनईं–उनउँ इत्यादि। मध्य क्षेत्र में दोनों का प्रयोग होता है, परन्तु यह वैकल्पिक रूपों में न होकर कुछ व्याकरणिक स्थितियों रूढ़ होता है।

तान (Tone) या स्वर लहर उपबोली क्षेत्रों की पृथकता प्रदर्शित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। इससे बुन्देली

उपबोली क्षेत्र की प्रत्यक्ष पहचान बनती है। अन्य भाषायी तत्वों की तरह तान को शब्दों में व्यक्त करना आसान नहीं है। सुन कर ही इसे पहचाना जा सकता है। छतरपुर जिले में ही कई तानों–बनाफरी, लुधाँती, खटोला और परिनिष्ठित तानों का अनुभव किया जा सकता है।

बुन्देली में बहुलतावाची विशेषण के लिए भी अनेक पर्यायवाची शब्द प्रचलित हैं। जैसे कुल्ल, मुतके, मुलक, गल्लन, बिलात, भौत आदि। इनके प्रयोग क्षेत्र भी लगभग निश्चित हैं।

स्थानवाची सर्वनामों में भी बहुत सारे स्थान भेद हैं। जैसे – इतै–उतै, नाँय–माँय, ह्याँ–ह्वाँ, हिनाँ–हुनाँ, झाँ–भाँ आदि। इसी तरह सर्वनाम के अन्य पुरूष एकवचन में भी ऊ, ओ, बा (उस) तीन रूपों का प्रचलन पाया जाता है।

इनके अतिरिक्त कुछ कारक चिन्हों और बहुवचन बनाने के प्रत्ययों में भी थोड़ा सा भेद है। अधिकतर 'न' जोड़ा जाता है कहीं–कहीं खड़ी बोली की तरह 'ओं' का प्रयोग होता है।

उपर्युक्त कारणों से तात्विक एकता होते हुए भी बुन्देली के अनेक रूप दिखते हैं। यद्यपि यह स्थिति सभी बोलियों की होती है। बुन्देली में ऐतिहासिक कारणों एवं प्राकृतिक अवरोधों के कारण कुछ अधिक हो सकती है, परन्तु इन छोटे–छोटे कारणों से कोई अलग बोली नहीं बनती है। उनमें एक परिनिष्ठित रूप होता है जो सेतु का काम करता है और साहित्य रचना के काम आता है।

बुन्देली के मानक रूप के स्थापित न हो सकने के कुछ कारण हैं :–

इनमें प्रमुख कारण है – इसका बुन्देली नाम । इससे दूसरे लोगों को ऐसा लगा कि यह तो बुन्देला राजाओं से शासित क्षेत्र की बोली है । यद्यपि बुन्देला राज्य बहुत विस्तृत रहा है । ओरछा इसका केन्द्र बिन्दु रहा है । यह स्वाभाविक है कि राजनैतिक या व्यापारिक केन्द्र की भाषा परिनिष्ठित रूप ग्रहण करने लगती है । इसलिए इसी क्षेत्र की बोली में साहित्य–सृजन भी हुआ है । क्षेत्र के विस्तार और साहित्य की उपलब्धता के कारण ही समग्र क्षेत्र की बोली को थोड़े से भेदों के होने पर भी तात्विक एकता के कारण ग्रियर्सन ने इसे बुन्देली नाम दिया है । परन्तु जातीय अहम् के कारण सम्भवतः दूसरे क्षेत्रों को इस नाम को अपनाने में संकोच रहा और जातीय वर्चस्व को आधार मानकर जहाँ जिस जाति का वर्चस्व रहा वहाँ की बोली उस जाति के नाम पर पुकारी जाने लगी । जैसे – भदौरी, पवारी, तवरधारी, सिकरवारी, धँधेरी, लुधाँती, कोष्ठी आदि । यहाँ तक कि ग्वालियर के मराठा राज्य के अन्तर्गत होने के कारण गुना–शिवपुरी की बोली को लोग मरेठी कहने लगे थे, जबकि उसका मराठी से कुछ भी लेना–देना नहीं है ।

दूसरा कारण है – बुन्देली का अनेक बोलियों से घिरा होना जिसके कारण इसके संक्रमणशील रूपों में विविधता कुछ अधिक है ।

एक कारण यह भी है कि बुन्देली के अधिकांश शोधार्थियों ने डिग्रियों को ध्यान में रखते हुए ज्यादातर किताबी काम (Table work) किया है । पूरी बुन्देली में जिस तात्विक एकता को ग्रियर्सन ने स्वीकार किया है, उसकी व्याख्या, पुष्टि और मानक रूप स्थापित करने के ठोस उपाय तलाशने का काम नहीं किया है ।

एक सामाजिक कारण भी है। आधुनिकता अपनाने की अंधी होड़ में जन साधारण के मन में लोक संस्कृति, साहित्य तथा भाषा के प्रति एक हीनता और उपेक्षा की भावना पैदा हो गयी है । इसलिए उसके उद्धार और परिष्कार की किसी के मन में चिन्ता नहीं है ।

आज जरूरत इस बात की है कि भाषावैज्ञानिक बुन्देली का मानक रूप स्थापित करने का तर्क संगत प्रयास करें और बुन्देली साहित्यकार अति क्षेत्रीयता को त्याग कर उसे अपनायें । इस दिशा में बुन्देली अकादमी, छतरपुर ने सन् 1997 के बुन्देली संवाद नामक अधिवेशन में पहल की थी । इसका एक सत्र 'बुन्देली के मानकीकरण' पर ही एकाग्र था । इन पंक्तियों के लेखन ने भी इस विषय पर एक तर्क पूर्ण एवं विश्लेषणात्मक आलेख पढ़ा था और उस पर एक बहस भी आमंत्रित की थी, परन्तु खेद है कि कहीं से किसी भी प्रकार की सकारात्मक का नकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं हुई, सागर विश्वविद्यालय के बुन्देली पीठ से भी नहीं, जहाँ आलेख की प्रति भी भेजी गयी थी ।

इस तरह के कुछ ठोस उपाय करने से ही बुन्देली का परिष्कार और विकास हो सकेगा, जो कि बोलियों के इस ह्रासमान युग में अधिक आवश्यक हो गया है ।

- पुरानी नजाई, नगर पालिका के पास, टीकमगढ़

कविता

मामुलिया का ब्याह रचाती

- माधव शुक्ल 'मनोज

रेंजा की सूखी फलियों के
बिछिया पहिने पांव में
छम–छम कर बालायें गाती
एक सुहागिन गीत को ।

मामुलिया का ब्याह रचाती
वे जरिया की डार से
आराधन करतीं अगले घर
पाऊँ सब की प्रीत को

वे नव दिन–नवदुर्गा–ढारें
घर में सुख का राज हो
हिलमिल–दुलरातीं तन्मय हो
भजनों के संगीत को ।

चौका–बासन, लीपा–पोत
जिनके मनहर खेल
जेठे–बड़े–सियानों की
अपनाती हैं – नीति को

- ए-९८, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
कोहेफ़िज़ा, भोपाल

फागों में बुन्देली लोक संस्कृति

- डॉ० कु० पुष्पा दुबे

लोकगीतों में "फाग" एक ऐसी विधा है, जो बसंत के आगमन के समय से नीम की निबौली के साथ तक चलती है। बसंती पर्व से लेकर शिवरात्रि तक यह अपनी चरमसीमा पर होती है। फागों में नृत्य और संगीत के साथ फड़बन्दी भी जमती है, तब एक के बाद एक सांस्कृतिक बिम्ब श्रोताओं और दर्शकों के समक्ष उपस्थित होकर सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करते है। विचित्र संयोग कि जहाँ संस्कृति में लोकगीत जन्मते हैं,वही लोकगीत अपनी अनूठी अभिव्यंजनात्मक शक्ति के सहारे जनजीवन के समग्र सांस्कृतिक परिवेश को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित कर देते हैं।

वस्त्राभरणः- बुन्देलखण्ड में वस्त्रों के अंतर्गत औरतों में घांघरा,चोली,चूनर,धोती तथा पुरुषों में धोती,कुरता ,मिरजई आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। स्त्रियों का आकर्षण प्रायःगहनों के प्रति अधिक होता है। बुन्देली फागों में इन वस्त्राभूषणों का चित्रण बडी सजीवता से मिलता है। सिर पर बेंदी,कानों में कर्णफूल,झुमका, नाक में बेसर,गले में सांकर, गजरा, हार, हाथों में ककना, दोहरी, कमर में करधौनी, पैरों में पैजना, झांझे, बिछिया, छल्ला आदि विशेष महत्व रखते हैः–

बिसरे ना मोय हलन दूर की, बेसर की गूँज तनक मुरकी।
दस उँगरी दस मुँदरी सोहें, बजन पैजना के सुर की।
कानन भर–भर करनफूल हैं, गोरे गाल सांकर लुरकी।।
नैनन भर–भर सुरमा सोहै, भरो मॉग शुभ सेंदुर की।

ये वस्त्राभूषण सौन्दर्य को तो द्विगुणित करते ही है,उस स्त्री विशेष की पारिवारिक सम्पन्नता विपन्नता को भी प्रकट करते हैं, यदि कोई स्त्री आभूषण नहीं पहनती, तो पड़ोसिनें उसके लिए कैसी–कैसी अटकलें लगाती है, और व्यंग्य बौछार कर आहत करती हैं देखिये तो :–

दुर बिन फीकी लगै जा मुइयाँ, काये परोसन गुइयाँ,
कै तुमने गानें धर राखी , कै तुमरे हैं नइयाँ।
लैकें दाम पैर आ जल्दी जइये फेर रसुइया।
गंगाधर कयें दूर न जानै, सुनरा बसै अथैया।।

जूनागढ़ की साड़ियाँ चंदेल संस्कृति से लेकर उत्तर रीति–संस्कृति तक राजसी संस्कृति में विशेष रूप से प्रचलित रही है।

झूना भौजी लैन गुलाबी,ओढ़ खड़ी भई भाबी।
मजेदार लिख रही बदन में,चुबो परत दिन आबी।
भौतउ नौनौ लगै परतन, देख तुम्हे सुखयाबी।
जबसें नजर लगी गंगाधर, तबसें भई बेताबी।

एक तौ जूनागढ़ की साड़ी और दूसरे सुकुमार और मादक सौन्दर्य के श्रृंगार की शालीनता में वृद्धि करने वाला गुलाबी रंग भला क्यों न बुन्देली ललनाओं को प्रिय हो। इसी प्रकार और भी वस्त्रों का वर्णन फागों में हुआ हैः–

बिसरै न घलन कंदेला की, दये झाँक जुबन अलबेला की।
गोटादार हरीरी अंगिया, बेल भरी चौबेला की।
आदी डरी भुजन के ऊपर कोर लदाऊ सेला की।

"गुंदना" गुदवाने का प्रचलन ग्रामीण जनजीवन में आज भी प्रचलित है। ग्रामीण बालाएँ इन्हें स्वर्ग प्राप्ति का अवश्य साधन भी मानती है। इसीलिए वे अंग–प्रत्यंगों में राधाकृष्ण, राम–सीता की झाँकियाँ तथा विविध प्रकार के फूल गुदवाती है। इस विशेष अंगों पर गुदवाये गये गुदने फागों में अपना विशेष स्थान बनाये हुए हैं:–

"गुदना लगत गाल पै प्यारौ,
हमखाँ रजऊ तुम्हारो।"

प्रेमी मन प्रियतमा का सान्निध्य प्रतिक्षण चाहता है, किन्तु यह सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं होता। इसीलिए वह प्रियतमा का आभूषण बनना चाहता है ताकि वह प्रतिक्षण सामीप्य लाभ ले सकेः–

सांकर करनफूल के होते, इन मुतियन कोते।
बैठत उठत निगत नैहुरत में, परै गाल पै सोते।
राते लगे मांग के नेचें,अंग–अंग सब मोते।

संस्कार :- जन्म, विकास और मृत्यु जीवन के शाश्वत परिवर्तन है। व्यक्ति, आदर्श, सामाजिक जीवन व्यतीत करें, इसलिये बुन्देली संस्कृति में विविध संस्कारों का विधान है। फागें,यौवन के मदमाते क्षणों से अधिक सम्बंध रखती हैं, इसलिए फागों में विवाह संस्कार को ही विशेष महत्व मिला है। आज के समाज में कुछ दोष आ गए हैं,जैसे बाल–विवाह और अनमोल विवाह। फागों में इसका चित्रण देखिये :–

का सुख भओ सासरे मइयाँ, हमें गये कौ गुइयाँ,
परबे करै दूध पीबे कों, सास के संगै सइयाँ।
दिन भर बनी रात कंकीरन,चढ़ै ससुर की कइयॉ।
भर–भर देवै करै दूर से देखत हमें तरइयॉ।

ऐसे स्थलों पर फागकार दोषों को भी गिनाने में नहीं चूके हैं। मृत्यु परम सत्य से एकाकार की घड़ी लाती है, इसीलिए बुन्देली संस्कृति में यह संस्कार भी उतना ही महत्व रखता है जितना कि जन्म और विवाह संस्कार, चूँकि लौकिक व्यामोह और स्वजनों से विछोह के कारण मृत्यु प्रियकर नहीं है, इसलिए फागकार इसका सम्बंध गौने की विदा से जोडते हुए कहता है :–

इक दिन होत सबई कौ गौनो, होनौ औ अनहौनो।

जानें परत सासरैं सॉसऊँ,बुरओ लगै चाय नौनो।
जा ना बात काऊ के बस की, हंसी मचै चाय रोनो।

लोक–विश्वास देवी–देवता,पीर–पैगम्बर,टोना–टोटका आदि पर विश्वास करना बुन्देलखण्ड में बहुत प्रचलित है–पनघट पर जाती हुई रूपवती नायिका को एकाएक नजर लग गई,उसका प्रभाव देखिये –

चलती करहाई जल भरतन,नीचीं गरदन करतन।
ना मालुम काहू पापी की निघा बदन परा परतन।
खाके झोंक गिरी तिरछाही, बनी नहीं डग धरतन।

नजर लग जाने पर गुनियां या तांत्रिक अपनी तंत्र विधा से नजर को उतारते हैं,इन सभी स्थितियों का चित्रण बुन्देली फागों में मिलता है :–

नोनें नई नजर के मारें,राती रजउ हमारें,
रोजउ रोज झरैया गुनिया,दस–दस बेरा झारैं।
मंत्र पढ़ाकें लट बंधवाई,जंत्र गरे में डारे।
बिधना उदना अलफ बचानै,जिदना पटियाँ पारैं,
ईसर रोज रजउ के ऊपर राई नौन उतारें।

इसके अतिरिक्त भाग्य पर विश्वास,पूर्वजन्म पर विश्वास, ईश्वरी सत्ता की सर्वोपरिता आदि पर विश्वास फागों में देखने को मिलता है।

लोकादर्श :- लोकादर्शो की यों तो कोई सीमा नहीं है,फिर भी कर्मशीलता उदात्त मानवता,पत्नीव्रत धर्म और पतिव्रत धर्म, आराध्य और प्रेमी के प्रति एकात्म भाव आदि सांस्कृतिक मूल्यों का वर्णन फागों में हुआ है। बुन्देली संस्कृति में विवाहित स्त्री के लिए सोलह–श्रृंगार का विधान है लेकिन उसका श्रृंगार तभी अच्छा लगता है जब पति घर पर हो :–

बांके नैन कजरवा आंजो, बलम बिना ना साजौ।
दुलहन घर दिखैया को है, बो परदेश बिराजौ।
आई बडी बडन के ब्याही, अपने कुल खॉ लाजौ।
करती कौन काम का कहिये, कजरौटी न मॉजौ।
साजौ नई लगत है ईसुर, वे औसर कौ बाजौ।

बुन्देली संस्कृति के अनुसार पति के परदेश गमन पर यदि स्त्री श्रृंगार करती है तो कुल की मर्यादा जाती रहती है।इन स्थलों पर फागों में उपदेशात्मकता प्रधान हो गई है।

मित्रता का आदर्श तभी उपस्थित होता है, जब विपत्ति में भी वह साथ दे। कर्मशीलता बुन्देली संस्कृति का प्रमुख अंग है। यहाँ पुरूष ही क्या, ललनाएँ भी कठोर परिश्रम करती है यहाँ तक कि जीवन के श्रृंगारिक और मादक क्षण भी कर्म करते–करते बीत जाते हैं, तभी सौंदर्यभोगी मन खीझ उठता है–

"ऐंगर बैठ लेओ कछु कानें काम जनम भर रानें।
सबखॉ लागो रात जियत भर, जौ नई कभऊ बड़ानै।
करियो काम घरी भर रै कैं, बिगर कछू नहिं जानै।"

लोककला :- नृत्य और संगीत संस्कृति के पुरातन और अखंड तत्व है । बुन्देली फागों के साथ एक विशेष प्रकार का नृत्य प्रचलित है, जिसे राई कहते है। इस नृत्य मे पुरुष गाता है ,बेंड़िनी नृत्य करती है । राई में केवल एक ही धुन होती है उस धुन में फागों को गेय बना लिया जाता है–

नैना रंगरेजिन नै मारे,कर दए प्रान दरारे,
दबे रात अलफा के भीतर,जुबन दोउ अनियारे,
गिरबी लेत दिखाने हमखों,तोरे छूटा कारे।
ईसुर बड़ भाग है उनके जो इनसे ना हारे।

कहीं–कहीं शुद्व लौकिक और कहीं पारलौकिक लीलाएँ इस नृत्य के आधार बनते हैं। संगीत की दृष्टि से फागों की धुन एक अजीब मस्ती रखती है। छन्द शास्त्र के अनुसार फागों को सार,नरेन्द्र या ललित पद की श्रेणी में रखा जाता है। इनमें सुख–दुख,हास–परिहास,मिलन–बिछोह आदि सभी संवेग लोक–रागिनी बनकर मुखर हो उठे हैं। कही, शुद्व श्रृंगारी चित्रण है, तो कहीं शुद्ध भक्ति परक। किन्हीं– किन्हीं फागों मे बड़े थोड़े से शब्दो में समग्र जीवन दर्शन मुखरित हो उठा है:–

मोपै झपट कै बोलो नहि जाए,ननद बाई निर्मल फूल कटैया कौ।
रामा कगदा हो तौ बॉचिये,करम न बॉचे जॉय ननद
रामा ताला हो तौ जुर पाते,समुन्द न पाटे जॉय ।।
रामा सम्पत हो जुर बॉटिये, विपत न बॉटी जाय ।।

सांस्कृतिक परिदृश्य:- सांस्कृतिक परिदृश्यों में राम और कृष्ण विषयक लीलाएँ विशेष महत्व रखती है। राम और जानकी की सरस लीलाएँ जहाँ मर्यादा विहित पूज्य भाव से प्रेरित है,वहीं राधा–कृष्ण व गोपी–कृष्ण विषयक लीलाएँ लोकरंजक भाव से प्रेरित है , वही राधा–कृष्ण व गोपी –कृष्ण विषयक लीलाएँ लोकरंजक भाव से प्रेरित होकर जीवन के श्रृंगारिक पक्ष से इस प्रकार घुलमिल गई हैं कि लौकिक नायक–नायिका और राधा कृष्ण में कोई भेद ही नहीं रह जाता,या यों कहिये कि हर नायक गोप या कृष्ण और हर नायिका गोपी या राधा बन जाती है। इसी से रसिकराज नटनागर कृष्ण और रस मंजरी राधिका फागों के अधिष्ठाता और अधिष्ठात्री बने है:–

कारी सारी में तक मारी, मारी भर पिचकारी।
पिचकारी के घलत राधिका ,चोर बोर भई भारी।
भारी भीर भई सखियन की , छेंक लय गिरधारी।
धारी धरौ मलौ सुख रोरी, कयें बृषभानु दुलारी।
लागी पकर धाम मनमोहन, नर सें कर देव नारी।
नारी पै गंगाधर इननें, भौत करी अधिकारी।

राम और जानकी के होली दृश्य दूसरे प्रकार के होकर भी मस्ती और उल्लास से आपूरित हैं:–

होली खेलें राम रनधीरा , होली खेलें राम रनधीरा।
राम ललक्ष्मण भरत शत्रुधन, अंगद और महावीरा।
रंग गुलाल लिये सब डोलें, भई अवध अति भीरा।
झॉज मंजीर बीन डफ बाजें, ढोलक और मंजीरा।
डारैं रंग भरत रिपुसूदन,लछमन मलैं अबीरा।

बुन्देली लोक मूल्य

- डॉ० श्रीमती प्रमोद पाठक

लोकमूल्य किसी वैचारिक क्रांति का परिणाम नहीं है। लोक में प्रचलित श्रेष्ठ रीति–रिवाज, परम्पराओं और आदर्शों का निरंतर अनुकरण धीरे–धीरे लोकमूल्यों के रूप में प्रतिष्ठा पाता है। लोकमूल्यों से लोकसंस्कृति और फिर किसी देश विशेष की संस्कृति का निर्माण होता है। संस्कृति के निर्माण में लोकमूल्यों का सर्वाधिक योगदान है। किसी भी देश की संस्कृति का सच्चा प्रतिबिम्ब वहाँ के लोकमूल्यों में होता है। सांस्कृतिक मूल्यों की अपेक्षा लोकमूल्यों में अधिक स्थाईपन होता है,क्योंकि लोकमूल्य राजनीति और अर्थनीति से अपेक्षाकृत कम प्रभावित होते हैं, जबकि शिष्ट संस्कृति, सभ्यता के आधुनिकीकरण और वैज्ञानिकीकरण से प्रभावित होकर रंग बदलने लगी है। आज भी भौतिकवादिता और वैज्ञानिकता लोकमूल्यों पर आघात नहीं पहुंचा पाई, जबकि शिष्ट सांस्कृतिक मूल्यों में मूलभूत परिवर्तन हुए है। लेकिन लोकमूल्यों के साथ ऐसी बात नहीं है, इसका कारण लोकमूल्यों का स्थाईपन है। उनमें परिवर्तन लगभग पचास–साठ वर्ष में होते हैं।

कुछ लोकमूल्य स्थाई होते हैं और कुछ अस्थाई। उदाहरणार्थ हरदौल का देवत्व आज से शताब्दियों पूर्व भी था और आज भी है। इसी प्रकार कुछ लोकमूल्य अस्थाई होते हैं। उदाहरणार्थ आज से चालीस वर्ष पूर्व सामंती व्यवस्था में राजा का जो सम्मान था, अब बहुत कुछ कम हो गया है। तात्पर्य यह है कि लोकमूल्य लोक में प्रचलित रीति–रिवाजों, परम्पराओं और आदर्शो का पूँजीभूत रूप है। जो शिष्ट संस्कृति से अपेक्षाकृत अधिक स्थाई और व्यावहारिक होते है। उनमें परिवर्तन धीरे–धीरे आता है। एकाएक वैचारिक आंधी या तूफान उनकी अस्मिता को झिंझोड़ नहीं सकते। जीवन का प्रत्येक पहलू, रिश्ते–नाते,पशु–पक्षी,द्रुम–लता आदि सभी के साथ लोकमूल्य जुड़े हैं,इसलिए ये व्यापक भी बहुत है। यहाँ कुछ प्रमुख लोकमूल्यों का आंकलन मेरा अभिप्रेत है।

वीरत्व और स्वाभिमान :- बुन्देली धरती सदैव वीरों की भूमि रही है। लगातार विदेशियों के आक्रमणों ने वीरत्व और स्वतंत्रता रक्षा के जीवन मूल्यों को और भी सघन बना दिया है। आल्हा–ऊदल से लेकर बीरसिंह देव, चम्पत राय, छत्रसाल, सभा सिंह,अमान सिंह,मर्दन सिंह,बखतबली और लक्ष्मीबाई तक वीरों की एक लम्बी श्रृंखला यहाँ मिलती है जो यहाँ के वीरत्व का ज्वलंत प्रमाण है। लगातार संघर्ष और देशरक्षा के कारण प्राचीन और मध्ययुग में क्षत्रियों का जीवन मूल्य ही प्रजापालन और देशरक्षा बन गया। कायरों की भांति जीवन जीने की अपेक्षा वे मृत्यु को अधिक श्रेष्ठ समझते है। क्षणभंगुर जीवन से उन्हें कोई मोह नहीं है,मोह है तो केवल मातृभूमि की रक्षा का,स्वाभिमान का और नारियों के सतीत्व और सम्मान का, इसलिए वे कहते हैं –

बारह बरस लौ कूकर जीवै, और तेरह लौ जियै सियार।
बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवै तो धिक्कार।।

ये पंक्तियाँ क्षत्रियों की रणप्रियता, संकल्पप्रियता,अपनी आन बान शान पर मर मिटने की प्रवृत्ति का द्योतन कराती है। क्षत्रिय अपनी आन–बान ,शान की रक्षा के लिए मर मिटते है। ऐसे वीरों का सम्मान करना भी बुन्देले जानते है। ऐसे वीरों के लिए मानवत्व में देवत्व का आरोपण बुन्देली क्षेत्र की अपनी विशेषता है। क्षत्रिय यदि जाति रक्षा के लिए प्राणों त्सर्ग करता है, तो यह उत्सर्ग उसका व्यर्थ नहीं जाता । बुन्देली क्षेत्र में उसे अमर करके देवता बना दिया जाता है, इसलिए इन गुणों का यहाँ निरंतर विकास हुआ है। आल्हा ऊदल , हरदौल, प्राणसिंह,लक्ष्मीबाई, बखतबली आदि ऐसे ही बीर अमर और इतिहास पुरुष हैं।

ईश्वरी सत्ता में अडिग आस्था :- दुख–सुख हर्ष–विषाद जीवन के सभी पहलुओं में ईश्वर की आराधना बुंदेलों के जीवन का अभिन्न अंग है। प्रकृति की दी गई कोई भी भेंट सबसे पहले देवताओं को अर्पित की जाती है, उनके बाद ही वह उपयोग में लाई जाती है। उदारहण के लिये देवउठनी एकादशी, बसंत पंचमी और शिवरात्रि के अवसर पर सर्वप्रथम ऋतु के धान्य, फल–फूल आदि से देवताओं का पूजन करके उपयोग में लाये

(पृष्ठ क्र. 38 का शेषांश)

पनघट के दृश्य ,षोड़शी बालाओं तथा देहातियों के चित्र बड़ी सजीवता से फागों मे अंकित हुए है। समग्रतः फागों में बुन्देली संस्कृति का चित्रण बड़ी सजीवता से हुआ है। फाग केवल ग्रामीण संस्कृति तक ही सीमित न होकर परिनिष्ठत संस्कृति को भी उजागर करते हैं । इसीलिए रूप सौदर्य से लेकर ऐन्द्रिय उत्तेजना तक के दृश्य तथा विशुद्ध ईश्वरीन्मुख दृश्य , जनजीवन के परिवेश, उनके विश्वास , इच्छाएँ , कलाएँ आदि सभी फागों मे मुखरित हो उठे हैं। फागों में बुन्देली संस्कृति के चित्रण हेतु चित्रमयी मुहावरेदार लालित्यमयी बुन्देली भाषा का सहारा लिया गया है। इन फागों को वाणी प्रदान की हैं, ईसुरी, गंगाधर, ख्याली ,युगलेश ,भुजबल तथा अन्य अज्ञात कवियों ने।

-नरसिंहगढ़ पुरवा छतरपुर (म०प्र०)

जाते है। सर्वात्मवाद का सुन्दर उदाहरण बुंदेली क्षेत्रों में दिखाई देता है। इसलिये हर पशु–पक्षी ,हरेक तृण धान्य, पेड़ पोधै मनुष्य सभी किसी न किसी रूप से कभी न कभी पूजे जाते है। प्रकृति के कण–कण में, ब्यक्ति नदी–नाले, पेड़–पौधे आदि समस्त जड़ चेतन में परमात्मा को देखते है, इसलिये सभी पूजा करते है। देवताओं में छत्तीस करोड़ देवताओं की कल्पना यहाँ की गई है। जिसमें ब्रम्हा, विष्णु, महेश, देवी नृसिंह, हनुमान, सूर्य, अग्नि आदि प्रमुख है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे अलौकिक ब्यक्ति जो मानव की रक्षा करने में बलिदान हो गये है , वे लोक देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित हो गये है। हरदौल, कारसेदव,मनिया देव, हिंगलाज महारानी, कुल देव, दूलह देव, वीजा सेन, रक्कसबाबा आदि यहाँ लोक देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन देवताओं में लोगों की अडिग आस्था है, इसलिये धार्मिक यात्राओं का, तीर्थाटनों का यहाँ विशेष महत्व है। साधनहीन और निर्धन होने पर भी लमटेरा की पुकार यहाँ हर गृहस्थ को प्रेरित करती है:–

दरस की तो बेरा भई,
बेरा भई पट खोलो छबीले घनस्याम,
दरस की तो बेरा भई,

परिजन, बंधुजन, पुत्र, धन–धान्य आदि लौकिक व्यामोह है। परम सत्य तो ईश्वर है, इसलिये सारे मोह तोड़कर ईश्वर आराधना की बात हमारे लोक दर्शन में कही गई है।

राम नाम सुमरो नहिं रे मोरे प्यारे, करो न हरि से हेतु।
वे नर ऐसे जायेगें ज्यों मूली कौ खेत रे भजन करौ हो।।

मानवीयताः- व्यापक मानवता, करुणा, अहिंसा, दया, दान, धर्म आदि मानवीय मूल्यों का बुंदेली जन जीवन में प्राध ाान्य है। हाथी से चींटी तक को मारना जघन्य अपराध समझा जाता है । निर्बलों पर दया करना ,दान देना ,धर्म में निरत रहना सज्जनता की कसौटी समझी जाती है। कोई भी शुभ कार्य करने से पहले दान देने का विधान है। अशुभ कार्य हो जाने पर भी उसके अशुभ फल के निवारण के लिए दान देना अनिवार्य समझा जाता है । दानों में सर्वश्रेष्ठ कन्यादान समझा जाता है:–

बिच गंगा बिच जमुना,तीरथ बड़े है पिराग।
जहाँ बिच बैठे बाबुल मोरे,देत कुवाँरिन दान।

दान देने का प्रचलन यहाँ बहुत है। यहाँ तक कि भाई बहन को लिवाने श्वसुर गृह जाता है , जब मार्ग में कुँआ खुदवाने ,चिड़ियों को अन्न चुगवाने,बाग बगीचे लगवाने जैसे पुनीत कार्य करता चलता है। इसी प्रकार अतिथि सत्कार पुनीत कर्तव्य समझा जाता है। धर्म यहाँ मानव के प्रत्येक कार्य के साथ जुड़ा है। बुंदेलखण्ड में अन्य प्रांतों की भाँति सामन्तवाद प्रचलित था। इसलिए राजाओं,जागीरदारों के प्रति आदर भाव आज भी यहाँ है जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह प्रवृत्ति खत्म होती जा रही है। "महाराज" और "जू" सम्बोधन का प्रयोग आदर सूचक प्रवृत्ति का सूचक है।

प्रेम का औदात्यः- भाई–बहिन,पति–पत्नी, बाप– बेटे, माँ– बेटी,आदि प्रत्येक रिश्ते में प्रेम का औदात्य देखने को मिलता है। बहिन भाई की मंगल कामना के लिए ब्रत और त्योहार मनाती है। यहाँ तक कि बहिन भाई की जीवन रक्षा के लिए अपने लाड़ले पूत का त्याग कर देती है। भाई भी अपनी बहिन की रक्षा तन मन धन से करता है। आल्हा और ऊदल का सर्वस्व त्याग बहिन चंद्रावलि के लिए ही तो था। हरदौल और बहिन कुंजा का उदात्त प्रेम बुन्देलखण्ड में भाई बहिन के उदात्त प्रेम का उदाहरण है। भाई बहिन के प्रेम की उदात्त भावना सीमित न होकर बड़ी व्यापक है। लोक का हर भाई हर बहिन का भाई है,और लोक की हर बहिन हर भाई की बहिन है। हरदौल का अमर भ्रातृत्व पूरे बुन्देलखण्ड में आज भी अपनी अमर कथा कहता है। बहिन ब्याह के बाद ससुराल तो चली जाती है,पर अपने भाई के प्रति मंगलकामना करना वह वहाँ से भी नहीं भूलती। श्वसर गृह को तो वह अपने प्राणरस से सींचती है,पर आत्मा से भाई के प्रति मंगल भावना को नहीं भुला पाती– ***"बदरिया रानी, बरसो बिरन के देश में।"*** पति–पत्नी हो,भाई–बहिन, बाप–बेटे या माँ–बेटी सभी के प्रेम में मर्यादा की विशेष छाप है। इसीलिए लोककवि कहता है–

नई गोरी नए बालमा,नई होरी की झाँक,
ऐसी होरी दागियो, कुल सो न आवै आँच।
सँम्हर कैं यारी करौ मोरे बालमा।

कुल की मर्यादा न घटे भले ही व्यक्ति को कितना ही कष्ट क्यों न सहन करना पड़े, भावनाओं का गलाघोंटना पड़े सर्वत्र अनन्य,एकनिष्ठ और निष्कलुष और मर्यादित प्रेम को श्रद्धा और आदर का पात्र समझा जाता है। आर्थिक दृष्टि से विपन्नता के कारण बेटी का व्याह आस–पास के क्षेत्र में इसलिए कर दिया जाता है जिससे उसे बार बार बुलाने में आर्थिक भार न सहना पड़े और सुविधा भी रहे, लोक–गीतों, लोक–कहावतों में यह बात बहुत अधिक कहीं गई है।

"माई के रोये नदिया बहत है, बाबुल के रोये बेला ताल।
कच्ची ईंट बाबुल देहरी न धरियो, बिटिया न दइयो परदेश मोरे लाल।
द्वारे की इंटिया खिसक जैहे बाबुल, बिटिया बिसूरै परदेश मोरे लाल।"

त्याग और सतीत्व :- नारियों में त्याग और सतीत्व का इतिहास यहाँ बहुत पुराना है। वह अपनी ममता और त्याग से पुरुष के एकांगी जीवन को सफल और सार्थक बनाती है। पति के जीवित रहते वह अपने को सौभाग्यवती समझती है और पति के न रहने पर अपनी प्रेम की एकनिष्ठता का उदाहरण देती हुई या तो सतीत्व को वरण करती है या फिर कर्तव्य की बेदी पर भावनाओं को तिल–तिल जलाकर सारा जीवन बिताती है,वहीं ओर एक पत्नी के रहते यदि पुरुष दूसरी स्त्री का वरण करता है तो वह सामाजिक बहिष्कार का पात्र होता है। फिर भी नारी

स्थिति यहाँ अत्यंत दयनीय है। जीवन का पुरूषार्थ अर्जित करने में उसका स्थान सबसे श्रेष्ठ है, किन्तु समाज में उसको वह सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं है जो उसके त्याग ,बलिदान और सतीत्व के कारण उसे प्राप्त होना चाहिए। पुत्र जन्म के साथ ही जहाँ बधाइयाँ बजती है, परिवार में खुशी का पारावार नहीं रहता, वहीं कन्या के जन्मते ही जैसे सबको सांप सूंघ जाता है। कन्या को बोझ समझा जाता है । सृष्टि के विकास क्रम में नारी पुरुष का समान योगदान है। वहाँ नारी की ऐसी उपेक्षा एक प्रश्न चिन्ह तो उपस्थित करती ही है। साथ ही किसी भी देश और जाति की संस्कृति के विकास का सबसे बाधक तत्व है। लोकमूल्यों की दृष्टि से यह सबसे दुर्बल पक्ष है जिसमें सुधार होना नितांत आवश्यक है। नारी–जीवन ही बडा रहस्य, उलझनपूर्ण और यंत्रणाओं से भरा हुआ है, इसीलिए हमारे लोक साहित्य में त्रिया चरण पलोटने की बात हर नारी के अंतर्मन की पुकार और ईश्वर से वरदान की चाह होती है। इतना दुखी और अभिशप्त जीवन व्यतीत करते हुए भी वह त्याग, बलिदान ,ममता और न जाने कितने गुणों से युक्त आदर्श नारी है।

जीवन का मोल :- मनुष्य जीवन बड़ा दुर्लभ है। असंख्य पुण्यों के उदय से मनुष्य का जन्म मिलता है, इसलिए इस दुर्लभ जीवन की हर महत्वपूर्ण घड़ियों के विविध संस्कार यहाँ प्रचलित हैं। शिशु के जन्मते ही मंगल गीतों की गमक सारे वातावरण को गुदगुदाने लगती है। तरह–तरह के शुभकार्य उसी क्षण से शुरू हो जाते हैं:–

सगुन भए महाराज राजा महलन आए।
सो मोरी गुइयाँ सखियन मंगल गाए।
सो मोरी गुइयाँ कंचन कलश धराए।
दुआरिन चौमुख दियला जराये ।
सो मोरी गुइयाँसब सब सुख आज सुहाये।
दरस पाके सबके मन हरषाये ।

चतुर्विध जीवन दर्शन में पुत्र को मोक्ष मार्ग का प्रकाशन और बुढ़ापे का आसरा माना जाता है,अतः पुत्र जन्म की रौनक बहुत होती है। इसी प्रकार जन्म के बाद के अन्नप्रसन्न,कनछेदन,पाटीपूजन,उपनयन,विवाह आदि से सम्बन्धित विविध संस्कारों के प्रचलन जीवन–मूल्य को उकेरते हैं,और जीवन में रस घोलते हैं।

इसी प्रकार बचनबद्धता, परस्पर प्रेम–सौहार्द्र आदि अनेक मूल्य लोक में प्रचलित हैं। लोकगीतों,लोककथाओं ,कहावतों में लोकमूल्यों के उदाहरण मिलते हैं। देशकाल और परिस्थिति के अनुरूप लोकमूल्यों में परिवर्तन होता रहता है। उदाहरणार्थ स्वातंत्र्यप्रियता और वीरत्व का मूल्य मध्ययुग में अपेक्षाकृत अधिक प्रबल था, क्योंकि शत्रुओं से जूझने और मातृभूमि की रक्षा करने के लिए ये गुण आवश्यक थे,जबकि विदेशियों के पैर पूरी भारतभूमि पर जमे थे, किन्तु आज भारत स्वतंत्र है,इसलिए इन मूल्यों का उतना प्रखर रूप आज नहीं है। तात्पर्य यह है कि ऐसे मूल्य समाज में हैं तो अवश्य, पर किन्ही कारणों से प्रकाश में अपेक्षाकृत कम हैं। वैज्ञानिकीकरण, अर्थ की प्रधानता, बौद्धिकता तथा शहरी सभ्यता ने मूल्यों को थोड़ा बहुत प्रभावित अवश्य किया है। किन्तु अपने मूल रूप में वे समाज में आज भी विद्यमान है,भले ही वे किन्हीं कारणों से प्रकाश में न आएँ।

- शा० कन्या स्ना० महाविद्यालय
छतरपुर (म० प्र०)

पत्थर में है – प्राण प्रतिष्ठा

- माधव शुक्ल 'मनोज'

गांव–गांव में पावन बिरछा
चौतरियों के घेर में
थपे–देवता–देवी–बाबा
पत्थर पर सिन्दूर से ।
बसे नीम के तले पुराने
ठाकुर बाबा प्यार के
सब की मनोकामना पूरी
है जिनके प्रसाद से ।

पीपल की छाया में बैठे
बरम–देवता गांव के
धन–धान्यों के बन्डा भरते
जिनके ही वरदान से ।
आम्रकुंज में आसन डाले
वे लाला हरदौल हैं
दुल्हा–दुल्हन जुग जुग जीते
जिनके–आशीर्वाद से ।

टूटी सी मढ़िया के भीतर
देवी का स्थान है
जिनके भजनों में पागल हैं
जनमन भक्ति–भाव से ।
बरगद की लट को छुटकाये
बैठे–कारस देव हैं
जो गोधन के रखवाले हैं
पहरा देते दूर से ।

इमली के नीचे नरियल की
फूटी पड़ी – नरेटियां
गौड़–देवता निर्भय करते
सब को जहाँ भभूत से ।
जीवन की पूजा से बनता
सब देवों का रूप है
पत्थर में है – प्राण प्रतिष्ठा
रे–श्रम की हुँकार से ।

- ए-१८, हाऊसिंग बोर्ड कॉलोनी, कोहेफ़िज़ा, भोपाल

बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति और पारंपरिक कलाएँ

- ललित मोहन

महुवा मेवा बेर कलैवा गुलगुच बड़ी मिठाई
इनखो खान कहो, सो बुन्देलखण्ड करो सगाई

वनोपज पर आधारित बुन्देलखण्ड के भू–भाग में म० प्र० के सागर संभाग उ० प्र० के झांसी मण्डल और इनकी सीमावर्ती भूमि समाहित की जाती है।

भैस बंधी है ओरछा पड़ा हुसंगाबाद
लगवईया हैं सागरै चपिया रैवा पार

गॉव, हाट, मेला, चौपालों का बुन्देलखण्ड पांरम्परिक कलाओं और लोक संस्कृति के बलबूते ही आधुनिकता की भागमभाग में स्वयं की पहचान बनाये रखने में सक्षम है। वेद व्यास, तुलसी, बाल्मीकि, आल्हा–ऊदल, छत्रसाल, हरदौल, लक्ष्मीबाई राय प्रवीण, तानसेन, बीरवल, प्राणनाथ, केशव, पदमाकर, ईसुरी, गंगाधर, गामा पहलवान, चन्द्रशेखर आजाद, हरिसिंह गौर और अनेक गुमनाम साहित्यकार , कलाकार , कान्ति वीर आदर्श नर–नारियों की तपो भूमि बुन्देलखण्ड रहा है। बुन्देली जनमानस तक अपनी बात पहुंचाने के उद्देश्य से बड़े–बड़े साहित्यिक जटिल और महिमा मंडित शब्द जंजाल से परे सीधी सरल बोलचाल की भाषा में अपनी बात रखने का प्रयास है।

पों फटे से संजा बिरिया तक यहाँ का मानस श्रम से जुड़ा रहता है इसी थकान को मिटाने रात में वह पहुँच जाता है चौपाल में –जहाँ गम्मत सौबत, किस्सा, गप्पें और एक दूसरे के सुख–दुख को बॉटकर थकान मिटाकर सोता है चैन की नींद। ग्रामीण बुजुर्ग धोती, कुर्ता, कमीज, सलूका, बण्ड़ी, टोपी, साफा, गमछा, जवान कमीज पजामा और बच्चे चड्डी, सलूका पहनना पसंद करते हैं। पैरों में देहाती मुड्डा और गले में तबीजियॉ आम बात है महिलायें धोती, पोलका और बालिकायें साया ब्लाउज के साथ प्रायः चांदी के जेवर पहनती हैं। नारियों के शरीर पर अमिट आभूषण होते हैं इनके प्रिय गुदना।

आंगन, उसारा, दहलान, कोठा, कुठलिया, चौक, तुलसाने वाले, खपरैला के घर उनकी दीवारों पर उकेरी लोक आकृतियॉ आडम्बर रहित मानव संग पशुओं का साथ रहवास है प्रकृति की गोद में शौंच दतौन से मुख मंजन, नदी, नाले व बाबड़ी में स्नान लोक देवताओं के चौतरा और मढ़ियों की पूजा–अर्चना, जल चढ़ाना, कलेवा खाकर खेत खलियान जंगल श्रम दुकानदारी का काम, सांझ ढले घर वापिसी भोजन और भजन के बाद विश्राम।

बच्चों के चलने की उम्र से ही उसके बढ़ते कम के अनेक खेल चलन में है छिलछिलौर, नदीपहाड़, लुकाछिपी, लंगड़ी, काना आठ, सोलागोटी, चौपड़, कवड्डी, खो–खो, रस्सीकूद, झूला, चपेटा, मामुलिया, झिझिंया, सुअटा, मकरंदो, अक्ती, पिट्टू गदापद, भौराचकरी, कंच्चीबंटा गिल्लीडंडा, अंडा डरऊअल, बूझबुझऊल, जैसे कितने ही खेल बड़ों को बच्चा बनने के लिये ललचाते है।

छोटी उम्र मे शादी और बड़ी उम्र मे तीरथ जाकर जस कमाने की परम्परा है। गॉव के बड़े बूढ़े दहलान या उसारे के तखत खटिया पर भले की पड़े रहें पर वे छोटो को बात–बात मे मुहावरें और लोकोक्तियों भरे उलाहने देने से नहीं चूकते यही कारण है कि यहाँ की सशक्त वाचक परम्परा के माध्यम से गीत साहित्य लोकाचार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सहजता से हस्तान्तरित हो जाते है। नर्मदा चम्बल,बेतवा,टौस,केन,धसान,सुनार इनकी सहायक नदियों से सिचिंत सम जलवायु वाले बुंदेलखण्ड में बनोपज की बहुतायत है। तेंदू ,भिलमा,कैंथा,बेल,अचार,करौंदा,मकोरा,बेर,आवरे,महुआ,गरीबों को जीवन देती है तो पुआर जाड़े मे गर्मी,सागौर,बॉस आदि घर बनाने में काम आते है। पत्ते छाने के लिए ,छेवले की जड़ों से कुची और,रस्सी ,मिटटी के बने बर्तन का उपयोग सहज है। गोबर कंडा लकड़ी बॉस आज भी मुख्य ईधन है।

परम्परा से प्राप्त कलायें पारम्पारिक कहलाती है जन रंजन के साथ जीवनयापन में सहायक होती है बुदेलखण्ड में गायन,वादन,नृत्य,कथा,युद्ध,हस्तकलायें, लौट पाखाण ,काष्ठ,मिट्टी,ताम्र,पीतल,रजत,स्वर्ण,लाख,अभ्रक चर्म वस्त्र आदि की कलायें और इनके परम्परागत स्वरूप देखने मिलते है।

मानव जन्म से मृत्यु तक लोक संगीत से बॅधा रहता संस्कार श्रम ऋतु अवसर जातिगत अनुष्ठानिक नृत्य और गीत जनमानस स्वयं को आत्मविभोर कर आनंद की अनुभूति प्रा करता है। सोहर, बधाये, गारी, बन्ना, दादरे, बंबुलियॉ, स्व ख्याल, फाग, होरी, अचरी, कजरी, सावन, झूला, राछरे, लेद, गी चेतावनी, जिकड़ी, गम्मद, रईया, पाई, आल्हा, मतवारी, बारामा चैती, बिलवारी, आदि सैकड़ों लोक गीतों की मोहक धुनें और सुनते ही बनते है। सैरा, राई, बधाई, जवारे, दीवारी, धुवर ढिमरयाई, रावला, झिंझिया, नौरता, नृत्यों, के लय ताल संगम मानव क्या पशु भी थिरकने को आतुर होते हैं। इन अवनध सु तंतु चारों प्रकार के लोक वादयों में ढोल, ढपला, रमतूला, नग लौटा, तारे, झूला, ढाक, तमूरा, रेकाड़िया, अलगोजा, कस खंजड़ी प्रमुख है। वर्णात्मक गेय प्रंसगों को गाथा और किस्से कथा के नाम से जाना जाता है। जगनिक रचित आल्हा–खंड कि उत्कृष्ट लोकगाथा है। लोकनाट्यों मे स्वांग, नौटंकी, रामल रास–लीला का चलन है।

वीरों की धरती है बुदेलखण्ड जिसके योद्धाओं ने ज

यश कमाया अमर हो गये रण कौशल की युद्ध कलायें अखाड़ और उस्तादों के द्वारा मलखम, पटा, बनेटी, लाठी, भाला, ढाल, तलवार, कुश्ती, आदि युद्ध कलाओं से संरक्षित किया जा रहा है।

ग्रामीण महिलायें पर्व त्यौहारों के अवसरों पर नाना प्रकार के चौक माड़ने, सुरेती, मैंहदी, माहुर की हस्त कलाओं में निपुण है तो मेला–हाट मे गुदना गोदने वाले गुमनाम कलाकार यहाँ के लोकाचार को जीवंतता प्रदान करते हैं। देहाती और पारम्पारिक पाक कला में रूचि रखने वाली शहरी गृहणियों भी अवसर क अनुकूल गांकर भरता, कढ़ी–भात, बरा, पापर, सन्नाटो, पनपथुरोटी, चटनी, अचार, वरी, महेरी, लुंचई, दरूरा, लपसी, लटादुबरी, ठढूला, बिजौरा, खीचला, खुरमा, बतियॉ, गुजियॉ, पुआ, गुलगुला जैसे व्यजंन बना कर और खिलाकर तन मन को तृप्ति प्रदान कर बुदेली धरा को धन्य कर रही है।

लुहार खेती–बाड़ी, घर–गृहस्थी के औजार, हंसिया, कुल्हाड़ी, सरोतिया, गेंदी, फहुड़ा, खुरफी, सांकर, कुन्दा आदि बाढ़ई हल बेलगाड़ी किवाड़ गुठान चौकी, तिपाई, खटिया, पलका, मुढ़ा, सन्दूक, खिलोंने आदि, कारीगर घरों के पत्थर उनके कटाई–छटाई, सिल लौड़ा, चक्की, पटा, और मूर्तियों के निर्माण में संलग्न है तो धानुक बॉस की टोकरी, सूपा, विजना, दोरियॉ, झाड़ू, डलिया बनाने में , कुम्हार का चका मिट्‌टी के पात्रों को रूप प्रदान करता है। और इनके हाथ अक्ती की पुतरियॉ, महालक्ष्मी के हॉंथी, दिवाली की ग्वालन तथा मिटटी के खिलौनों को आकार देते है।

तमेरे ताँबें–पीतल के बर्तन, गुण्ड, कसेड़ी, हड़ा, करैया, लोटा, थाली, परात, झारों, कलछरी, व अन्य घरेलू कलाकृतियों को गढ़ने में निपुण है तो सुनार सोने–चॉदी के आभूषण, मुंदरी, बिछिया, पैजना, लच्छा, तोरण, पाजेव, करधौनी, हथफूल, ककना, चुड़िया, बाके, बाजूबंद, खगोरिया, तबाजिया, तिदानों, बेंदा, पुगरिया, कनफूल, मुरकी बारी जैसी अनगिनित आकृतियों से नरनारी का श्रृंगार सजाते है । कुचबदियों की बनाई रस्सी, सींका, चर्मकारों के जूता चप्पल, खचऊ पनईया, दर्जियों की पोसाके और चित्रकार, शिल्पकार, कलाकारों के अभ्रक, लाख लोंक रंग आदि के कलाकृतियों में बेजोड़ है बुन्देलखण्ड।

कृषि कलाओं मे बरेजों के छायादार घर के भीतर पान की खेती तालतलैयों में सिगाड़े, मुरार की पैदावार रतरूआ, किसरूआ, महावरी जैसे भूमिगत कंद यहॉं की विशेषता है । बीड़ी अगरबत्ती लघु व कुटीर उद्योग प्रधान यह धरती श्रम साध्य है बुदेलखण्ड की लोक संस्कृति और पारम्पारिक लोक कलाओं की एक झलक मात्र से आपसे परिचय कराने का प्रयास है ताकि इसके आधार पर सुध ीजन यहाँ कि लोक समृद्धता और सम्पन्नता का अनुमान लगा सके।

"कोस–कोस पे वानी बदले चार कोस पे पानी" वाली कहावत को चरितार्य करते हुए सम्पूर्ण बुदेलखण्ड में बुदेली के अनेक रूप देखने में आते है। ग्वालियर की ओर से बृज भिण्ड से भदावरी, कानपुर से बनाफरी, सतना बघेली, जबलपुर से होशंगाबाद से गौड़ी, भोपाल सिरौंज से मालवी बोली बुन्देली को प्रभावित करती है। यही कारण है कि संपूर्ण बुंदेलखण्ड के क्षेत्र–विशेष में बोलचाल के शब्दों, लहजों और वाक्य विन्यासों का स्वरूप भिन्न–भिन्न सुनाई देता है। जो व्यक्ति जिस स्थान का निवासी होता है वह अपने ही स्थान की बोली को मानक मान लेता है जबकि इनका किताबों मे पढ़कर नहीं वरन बुंदेलखण्ड के गॉव–गॉव में सुनकर और गुनकर ज्ञात किया जा सकता है।

बुदेलखण्ड की लोक संस्कृति और पारम्पारिक कलायें शीर्षक के इस आलेख में ऐसा दावा कदापि नहीं है कि यह संपूर्ण बुन्देली कलायें है। ऐसा कहकर बुदेली सागर को पोखर बनाना नहीं चाहता।

हम सब प्रगति का प्रयास करते रहें यहीं भविष्य की मांग है । बुदेली चिन्तन दर्शन अध्यात्म उपदेश संस्कृति का जीवन्त उदाहरण गॉव के तमूरा भजनगायक से सुनकर रोमाचिंत हो गया।

धन माया के गरब ने करियो,
उरिया की छाएँ पलट जेहे
हँस बोलो रे जस रे जेहे,

- वरिष्ठ व्याख्याता,परफॉर्मिंग आर्टस
सागर विश्व-विद्यालय सागर(म0प्र0)

//फाग//

एकदिन मरघट सब खां जाने,
तज सब ठौर ठिकाने।
राजा–रंक कोउ न बचबे,
जब आवें परबानें।।
ऊंच नीच को भेद न हुइये,
कंडा सौ धुधबानें।
सब जानत भये पै भी मूरख,
समझायें न मानें।।

— एल०एम० चौरसिया
पिपट

बुंदेलखण्ड के स्थान – नामों में इतिहास

- डॉ. कामिनी

बुंदेलखण्ड की सीमाओं को जितना प्रकृति ने परिवर्तित किया है, उससे अधिक राजनीति ने घटाया–बढ़ाया है । यह भू–भाग पुरातत्व की दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही इतिहास की दृष्टि से गौरवपूर्ण है । यहाँ मौर्य, शुंग, नाग, कुषाण, गुप्त, हूण, मांडलिक, पुलिंद, आभीर, जुझौति, सातवाहन, वर्धन, प्रतिहार, कलचुरि, चंदेल, राष्ट्रकूट, गौड़, सुल्तान, तोमर, सिकरवार, भदौरिया, कछवाहे, खंगार, खिलजी, तुगलक, बुंदेला, मराठा और मुगल सत्ताओं के साथ अंग्रेज भिन्न–भिन्न काल–खण्डों में भिन्न– भिन्न अंचलों में सत्तासीन रहे ।

नरवर, पवायाँ, कालिंजर, चंदेरी, देवगढ़, थूबौन, कुंडलपुर, ओरछा, छतरपुर, अजयगढ़, दतिया, समथर, झाँसी और बेरछा जैसे सत्ता केन्द्र गणनीय रहे हैं । कदवाहा, चाचौड़ा, गोंची, नूराबाद जसारा से जो पुरावशेष,, हस्तकुठार और विदारक मिले हैं, वे पूर्व पाषाण युग से मध्य पाषाण युग तक के प्रमाण हैं । विन्ध्याचल की गोद में बसे इस अंचल में शैलचित्र भी उपलब्ध हैं । आदिम चितेरों की रुचियों और कूचियों ने भिन्न–भिन्न कालखंड़ों के जीवन से संबंधित संदर्भों को भीमबैटका, लिखीछाज और रामछज्जा में उकेरा है ।

पाणिनि के युग से लेकर वर्तमान तक स्थान – नामों का महत्व है। स्थानों के नामों में सदियों पूर्व की परंपरा सुरक्षित है। इस परंपरा के आधार पर भाषा के विकास का क्रम स्थिर किया जा सकता है और सामाजिकता के स्वरूप को निरखा–परखा जा सकता है। स्थानों के नाम सत्ता परिवर्तन को सुरक्षित रखते हैं और विजेताओं की यश – लिप्सा को उजागर करते हैं। बुंदेलखण्ड के स्थान नामों में यक्ष, भारशिव, मग, जर, नाग और गौंड़ समावेशित हैं। जखौरा, भर्रोली, मगरौनी, जरौली, नागमंदिर और तालबेहट ऐसे ही स्थान–नाम हैं।

स्थान–नाम जन जीवन की आशा और आकांक्षा, चिंतन और आस्था तथा उत्थान और पतन के साथ किसी न किसी रूप में जुड़े हैं। इतिहास की पुरातन परंपरा और परिवर्तित होती हुई सत्ताओं के प्रमाण स्थान नामों में है । विजेता पुराने स्थान नामों को बदलकर अपने सुयश को स्थिर करने के लिए स्थानों के नाम बदलता है और इसी परंपरा के कारण स्थानों के साथ विजेता शासक का नाम जुड़ जाता है। पद, पदवियां और उपाधियां भी स्थान नामों के साथ जुड़कर इस परंपरा को आगे बढ़ाती हैं, इसी से इस अंचल के स्थान नामों में वैदिक शब्दावली से लेकर वर्तमान तक की शब्दावली उपलब्ध है । वेद में 'विस' प्रजा का बोध देता है और इसी मूल ध्वनि के कारण दतिया जिले का ग्राम – नाम बिसौर व्यवहार में है ।

बसाने वाले के नाम से स्थान ग्राम अथवा नगर का नाम रखा जाना एक स्वाभाविक और पुरानी परंपरा है । मनुष्य की आदिम ललक मृत्यु पर विजय पाने की है । वह मरने के बाद किसी न किसी रूप में याद किये जाने की लालसा लिए रहता है । इसी आधार पर इतिहास वीर पूजा की भावना से जुड़ा रहता है और अमर होने की आकांक्षा बनी रहती है ।

कुरू, मय, कठ, जर, मर, भर, यक्ष, मग, मेव और गौड़ों से संबंधित स्थानों के नाम बिखरे हुए इतिहास को जोड़ने के लिए सबल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

मैथाना–स्थान – नाम में मय जाति का संदर्भ सुरक्षित है । मय स्थापत्य कला में प्रवीण शिल्पी थे । उनका निवास पाताल में था । इनमें सर्प की पूजा प्रचलित थी ।

जखौरया, जखौरा, जखौदा स्थान – नामों में यक्ष का संदर्भ सम्मिलित है । डॉ. रांगेय राघव ने यक्षों को कुबेर का रक्षक और वनस्पतियों का स्वामी माना है । ये देवों से नीचे और भूतों से ऊंचे हैं। काले शरीर और लाल नेत्रों वाले यक्ष सार्थवाहों के अधिष्ठाता थे ।

चन्द्रवंश के प्रतापी कुरु भी स्थान – नाम से जुड़े हैं । कुरगाँ, कुरथरा, कुरुवासा, कुरवाई, कुरैठा की ध्वनियाँ कुरुक्षेत्र से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं ।

मग ईरान निवासी सूर्यपूजक थे । जिन्हें श्री कृष्ण के पुत्र शाम्ब चन्द्रभागा नदी के तट पर सूर्यमंदिर की प्रतिष्ठा के लिए ले आये थे। मगरौरा, मगरौनी, मगरौन, मगवार और मगरौल स्थान – नामों में मग के संदर्भ हैं ।

मुरावली, मुरगुवाँ, मरसैनी स्थान नामों के साथ मर और जड़ेरू, जरौली और जरसैना के साथ 'जर' जाति के अवशेष हैं । कठों का संदर्भ कठौतिया (विदिशा) कठेली (सागर) और कठौदा (जबलपुर) के साथ जुड़े हैं । डॉ. मोती चन्द्र के अनुसार सिकंदर को अपने विजय अभियान में कठों से लोहा लेना पड़ा था ।

भर्रोली (ग्वालियर), भारखोह (मुरैना), भरगुवाँ (छतरपुर) आदि स्थान – नामों में भारशिवों का संदर्भ है । भारशिव नागराजा थे और शिव की उपासना करते थे । इसी तरह मेवली, और मेवदा के साथ तुगलककालीन इतिहास के आतंकवादी मेव जुड़े हैं । गौंड़वाने के शासक गौंड़ स्थानवाची नामों के साथ ग्वालियर, भिण्ड से लेकर छिंदवाड़ा और मंडला तक जुड़े हैं । उनकी अपनी बोली में बेहट का अर्थ गाँव है ।

सिकंदरपुर, अकबरपुर, बाबरखेड़ा, बेलाताल, शाहजहाँपुर, चम्पतपुर, जीवाजीगंज, मर्दनसिंह चौराहा जैसे स्थान–नाम मुगल शासक, बुंदेला शासक, मराठा शासक के संदर्भ लिए हुए हैं ।

निष्कर्ष रूप में बुंदेलखण्ड के इतिहास के विश्रृंखल सूत्रों को जोड़ेने में स्थानों के नाम महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं ।

-शा० महाविद्यालय
सेंवढ़ा, जिला दतिया

बुंदेलखंड की सांस्कृतिक विरासत : कुंडलपुर

- डॉ० नाथूराम राठौर

'कुंडलाकार पर्वतमालाओं का समुच्चय ही कुंडलपुर है।' ऐसा परिभाषित नामकरण कुंडलपुर के विराटत्व को अति संकुचित अर्थ देता है। वस्तुतः कुण्डलपुर में समाया है लगभग डेढ़ सहस्राब्दी का सांस्कृतिक वैभव। उसमें विद्यमान है गुप्त, चेदि, चंदेल और बुंदेल शासकों की आस्थाएं, जैन और अजैन भारतीय समाज के अटूट विश्वास, श्रेष्ठियों और तपस्वियों की उत्सर्गमयी भावनाएं, साहित्य और कला की ऊचाइयाँ, प्रकृति की निसर्ग रमणीयता और धर्म साधना के अखंड सोपान। कुंडलपुर भारत के मध्य प्रदेश की पहचान है जो बुंदेलखंड की सांस्कृतिक विरासत को संजोए हुए है। यह केवल एक जैन तीर्थ नहीं है अपितु समूची मानवता के विकास एवं कल्याण का ऊर्ध्वमुखी स्तंभ है।

कुंडलपुर में महाराजा छत्रसाल के भावों की निश्छल अभिवयक्ति और आराधना की प्रणति विद्यमान है। कुंडलपुर में वस्तुतः छत्रसाल की आस्था का काव्य उद्गीरित हुआ है। जीवन के अंतिम चरण मे श्रान्त और असहाय पन्ना नरेश कुंडलपुर में हतप्रभ दशा में पहुंचे। 'राम की शक्ति पूजा' के नायक की तरह उन्हें संशय और शत्रु विजय का भय विचलित कर रहा था–

स्थित राघवेन्द्र को हिला रहा फिर–फिर संशय
रह–रह उठता जगजीवन में रावण जय–भय।

कुंडलपुर के आदिदेव का तेजस्व और नेमीसागर का सानिध्य छत्रसाल में नव ऊर्जा का संचार करता है। नैशांधकार में नव अरुण का उदय होता है। छत्रसाल फिर रणांगण में कूदते हैं और अपनी भाव–संपदा आदिनाथ के चरणों में समर्पित कर देता है जिससे सहस्राब्दि से जीर्ण हो रहे कुंडलपुर के अनगढ़ मंदिरों को नया आकार और सौंदर्य मिलता है। सन् 1700 की माघ पूर्णिमा को आयोजित पंच कल्याणक महोत्सव में सम्राट–कवि की उपस्थिति एक–एक भक्तिपरक काव्यांजलि की प्रस्तुति है जो कुंडलपुर के धवल मंदिरों और नील सरोवर पर लिखी गई हैं।

कुंडलपुर धर्मचेतना की पुस्तक और प्राकृतिक सौंदर्य की चित्रावली है। इसे देखकर कवि हृदय और चित्रकार अपनी भावनाओं को रोक नहीं पाते। हरीतिमा से आच्छादित वनराजि, वनराजि से परिवेष्ठित वर्धमान सरोवर और सरोवर में प्रतिबिम्बित मंदिर–शिखरों की उज्जवल शोभा किसका मन नहीं मोह लेती। कवि निर्मल 'आजाद' तो कुंडलपुर के वैभव को एक खंडकाव्य ही मानते हैं तथा इसके अध्ययन को 'गीता' का नाम देते है।। जीजा बुंदेलखंडी भी यही चरितार्थ करते हैं–

वेदों की हर मौन ऋचा सी,
प्रकृति नटी की उर माला।
गिरि गुफाओं में सुंदर शोभित,
प्यारी सी पर्वत माला।।

वर्धमान सरोवर को कवि सुरेश कंत 'दुधिया चंदा प्यार।' या 'दूध का भरा कटोरा' कहते हैं तो विमल लहरी ताल के दर्पण में प्रकृति नायिका का श्रृंगार निहारते हैं। गीतकार संतोष सिंह बुंदेला यहाँ सामासिक संस्कृति के अनुदर्शन करते हैं –

धन्य भूमि बुंदेलखंड जो कुंडलपुर राजत है।
जैन धर्म और धर्म सनासन, संग–संग विराजत है।

कुंडलपुर में लोक संस्कृति के तत्व भी सन्निहित हैं। सामान्यतः किंवदंतियों से लोकविश्वास और लोक विश्वास से लोक आस्था का विकास होता है। यही लोक आस्था देवत्व की अवधारणा करती है। कुंडलपुर के बड़े बाबा के प्रति जनभावना इसी रूप में पल्लवित हुई है। इसलिए यहाँ शताब्दियों से ऋषभनाथ, ऋषभनाथ न होकर बड़े बाबा के रूप में पूजे जाते रहे हैं। इन्हें महावीर भी कहा गया और श्रीधर स्वामी भी। लोक ने तो उन्हें ऐसे देवता के रूप में माना जो मनौती पूर्ण करते हैं तथा दुख–दैन्य का हरण करते हैं। जो किसी राहगीर वाणिक या ग्वाले के स्वप्न में भी उतरते हैं और अपनी दिव्यता भी दिखाते हैं। वे दुष्टता के प्रति स्नेह की दूध–धार बहाते हैं और दुष्टों को दंडित करने के लिए देव मूर्ति जैनधर्म के प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव के रूप में प्रतिष्ठित हैं पर लोक जीवन में वे एक बड़े देवता हैं, बड़े बाबा हैं।

'बड़े बाबा' की प्रतिमा और मंदिर निर्माण की ऐतिहासिकता के संदर्भ में जहां का निर्माण–काल छठवीं से आठवीं शताब्दी तक माना गया है। वर्षों तक वन–बीहड़ों के बीच अदृश्य मंदिर–मूर्ति के दर्शन हेतु आचार्य सुरेन्द्र केतु 16–17 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यहां पहुंचते हैं और मंदिर–स्थल के नव निर्माण का बीड़ा उठाते हैं। उनके परवर्ती शिष्य नेमी सागर के प्रयास और महाराज छत्रसाल के सहयोग से मंदिरों को नया रूप मिलता है। विगत् दो–तीन शताब्दियों से यहां नये मंदिरों का भी निर्माण होता रहा है इतने अंतराल में 'बड़े बाबा' को श्रद्धालुओं ने कभी भगवान महावीर और कभी नेमिनाथ के रूप में पूजार्चित किया। परन्तु नवीन शोध कार्यो ने उनके 15 फुट ऊँचे पदमासनस्थ रूप को आदि तीर्थकर ऋषभदेव प्रमाणित किया है। ऋषभदेव की इस भव्य और ऊँची पार्श्वनाथ की दो प्रतिमाएं हैं तथा उनके यक्ष गोमुख और यक्षी चक्रेश्वरी का सहज सायुध अंकन है। श्रीधर स्वामी के कैवल्य (मोक्ष) से सिद्धक्षेत्र बना कुंडलपुर आप सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों के नवोन्मेष का प्रतिष्ठा स्थल है।

रामधारी सिंह दिनकर ने ***'संस्कृति के चार अध्याय'*** में लिखा है कि "जिस जाति के सांस्कृतिक दरवाजे खुले रहते हैं उसके सरोवर का जल कभी नहीं सूखता। उसमें सदा ही स्वच्छ जल लहराता रहता है और नए–नए कमल के फूल खिले रहते हैं। संस्कृतियों का स्वाभाविक विकास पारस्परिक संपर्क से ही

होता है।" इस परिप्रेक्ष्य में कुंडलपुर सामाजिक संस्कृति का शाश्वत उदाहरण है। यहाँ देश भर के जैन मंदिरों के दर्शनार्थ यहां जैनेतर श्रद्धालु भारी संख्या में पहुँचते हैं। उनके मन में यहां पूजाभाव शताब्दियों से विद्यमान रहा है। यहां आयोजित मेले में हजारों–हजार अजैन बंधुओं को दर्शन–पूजन करते देखा जा सकता है। आचार्य विद्यासागर के प्रवचन कार्यक्रमों में जैन–अजैन का द्वंद मिट जाता है। जाति और संप्रदाय का भेद टूट जाता है। जनमानस कुंडलपुर आकर अपनी कामना पूर्ति के लिए प्रार्थना करता संतान प्राप्ति के लिए छापे लगाता है। बच्चों का मुंडन संस्कार कराता है।

कुंडलपुर में शैव, शाक्त और वैष्णवों के पूजा केन्द्र भी विद्यमान है। चतुर्भुजी विष्णु और चतुर्भुजी उमा–महेश्वर की प्रतिमाएं यहां एक मंदिर में विराजित हैं। यहां रूक्मणि मंदिर का भी उल्लेख मिलता है। निसर्गतः कुण्डलपुर क्षेत्र ने सामासिक संस्कृति और उपासना निरपेक्षता का श्रेयस्कर उदाहरण प्रस्तुत किया है। सामासिकता का ही कारण है कि महाराज छत्रसाल ने मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया तथा पंच कल्याणक महोत्सव की व्यवस्था का प्रतिनिधित्व किया। यहाँ से ही छत्रसाल के नाम को अक्षुण्णता प्राप्त हुई– *'छत्रसाल को नाम ले, खोलत वणिक दुकान'*। कुंडलपुर न केवल दमोह (मध्यप्रदेश) का गौरव स्थल है अपितु समूचे भारतवर्ष के सांस्कृतिक वैभव का केन्द्र है। 80 एकड़ की वनस्थली में विस्तीर्ण यह धार्मिक–सांस्कृतिक परिसर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मंत्र को सार्थक करता है।

- ५, बजरिया, दमोह (म०प्र०)

उत्सव बुंदेली कौ प्यारो

- डॉ० के०एल० पटेल 'मनोहर'

अपनी धरती के गुन गालो, जग में सुजस कमालो।
बारउ मइना परब अनेकन, मनसें इनें मनालो।।
भीमकुण्ड, खजुराव, जटाशंकर में ध्यान रमालो।
फाग ईसुरी गंगाधर की, गाके रस बरसालो।।
गा लाला के गीत 'मनोहर', बिगरे काज बनालो।।1।।

लागै सौ नौंनों सौ नौनों, धरती को हर कौनों ।।
सबरीं दिशा दिबानी दिपतीं, वैभव औनों–पौनों।।
काशी–मथुरा इतईं हमारे, पाहन प्रभु कन सौनों।।
इमरत पानी मीठी बानी, जादू कैसौ टौनों।
पन्ना रतन खदान 'मनोहर' जग में बनो निरौनों।।2।।

बांकी वीर बुन्देली धरनी, सुरपुर कौ मन हरनी।
दुश्मन मारन काल पछारन, दिव्य शक्ति औतरनी।।
भीमकुण्ड–कुण्डेश्वर बाँके, नदियां झरना–झरनी।।
कालजयी कालिंजर हर कौ, धाम ध्यान मन भरनी।
फैलो सुजश 'मनोहर' सबरें, धरनी मंगल करनी।।3।।

प्यारी प्रकृति बहुरिया भोरी, ओसन सपरी खोरी।
बन–बागन की पैर चुनरिया, सुमन अतर में बोरी।।
पवन झकोरन साके गावै, गोबरधन गुन गोरी।
राग मल्हार अलापै प्यारौ, कभऊँ प्रभाती–लोरी।।
बन बुन्देली बहू 'मनोहर', करत फिरत चित चोरी।।4।।

आल्हा–ऊदल की जा धरनी, जुग–जुग नहीं बिसरनीं।
छत्रसाल की करनी अबलौ, जोश भरी इस्मरनी।।
साके गाये जाँय लाला के, औसर काज सुधरनी।
इन्दपरी सीं बीर बहूटीं, बड़े घरन की घरनी।।
फसलें पजें 'मनोहर' कइयक, दूध करूला करनी।।5।।

उत्सव बुन्देली को प्यारो, ज्ञान जोत उजियारौ।
देखौ सुनौ खूब जी भरकें, मन होवै मतवारौ।।
कला कीरती रनवीरन की, सुनबें इतै पधारौ।
राई–कहरबा की महफिल को, हाव–भाव अनियारौ।
लो आनंद 'मनोहर' मनकौ, मौका तनक निकारौ।।6।।

वैभव बुंदेली कौ बांकौ, आंक सकौ तौ आंकौ।
फाग राई दिनरी बिलवारी, ख्याल–लावनी साकौ।।
लमटेरा की टेर–दिवारी, सोहर–सुजस पताकौ।
किसा कहानी ज्ञान–खजानौ, जानों दादी मांकौ।।
दिलभर जाय 'मनोहर' सबको, एक बेर आ झांको।।7।।

कर गये मरकें अमर कहानी, बीरबली बरदानी।
छत्रसाल आला ऊदल की, घर–घर शक्ति समानी।।
लक्ष्मीबाई साब की महिमा, कीसें गई बखानी।
सरगलोक के फल सें मीठौ, ई मांटी कौ पानी।।
खजुराहो की कला 'मनोहर, प्रेम तला उफलानी।।8।।

मीठौ ई धरती कौ पानी, मीठी ई की बानी।
भरी अनेकन हावन–भावन, पावन लोक कहानी।।
बारउ मइना परब मनावै, धरती के सब प्रानी।
मउवा मेवा बेर कलेवा, सुलगुट स्वाद समानी।।
सब जिंसन की होय 'मनोहर', खेतन बीच किसानी।।9।।

मरकें अमर करी करतूती, तूती गई न कूती।
हर गांवन में बनें चौंतरा, अबलौ बनी सबूती।।
ब्याव काज में होत अबाई, ऐसी जग अनुभूती।
ऐसे भये भौजी के लाला, होनहार रजपूती।
और कहूं ना मिलै 'मनोहर', ऐसी लोक विभूती।।10।।

भइया एक बात सुन लइयौ, ईखां भूल ना जइयौ।
लोट–पोट के पलैं पुसै जाँ, काम जमी के अइयौ।।
अपने खून पसीना सें जा धरती सींचत रइयौ।
कला–कीर्ति कौ लेखौ जोखो, लिखकें काम बनइयौ।।
पूरे हों अरमान 'मनोहर', बीज सुजस कौ बइयौ।।11।।

- सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
रास० महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर

बुन्देलखंड के गढ़, गढ़ियां, किले और महल

- दंगल सिंह

शासकीय सेवा में रहते हुए मैने देखा कि बुन्देल क्षेत्र के इलाके में छोटी छोटी रियासतें, जागीरें बहुत थीं। विशेष रूप से इस क्षेत्र में पहाड़ी और जंगली इलाका भी बहुत था। मेरे देखते देखते यहाँ के घने वन धीरे–धीरे कटते गये। म0प्र0 शासन ने अब कहीं–कहीं सुरक्षित वन घोषित किये हैं और उनकी रक्षा का भार भी उठा रही है। बाकी वन वीरान जंगली पेड़ों से विहीन हो गये हैं। वर्तमान शासन तंत्र प्राचीन किलों गढियों और महलों की रक्षा नहीं कर पाती हैं। यह धरोहर अपनी आगे आने वाली पीढ़ी को हमारी प्राचीन कला और संस्कृति को यह विनाश लीला कुछ बता न सकेगी। हमारा शासन तंत्र प्राचीन भवनों की रक्षा के लिये पुरातत्व विभाग खोले हैं, जो नाम मात्र के लिये हैं। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद से पुरातत्व विभाग पर कोई विशेष रूचि शासन की नहीं है। माना कि खजुराहों के मंदिरों पर विशेष ध्यान है परन्तु वह म0प्र0 शासन द्वारा नहीं है।

इन किलों, गढ़ और महलों के रहने वाले व्यक्ति भी शक्तिहीन हो गये हैं, अतः इन इमारतों की रक्षा नहीं कर पाते हैं। पुरानी गढ़ी, किले और महल जिनमें राजा महाराजा रहते आ रहे हैं उनकी हालत कुछ ठीक है। छतरपुर रियासत में स्व0 राजर्षि श्री विश्वनाथ सिंह जू देव अपने शासन काल में राजगढ़ के महलों की दुरूस्ती, जीर्णोद्धार और नवीन निर्माण हमेशा कराते रहे। वहीं कार्य खजुराहो के मंदिरों, धुवेला के महलों और राजनगर की गढ़ी की दुरूस्ती भी कराते रहे। ये सब आज भी ताजे नजर आते हैं।

वर्तमान से 150–200 वर्ष पूर्व तक यह पद्धति चली आ रही कि राजा–महाराजा अपनी प्रजा की पूर्ण जिम्मेदारी रखते थे। अंग्रेजों के आने से पहले इस क्षेत्र में युद्ध होना मामूली बात थी। इस कारण यहां के पूरे इलाके में किले और गढ़ी का होना स्वभाविक था। यह परिपाटी अंग्रेजी शासन काल से समाप्त सी हो चुकी थी। 1857 की गदर ने अंग्रेजों को अच्छी नसीहत दी थी। अंग्रेजों ने दमन चक्र भी जो चलाया उससे राजतंत्र वालों को मनोवैज्ञानिक रूप से शक्ति हीन करना आरम्भ कर दिया था। कोई राजा दूसरे राजा पर हमला कर के अपने को शक्तिशाली नहीं बना सकता था। पूरे राजा मिलकर एक नहीं हो पाते थे। इस सबका यह असर हुआ कि राजा, नवाब, महाराजा और ताल्लुकेदार आराम–तलब हो गये। उनके पास राज्य शासन चलाने से संबंधित विशेष कार्य नहीं था, सिवाय ऐशो आराम के।

थोड़ा महलों और किलों के बारे में देखिये। वर्तमान से 300 वर्ष पूर्व देश की हालत ही दूसरी थी। उस युग में राजाओं नवाबों को अपनी जनता की जानमाल की रक्षा करना सबसे बड़ा कर्तव्य था। इसलिये किलों का निर्माण आरम्भ हुआ। किले दो तरह के होते थे। एक वो किले जो एक बड़ी शहरपनाह के भीतर बनाये जाते थे। इस शहर पनाह के भीतर पूरा नगर बसा रहता था। मुख्य द्वार पूर्व और दक्षिण दिशाओं की ओर होते थे। बाहर से मुगल लोग उत्तर और पश्चिम से हमला करते थे। अतः नगर की दिनचर्या और व्यापार आदि के आने जाने के लिये पूर्व और दक्षिण के मार्ग साधारणतः काम में आते थे। युद्ध को ध्यान में रखकर ये दरबाजे अच्छी मजबूत लकड़ी के बनाये जाते थे। इनकी ऊचाई और चौड़ाई लगभग 20 फुट गुणे 12 फुट तक की होती थी। यह ऊचाई चौड़ाई इसलिये रखना जरूरी होता था ताकि एक दम दुश्मन पर हमला बोलना पड़े तो हाथी घोड़े और सेना एक दम दुश्मन पर पूरा वार कर सके। जब अपनी सेना को सुरक्षित रखना पड़ता था तो दुश्मन के प्रत्येक हमले का मुंह तोड़ जवाब किलों के भीतर और गुर्जो पर रखी तोपों से दिया जाता था। कंगूरों की आड़ लेकर तथा तीरकसों के द्वारा दुश्मन पर तीर–कमानों और बंदूकों से हमला होता था। पहला हमला दुश्मन वाला नगर की शहर पनाह ही झेलती थी। शत्रु यदि शक्तिशाली हुआ तो अपनी सेना की बलि देकर युद्ध विजय के लिये सब त्याग करना पड़ता था। वही दशा अपनी सेना की भी होती थी। ये युद्ध के क्षण बहुत ही हृदय विदारक होते हैं। एक तरफ अपनी भूमि, नगर और कुटुम्ब की रक्षार्थ बलि देना। दूसरी ओर अपने राजा अधिकारी की आज्ञापालन करना तथा राज्य की सीमा का विस्तार करना रहता था। दोनों पक्ष अपनी अपनी मातृभूमि की रक्षार्थ और उन्नति के लिये युद्ध करते थे। यह क्रम बहुत पुराना है।

दूसरे प्रकार के किले बड़े दुर्गम स्थानों पर बनाये जाते थे। ऐसे किले पहाड़ों की ऊँचाइयों पर अधिक बनाये जाते थे। ऐसे किलों तक पहुंचने के लिये दुश्मन को ऐड़ी चोटी का जोर लगाना पड़ता था फिर भी कामयाबी नहीं मिलती थी। ऐसा किला कालिंजर का बना हुआ है। यह किला सब किलों का सिरमौर है। यह बहुत पुराना है। इसकी ऊंचाई बहुत है।

कुछ किले पटपरियों, पहाड़ियों नदी और तालाबों के किनारे बनाये जाते थे। ऐसे किलों के चारों तरफ खाइयां होती थी। इन खाइयों में कम से कम 10 फुट से लेकर 15 फुट गहरा पानी भरा रहता था, ताकि दुश्मन अपनी तोपों को किले की मार से दूर ही रख सके। यह आम धरणा और नियम में था कि राजा, महाराजा, नवाब, जागीरदार, और सेना अध्यक्षों के निवास (महल) अधिकतर किले के दक्षिणी और पूर्वी भागों में होते थे। ओरछा, दतिया और छतरपुर को देखा जा सकता हें माना कि छतरपुर का निर्माण युद्धकाल गुजर जाने के बाद हुआ था। इस नगर की शहर पनाह सन् 1900 तक पूर्णरूप से थी। इसका दक्षिणी और पूर्वी भाग थोड़ा खुला था बाकी चारों ओर शहर पनाह बनी थी और महल दक्षिण में है। ओरछा और दतिया पुरानी रियासतें थीं। इनको युद्धों

से निपटना होता था।

अंदर किलों का निर्माण कभी सीधे–सादे रास्तों वाला नहीं होता था। मुख्य द्वार से भीतर प्रवेश करने के लिये टेढे–मेढ़े रास्तों से मुख्य स्थानों तक पहुंचना होता था। टेढ़े–मेढ़े रास्तों के ऊपर छोटी–छोटी तोपों और धन्नालें रखी रहती थी। जब दुश्मन मुख्य द्वार से किले के भीतर हमला करता था तो ये छोटी–छोटी तोपें धन्नालें और सिपाहियों की तुपकों के फायर दुश्मन को अन्दर किले में प्रवेश करने को रोकते थे। वास्तव में दुश्मन के सैनिकों को किले में प्रवेश करने के पहले उन सैनिकों की तुपकों तीरों आदि से भुगत कर भीतर प्रवेश करना पड़ता था जो पहले से किले के भीतर तीरकसों कगूरों आदि की आड़ लिये दुश्मन को रोकने के लिये युद्ध करते थे। दुश्मन सबल होने पर जब किले में प्रवेश करता ऐसी हालत में राजा, महाराजा और नवाब आदि की रनिवास की स्त्रियां बच्चे पहले से ही किले के बाहर भौहरों के रास्तों से बाहर चले जाते थे।

मैने बुन्देल खंड के कुछ जिलों के केवल किलों महलों और गढ़ियों के नाम लिखे हैं जो आप सभी के सामने पेश है।

महल, किले, गढ़ और गढ़ियों की संख्या जिलेवार

(लगभग)

क्र0	जिला का नाम	महल	किले	गढ़	गढ़ियां
1.	गुना	2	3	–	–
2.	छतरपुर	5	–	2	52
3.	जालौन	–	–	1	59
4.	जबलपुर	–	–	1	–
5.	झांसी	–	2	–	17
6.	टीकमगढ़	4	6	3	22
7.	दमोह	–	–	3	–
8.	दतिया	2	3	–	2
9.	पन्ना	3	1	2	–
10.	बांदा	–	1	2	–
11.	ललितपुर	–	–	–	19
12.	विदिशा	–	–	2	–
13.	शिवपुरी	–	7	–	9
14.	सतना	–	1	–	3
15.	सागर	1	5	–	18
16.	हमीरपुर	–	3	–	9
17.	चित्रकूट	–	1	–	–
18.	महोबा	3	3	5	–

नोट : यह सर्वेक्षण पूर्ण नहीं है। व्यक्तिगत प्रयासों और जानकारियों पर आधारित है।

- महल रोड, छतरपुर

बुन्देली गीत

- स्व0 श्री सन्तोष सिंह बुन्देल

खेत हमारे पूजा घर हैं, तीरथ हैं खारयान।
नदी कछारन अपनो आंगन, ढ़बुआ बड़ौ मकान।।
मड़इया प्यारी है।
जगत से प्यारी है।।
कुआ हमारौ गंगा सागर, कछवारौ है कासी।
जब हम सकला खोदन बैठे, उखरें गड़ी जमासी।।
हमारी जा गौउन सी सार।
जैसे श्रीहरि तीरथ हरद्वार।।
उतै निर्मल गंगा की धार, इतै पै होबै दूध महान।
हमारे बैड़ा है कैलास, इतै है पारबती कौ बास।।
कै भुन्टा खाओ रे।
ओ भइया आओ रे।।
लगो गांव के गैवड़े पीपर, ब्रम्ह कपाली जानौ।
पूरब मै देबी की मड़िया काली जीखां मानौ।।
बड़ौ झिन्ना हो रओ कस्मीर।
दूधिया बहत है निर्मल नीर।।
सगौना देवदार और चीर, छबीली की मीठी मुस्कान।
है जैसे सुबह की चंचल धूप, निहारौ कासमीर कौ रूप।।
वौ देखौ दहि बारी।
वौ देखौ महि बारी।।
आए मस्त हवा के झोंका, खड़ी फसल लहराबै।
भरी जवानी मैं हैलन की, ज्यौ कम्मर बलखाबै।।
चिरइयां गांय लताकै गीत।
रांट छेड़े सास्त्री संगीत।।
कै जीनें सब दुनियां लई जीत, है जैसे मन्नाडे की तान।
टुन टुन हो रई चम्बल भैंस, है विहरें ठाड़ी काली डैस।।
ए बच्छा दारा है।
कभऊं ना हारा है।।
दिल्ली की संसद है अपनी गांव की गुड़ऊ अथारी।
जीके निर्देसन खां मानत बस्ती के नर नारी।।
सभापति गांव के लम्मरदार।
हमारे बेई राजसरकार।।
उनई पै है बस्ती कौ भार, करत हैं हम सब कौ कल्यान।
गांव के मिट्ठू चौकीदार, हमारे बेई थानेदार।।

- साहित्य परिषद, छतरपुर

लोकगीत व लोकसाहित्य

- डॉ सियाराम शरण शर्मा

गीति का प्रयोग अति प्राचीन है और नाट्यशास्त्र में इसके प्रयोग मिलते हैं – 'गीत शब्दित गानयोः' (हेमचन्द्र) और 'गीतं गान मिये समें'। गीत और गीति काव्य का विकास लोकगीतों से हुआ है। भारतीय गीतिधारा के क्रमिक एवं तात्विक विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि संगीत तत्व गीतों से सदैव अविच्छिन्न रहा, किन्तु वह क्रमशः गौण अवश्य होता गया और काव्यत्व की मात्रा उसी अनुपात में बढ़ती गयी। अतः गीति गीतिकाव्य होते गये। गेय पदों में संगीत तत्व प्रधान है गीतों की समृद्ध परम्परा का प्रवर्तन हमारे यहाँ ऋग्वेद से ही मिलता है।

संस्कृत साहित्य में मुक्तक, खंडकाव्य, महाकाव्य आदि विभिन्न काव्य रूपों की सृष्टि हुई और आचार्यों ने इनके लक्षण निर्देश भी किये, किंतु उन्होंने गीति काव्य को स्वतंत्र काव्य रूप न मानकर उसकी गणना मुक्तक के अंतर्गत की। काव्य शास्त्र के प्रमुख ग्रंथ नाट्य शास्त्र में भरत मुनि ने इसकी चर्चा आनुषंगिक रूप से की है। आचार्य विश्वनाथ ने गेय पद का उल्लेख रूपक प्रकरण के अंतर्गत करते हुए उसे स्थित पाठ्य कहा है। 'संगीत रत्नाकर' में गीत की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की गई है–'स्वरों का वह गठन,जो मनोरंजक हो, गीत है।'

सृष्टि के आदिकाल में जब आदि मानव मनु ने नील पारावार का अत्यंत उर्मिल हृदय देखा। उनके हृदय में जिज्ञासा और उत्सुकता पैदा हुई। हृदय की भावना को वाणी देकर वे किसी को श्रवण कराना चाहते थे ठीक उसी समय उन्हें एक सहधर्मिणी, एक जीवनसंगी और एक साथी मिला। उस समय भी मनु जब श्रद्धा को एकांत में छोड़कर मृगया को चले जाते तो श्रद्धा तकली चलाती थी और तकली पर गीत गाती थी। सृष्टि के इसी आदिकाल में ही आदि मानव ने अपनी हृदयगत भावनाओं को गुनगुनाया और यहीं से साहित्य और लोकसाहित्य दोनों का जन्म हुआ, परंतु सभ्यता की कसौटी पर खरा उतरकर एक लिखित हो गया तथा दूसरा मौखिक। आज हम उसी को साहित्य कहते हैं जो लिखित है, मौखिक को नहीं। परम्परागत लोकसाहित्य मौखिक रूप में शताब्दियों से जन साधारण के मनोभावों का आकर्षण करता रहा है। इसका प्रचार ग्राम–ग्राम, गृह–गृह और व्यक्ति–व्यक्ति तक है। वह जनता का साहित्य है, जिसमें ग्राम के जीवन का इतना सच्चा, इतना महान और इतना पवित्र खींचा गया है।

व्यक्ति और समष्टि की वेगवती धारायें जहाँ मिलती हैं, उस भाव भूमि का नाम लोक है। लोक में व्यक्ति की सत्ता और विश्व की चेतना दोनों समाहित हैं। पौर और नगर निर्मित हुए, राज्यों की स्थापना हुई लेकिन व्यक्ति की चेतना विश्रृंखलित होकर भी लोक से अलग नहीं हो पायी । ज्ञान का प्रथम उद्रेक संभवतः लोक में ही हुआ होगा । लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है उसमें भूत, वर्तमान और भविष्य सभी कुछ संचित रहता है । नाना पुराण, आगम और शास्त्रों की रचना लोक को अलग हटकर न हुई होगी ।

लोक की भांति संस्कृति भी जीवन के पारस्परिक समवाय का बोधक है । सामाजिक संदर्भों में प्रस्तुत किये गये जीवन को विभिन्न रूप से देखने और उसे समुचित रूप से नियोजित करने के लिए स्थिर किये गये मानदण्डों का नाम संस्कृति है । संस्कृति युग जनीन भी होती है और सम–सामयिक भी। सम–सामयिक संस्कृति किसी काल विशेष की तस्वीर होती है, किंतु युगजनीन संस्कृति इस सीमा से आगे बढ़कर समय की अविच्छिन्न परम्परा के समानान्तर चलती है। लोकसंस्कृति और लोकोत्तर संस्कृति में अंतर है। एक साधारण समुदाय का बोध कराती है। दूसरी विशिष्ट समुदाय का। लोकसंस्कृति में अद्भुत सामाजिक शक्ति रही है। वेद से लेकर महाभारत और गीता तक में लोकधर्म की महत्ता स्वीकार की गई है । आज का समूचा साहित्य चाहे वह संस्कृत, प्राकृत अथवा हिन्दी का हो वह मूलरूप में लोकसाहित्य से ही उद्भूत हुआ है। प्राचीन भारतीय संस्कृति वेद, रामायण और महाभारत जैसे साहित्यिक ग्रंथों में सुरक्षित है। लोकचेतना का प्रतिनिधित्व करने वाले लोकगीत, लोककथा और लोकवार्ता आदि हैं। इनमें प्राणतत्व के निकट पहुँचने वाला स्वरूप लोकगीतों का है। लोकगीतों में जनमानस की इच्छाओं, साधों और संवेदनाओं की निष्कपट अभिव्यक्ति रहती है। आनंद या दुख का आवेग जब अपनी चरम सीमा पर पहुँचता है तो बाहर निकलने के लिए मार्ग खोजने लगता है। लोकमानस का यह आवेग गीति–काव्य की भांति अलंकार और छंद के रास्ते न चलकर अपनी सहज गति में प्रवाहित हो जाता है। उसमें न तो कृत्रिमता होती है और न सजावट। इसलिए उस अनुभूति का सच्चा प्रतिरूप वह होता है।

कविता व्यक्तिपरक होती है अपने रचयिता के भावों तक ही सीमित रह सकती है, लेकिन लोकगीत किसी एक की थाती नहीं होते, वे जनमानस की धरोहर होते हैं । लोक के भाव अनुभव, सुख–दुख रीति–नीति स्पष्ट और स्वच्छ रूप में इनमें रूपायित होते हैं । किसने इन्हें बनाया, कब बनाया, इतिहास इसकी गवाही नहीं देता, जब–जब प्रेम की पुलक बड़ी होगी, आंनद की हिलोर से हृदय तरंगित हुआ होगा, रस की बूंदों से चित्त लहलहा उठा होगा, तब–तब इन गीतों की रचना हुई होगी लोकगीत उस गंगा की भांति है जो काल की असीम परम्परा में किसी अज्ञात भागीरथ द्वारा भूतल पर प्रवाहित किये गये और आज तक जगमगकर लहलहा रहे हैं ।

लोकगीतों के आधार पर किसी प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास लिखा जा सकता है। समाज की उछाह और पीड़ा, नियम और आचार, अनुभूति और मनोदशा सभी अपने आद्यरूप में इनमें प्राप्त होते हैं। परिवार में पिता – पुत्र, पति–पत्नी, भाई–बहिन, ननद–भावज, देवर–भाभी जैसे अनेक मधुर संबंध होते हैं। लोकगीत इन संबंधों की मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। लोकसाहित्य और लोकसंस्कृति में जो तत्व मिलते हैं वे बड़े ही स्पष्ट, उपयोगी और जीवन को आगे बढ़ाने वाले हैं। इनमें कर्मठता, संघर्षशीलता, साहस और समरसता की संस्कृति है।

परम्परा से प्राप्त लोकगीतों के भाव, विभाव आदि बुंदेली, ब्रज, अधवी, भोजपुरी, बघेली एवं राजस्थानी आदि के लोकगीतों में निरंतर मिलते चले आ रहे हैं । उदाहरणार्थ कूप पूजन का एक गीत प्रस्तुत है–

बुन्देली त्रयी के प्रमुख कवि ख्यालीराम

-डॉ० गंगा प्रसाद बरसैंया

"इत चम्बल उत बेतवा, इत जमुना उत टौंस" की पवित्र कल–कल निनादित धाराओं के मध्य, विनत विंध्यांचल की उन्नत ललाट आभा से प्रोदूभासित सशक्त भुजाओं की छत्रछाया में पल्लवित बुन्देलखंड की परम्पराएं बड़ी महिमा–मंडित और विविध कोण–स्पर्शी उदात्त समन्वयकारी हृदय स्पर्शिता से सरसित रही हैं। यही कारण है कि एक ओर चित्रकूट और ओरछा के श्रद्धामंडित जन–जीवन के विश्वस्त भक्ति केन्द्र हैं तो दूसरी ओर खजुराहो की श्रृंगारित ललाम कला की कमनीय कुशलता भी। ईश्वरीय विश्वास का आन्तरिक शंखनाद करने वाले तुलसी, प्राणनाथ और अक्षर अनन्य हैं तो केशव, बिहारी रसनिधि, प्रवीणराय और पद्माकर की लंबी श्रृंखला भी। निष्प्राण जीवन में अग्नितेज प्रज्वलित करने वाला आल्हा काव्य है तो जनजीवन के मध्य उन्मुक्त भावव्यंजना का लोक साहित्य भी विपुल मात्रा में विलसित है। वस्तुतः बुन्देलखंड प्रारंभ से ही प्रतिभा–केन्द्र रहा है जहां सभी को अनुकूल वातावरण मिला। यही कारण है कि शिष्ट साहित्य की प्रधानता के बाद भी लोक साहित्य की लता यहां बराबर फैलती रही और आज भी अपनी पूर्ण हरीतिमा से जनजीवन को प्रमुदित कर रही है।

इन सब सम्पन्नताओं के पीछे किन्हीं न किन्हीं साधकों की साधना का पुण्य अवश्य होता है। बुन्देलखंड का लोक साहित्य यदि आज देश का प्रमुख लोक साहित्य स्वीकार किया जाता है तो उसके पीछे साधक कलाकारों के जीवन–प्राणों का उत्सर्ग प्रतिध्वनित होता है जिन्होनें इन स्वरों में न केवल अपनी जीवनानुभूतियों के स्वरों को शब्दबद्ध किया वरन् संपूर्ण समाज की संवेदनाओं को शब्दलय प्रदान किया जो आज भी हमारी प्रेरणा शक्ति के केन्द्र हैं। इन संवेदना स्वरों को अकेले और सामूहिक रूप से झूम–झूम कर गाने वाले आज भी भावविभोर होकर जीवन–वेदनाओं से मुक्त और हल्के हो जाते हैं।

लोक साहित्य लोक जीवन के निष्कलुष और आत्मीय भावों का निर्मल दर्पण है, जहां कुछ भी गोपनीय नहीं होता। हर भारतीय को यदि 'सोने के गडुवा' के माध्यम से जीवन–सौख्य की आकांक्षा है तो 'गंगाजल पानी' के माध्यम से जीवन–पवित्रता और सतत गतिशीलता के प्रति आस्था भी। इन सभी भावनाओं, आस्थाओं और कल्पनाओं को बुन्देली लोक साहित्य में जिन संवेदनशील समर्थ साधकों ने संयोजित कर उसे अमरता प्रदान की उनमें हमें मुख्यतः ईसुरी, गंगाधर और ख्यालीराम का नाम लेते हैं। तीनों बुन्देलखंड के जनमानस में बहुत गहराई तक पैठकर आज भी आत्मस्वरों को उजागर करते हैं। इसीलिए इन्हें 'बुन्देली–त्रयी' कहना सार्थक प्रतीत होता है।

भारतीय काव्य भक्ति और श्रृंगार की एकता का जीवन्त उदाहरण है। पारिवारिक जीवन की अनुभूतियों का आल्हादित आनन्द भोगकर शांति प्राप्ति की आशा से किसी ईश्वर के प्रति यहां का निवासी सदा से समर्पित होता रहा है। भक्ति की निर्मलता और श्रृंगार की उदात्त सात्विकता, यहां का साहित्यिक चरित्र है। यही चरित्र हमें 'बुन्देली त्रयी' की कला साधना में मिलता है। इसीलिए लोक साहित्य की उन पंक्तियों को हम उन्मुक्त भाव से सभी के समक्ष बड़े आल्हाद से गाते हैं। बुन्देली लोक साहित्य का सर्वाधिक प्रचलित रूप फागों का है। ये फागें केवल होलिकोत्सव पर गाई–दुहराई जाने वाली पंक्तियां ही नहीं हैं, अपितु उनमें हमारा जीवन–दर्शन और सामाजिक स्वरूप भी संयोजित है। हमारे चिन्तन और लोक भावाभिव्यंजना की वे माध्यम हैं। इस लोक साहित्य के आधार ईसुरी, गंगाधर और ख्यालीराम जी है। तभी तो एक फाग में कहा गया है –

रस्ता सुगम ईसुरी डारी, अच्छी राय विचारी।
गंगाधर गट्टी पुरवा के, पक्की सड़क निकारी।
जां–जां झील परी बोधन ने, ख्याली ख्याल सुधारी।
पदम सिंह विरछा लगवा कें, करी घनेरी छांयरी।
तो ऊपर लाले अरू मोती, निगम खात न हारी।

लोक साहित्य को इन फागों में निहित स्वरों को भावात्मकता प्रभविष्णुता प्रदान करने वाले ख्यालीराम जी हमारे बुन्देलखंड के अमूल्य रत्न है। यह भूमि केवल हीरों की ही नहीं, साधक–कलाकारों और पंडितों की भी रत्नगर्भा है। इसी वसुन्धरा की पुण्यभूमि चरखारी के निकट अकठौंहा ग्राम में हमारे सम्मानित लोककवि ख्यालीराम का जन्म श्री रामसहाय जी के घर आज से लगभग 135 वर्ष पूर्व में हुआ था। कलाधात्री मां सरस्वती किसी सामंती स्वर्ण की अनुचरी नहीं रही उसकी सवर्णता साधना है। जो साधक है, वहीं मां का कृपापात्र है। तभी तो लोधी जातीय ख्यालीराम जी पर मां वीणापाणि की ऐसी अनुकम्पा रही कि वे जन–जन के कंठहार बन गये। चरखारी नरेश के समक्ष अपना परिचय देते हुए वे कहते हैं–

जात महालोधी हों अबोधी सब भांतन सौं,
ठाकुर खिताबी जगराजी के कहावैं जू।
आपके सिपाही खैरख्वाही साख साखन की,
विकट वंश राय को प्रशंस का बतावैं जू।

(पृष्ठ 49 का शेषांश)

"जल भरन जानकी आयीं तीं,
की–की बहू, कौन की बेटी, की–की नार कहाईं तीं ।
जसरथ बहू, जनक की बेटी, राम की नार कहाईं तीं ।
जल भरन जानकी आयीं तीं,

0 0 0

ऊपर गगन घहराय, तरैं गोरी पनियां खों निकरीं ।
जाय जो कहयौ, उन राजा ससुर लौं,
अंगना में कुइयां खुदांय ।
तुम्हारी बहू पनियां खां निकरीं ।

इस प्रकार लोकसाहित्य सरल साहित्य है । इसका समस्त भाग और सम्पूर्ण रूप जन–जन की वाणी पर निखरा हुआ है इसमें समय –समय पर विभिन्न व्यक्तियों का प्रभाव पड़ता रहता है । लोकसाहित्य की यह अपनी विशिष्टिता है कि मौखिक होते हुए भी आज तक वह अपना रूप बनाये हुये है।"

- ९७, टकसाल, झांसी

ख्यालीराम नाम जो सनाम भाई बन्दन में,
सोई नाम आपउ की सनद में लिखावैं जू।
जौन हुक्म होय भूप भानुप्रताप जू को,
सो तुव कृपा सों सर्व पूरी कर लावै जू।।

किसान परिवार में जनमें ख्यालीराम जी सामान्य शिक्षा–दीक्षा के बाद बिजावर स्टेट के थानेदार बने। ग्रामीण किसान–परिवार के सदस्य होने के साथ ही थानेदार जैसे रोबदाब वाले पद में रहने के कारण इन्हें ग्रामीण जीवन किसान परिवार और सामन्ती व्यवस्था से संबंधित अधिकारियों के जीवन एवं कार्यकलापों का अच्छा बोध था। इसीलिये इनके काव्य में विविधता के दर्शन होते हैं।

ख्यालीराम जी का काव्य भावना–संसार की त्रिवेणी हैं। भक्ति की भाव–गंगा; श्रृंगार की कलावती यमुना और सामाजिक जीवन की सद्भावी सरस्वती के संगम में अवगाहन का आनन्द हमें इनके काव्य में मिलता है। यद्यपि इस कवि में रीतिकालीन काव्य परम्परा का सर्वाधिक प्रभाव है। उनकी कविताएं इस तथ्य की परिचायक हैं कि वे श्रृंगार काव्य के सर्जक ही नहीं श्रृंगारशास्त्र के ज्ञाता भी थे। किन्तु वे भक्ति भावनाओं से अछूते नहीं थे। और नास्तिक और श्रृंगारी व्यक्ति भी एकान्त और आन्तरिक चिन्तन के समय ईश्वर को साक्षी बनाकर अपनी निष्कपट भावनायें व्यक्त करता है। ख्यालीराम जी इस मनोवैज्ञानिक भारतीय चरित्र के पोषक है। इसीलिये भक्ति भावना से प्रेरित होकर ईश्वरीय कृपा पाने का निवेदन करते हुए वे प्रभु से कहते हैं कि जब आपने बड़े–बड़े पापियों को सद्गति प्रदान की तो मुझे भी अपनी शरण में लीजिये।

केवट को तारो कौन गुन अधिकारो हतो,
बिदुर विचारो ताहि निज के सुधारो है।
स्वपथ बड़ाई दई करुना–निधान कान,
डूबत मयन्द एक पल में उबारो है।
ख्यालीराम भीलनी कुपोतनी कुबुद्धि बुद्धि,
ताहि कर शुद्ध निज बुद्ध अनुसारो है।
बिन्द्रावन चन्द्र श्री अनन्दकन्द दीनबंधु,
मेरो काज करबो बृजराज क्यों बिसारो है।

इसी प्रकार राधा–कृष्ण को लेकर उनकी लीला–कलाओं के माध्यम से भी अनेक भक्तिपरक फागों की रचना उन्होंने की है। वे राधा जी के भाग्य के सराहना करते हुए कहते हैं–

है बड़भाग राधिका तेरो, पुन्न पुरातन केरो।
शिव सनकाद और ब्रम्हादिक जिनकी चहत छहेरो।
सो माधव राधा के उर में बैठो लेत बसेरो।
ऐसो स्याम रंगीलों कोमल राधा चित को चेरो।
कवि ख्याली उनके का कमती जिनके स्याम कमेरो।

अंतिम पंक्ति की भाव–व्यंजना कवि के काव्य–सामर्थ्य का प्रमाण है। उनके का कमती जिनके स्याम कमेरो में कितनी गंभीर व्यंजना है। कई फागें भ्रमर गीत पर आधारित लिखी गई हैं।

किन्तु जैसा मैने कहा कि ख्यालीराम जी मूलतः रीति परम्परा के श्रृंगारिक लोककवि हैं। श्रृंगार में जितनी भाव–प्रवणता, सूक्ष्म दृष्टि और शब्द–चयन–कुशलता हमें मिलता है, उतनी भक्तिपरक पंक्तियों में नहीं। विभिन्न प्रकार की नायिकाओं का वर्णन, नायिका के अंग–प्रत्यंग का चित्रात्मक प्रस्तुतिकरण, साज–सज्जा, चाल–ढाल और हाव–भावों का चित्रण कवि की रासात्मक प्रतिभा और कलात्मक कुशलता के परिचायक हैं। निश्चित रूप से इस कवि पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव हो सकता है। किन्तु ख्यालीराम जी की भौतिक सूझबूझ को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। नायिकाओं की सज्जा, अंग–प्रत्यंग का नखशिख, वर्णन, ऋतु वर्णन आदि रीतिपरम्परा के प्रमुख अंग हैं। ख्यालीराम जी भी अपनी नायिका के विविध अंगों और हाव–भाव–चेष्टाओं का वर्णन करते हैं। उनकी नायिका के नेत्र कभी कटार बनते हैं, कभी बिना लगाम के तुंग। कभी मीन, कंज, खंजन को परास्त करते हैं और कभी बया पक्षी बन जाते हैं:–

हेरन खड़ग धार से पैनी, देखत भई बेचैनी।
मीन मलीन दीन गति खंजन गंजन मद मृगनैनी।

0 0 0

तोरे तिय तुरंग से नैना, लाज लगाम लगैना।
माया मान मजबूत से मुहरा, जेरबंद जिनके ना।
घूंघट घुड़सारन से काढ़े, फूंदी फूंद फुंदेना।
कवि ख्याली आली न छोड़ो, गलियन छैल खुंदेना।

लाज लगाम, घूंघट घुड़सारन और गलियन छैल खुंदेना' आदि अंश कितने भावपूर्ण हैं – इसे रसिक पाठक भली प्रकार समझ सकते हैं। इनका अर्थगांभीर्य प्रशंसनीय है। इसी प्रकार नायिका के केश वर्णन में नियोजित उपमाएं उनकी मौलिकता, दूरवर्ती सूझबूझ तथा जीवन–परिवेश के उदाहरण हैं:–

पटिया गोला मुख पे पारें, सेंदुर मांग संवारे।
मानो चन्द्रग्रहा के ऊपर कागा पंख पसारे।
तिरबेनी बेनी खां देखे, रह गई सिमट किनारे।
ख्यालीराम दरस के होतन, कलिमल सब धो डारे।

गुदना बुन्देलखंड की विशेषता है। शरीर के विविध अंगों में अनेक चित्र उकेरना यहां की नारियों का पुराना शौक है। ख्यालीराम जी भला इसे कैसे ओझल करते। उन्होंने नायिका का जो गुदना देखा, उसकी कल्पना इस प्रकार की है –

गुदना दाढ़ी पै गुदवाओ, आज देख हम पाओ।
के लाने दो चक्र चन्द्र में, शुक्र शनीचर आओ।।

0 0 0

गुदना लसत भौंह बिच बांको, परत चंद्र में टांको।
के तो परो सेज के ऊपर सोबे कंत रमा को।।

इसी प्रकार कवि ने नायिका की नाक, कंठ, कटि, कटिबंध, पीठ, साड़ी दुपट्टा आदि का भी वर्णन किया है – जैसे 'कवि ख्याली बरनन करी कदलि पत्र सम पीठ।'' इसी प्रकार –

नीको अंग नग नग रंगनीको रूप रमा रमनी को।
मृगी मीन मधुकर मदमोचन लोचन लोच अमी को।
नासा कीर, कपोल कंठ, सुर कोकिल कल कमनी को।
कटि भृगपति लख रहत परायन सुन्दरि गज गमनी को।

इसी प्रकार कई फागों में कवि ने कृष्ण की रूपमाधुरी का भी चित्रण किया है –

ऐसी कस बाधन कटिपट की, जा अटपट तिरपट की।
छहरे छटा छोट जामा की, लटकन मोर मुकुट की।
दे त्रिपुंड श्रीखंड त्रिभंगी चाल जमुन के तट की।
कवि ख्याली बनमाली की छवि राधा के मन खटकी।

यही नहीं, राधा के सौंदर्य में कृष्ण का मन फंसकर न्यायालय में तीन सौ अट्ठाइस का मुलजिम बनकर बंदी बन जाता है –

तोरी बेइन्साफी आंसी, सुनो राधिका सांसी,
कायम करी रूप रियासत में अदा अदालत खासी,
पठवा देय नेन के सम्मन, चितवन के चपरासी।
मन मुलजिम कर लय केद में, हंसी हथकड़ी गांसी।
कवि ख्याली बेगुना लगा दई, दफा तीन सौ ब्यासी।

थानेदार कवि द्वारा इस फाग में अदालत का एक सुन्दर रूपक बांधा गया है। 'अदा अदालत' कितना सटीक प्रयोग है जहां शब्दों का विदेशीपन खटकने की बजाय और भी अर्थव्यंजक बन गया है। नैन, के सम्मन, चितवन का चपरासी, मन मुलजिम और हंसी हथकड़ी' कितने सार्थक प्रयोग हैं।

ऋतु वर्णन श्रृंगार का एक विशिष्ट अंग है जहां संयोग–वियोग दोनो स्थितियों के चित्रण के प्रचुर अवसर कवि को मिलते हैं। कवि ख्यालीराम ने भी नायक–नायिकाओं के भाव प्रसंगों को लेकर ऋतुओं का वर्णन किया है। यहां बानगी के रूप में एक–दो उदाहरण इस प्रकार है–

लसगर ऋतुराजा के छाये, मदन महीपत आये।
दीरघ दृगन बीरवर बांके, ऊधम अधिक मचाये।
सुमन कली पे कली लहर दे, अलिंगन भाव बताये।
कवि ख्याली प्रीतम प्यारे ने अन्त बसन्त मनाये।

अथवा

बालम सोच लेव बेदरदी, बागन छाई जरदी।
कोंप कली विधि हमखां दीनों, उन्हें दई नामरदी। आदि

यहां सारी बातें प्रतीकात्मक ढंग से कही गई हैं। प्रतीकात्मकता व्यंजना कला, का प्रमुख गुण हैं।

ख्यालीराम जी भारतीय जीवन–विश्वासों से दूर नहीं है। वे भी कर्मफल और भाग्य पर विश्वास करते हैं। भारतीय मनीषा यह मानती है कि मनुष्य को कर्मफल भोगना ही पडता है। तभी तो व्यक्ति दुष्कर्मों से बचकर सद्कर्मों की ओर उन्मुख होता है –

कहा दोष करतार को कर्म कुटिल गई बांह।
करमहीन कलपत फिरें, कलपवृक्ष की छांह।।

इसी प्रकार उन्होनें माना कि अनेक पुण्यों के बाद ही मानव–शरीर प्राप्त होता है, जिसके लिये देवता ओर ऋषिगण भी साधना करते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति को इस सौभाग्यशाली मानव शरीर का अधिकाधिक सदुपयोग करना चाहिए। सद्कर्म भी इस देह की सार्थकता है –

कीने दया धरम के पाखे सील सपीतन राखे।
अतरारी प्यारी ममता की करम करे दो साखे।
मन मजवूत भया की म्यारी माल मौज के साखे।
छाये सील क्षमा के छप्पर खप्पर खैर नवाके।
कवि ख्याली ऐसे घर काजे सुर नर मुनि अभिलाखे।

ख्यालीराम जी की कविता में यद्यपि अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग है किन्तु प्रधानता बुन्देली की ही है। ब्रज और बुन्देली का मिश्रित रूप कई कवियों में मिलता है। लोक साहित्य में बुन्देली को एक प्रमुखता निर्विवाद है। बल्कि यह कहें कि ऐसे लोक कवियों ने ही इस बुन्देलों का प्राणवता और स्थायी लोकप्रियता प्रदान की तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। फाग तो उसका आधार है। कहावतें–मुहावरें लोक साहित्य के मंत्र–सूत्र हैं जिनमें सामाजिक जीवन अनुभूतियों का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संयोजन होता है। इनका प्रयोग भी प्रायः सभी कवियों ने किया है। ख्यालीराम जी के काव्य में भी इनका प्रयोग मिलता है। जैसे –

कवि ख्याली कितने के लाने, रूंदत फिरत बयारो।

अथवा

इमली आम होय न ख्याली, चायं दूध सों सींचो।

अलंकारिक प्रयोगों के साथ ही ख्यालीराम जी ने अपनी कविता[ओं] में इस क्षेत्र में प्रचलित पहेलियों को भी स्थान दिया है। ऐसा प्रयो[ग] अन्य कवियों में भी मिलता है। नेत्र और धन के संबंध में इस कवि [की] पहेली देखिये–

दौरे लगे पाल दो ठैया, जामें नचत भुमैया।
रस्सी सरद एक नई लागी, नई लठा न पैया।
झालर अजब लगी एकह सी, ऐसो सुगर बनैया।
ख्याली उपमा दई पाल की हमें बता दो भैया।

इसी प्रकार –

हर ने ताली एक खुदाई तित डूबे ना राई।
हाथी पीवे घोड़ा पीवे, पीवे लोग लुगाई। आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति, श्रृंगार और जीवन–व्याप[कता] की त्रिवेणी से बुन्देली लोक जीवन को स्निग्ध और आल्हादित क[रने] वाले सरस, सात्विक और उदात्त कला–साधकों में ख्यालीराम जी [का] स्थान प्रमुख है। ईसुरी, गंगाधर की लोकगीत–गंगा के अवतरण [का] संकल्प तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक कि ख्यालीराज जी [के] योगदान का स्मरण न करें। जन–जन के गलहार बनें इन लो[क] कला–साधकों के लोक साहित्य का संकलन, अध्ययन और विधि[वत] प्रकाशन बहुत आवश्यक है जो हमारे शिष्ट साहित्य का मूलाधार [और] प्राण–पोषक तत्व है। इसको साथ लिये बिना हमारी जीवन–ब[हु] स्निग्ध नहीं बन सकतीं।

- एम.आई.जी. 1
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, छतर[पुर]

जाने मोय बसारी....

- काशीराम 'अकेला

करदयी भुनसारें तैयारी, जाने मोय बसारी।
पइसा टका पास में नैयां, खाली जेब हमारी।।
गाड़ी–घोड़ा और साइकल, नैया मोटर लारी।
गावे फाग देखबे जाने, राई बसारी बारी।।

कितनी दूर बसारी भैया, पूंछत गली चलैया।
पैदल जा रओ उत्सव देखन, मौंड़ा लयें दो ठैया।
छोड़ आओ घर भूखी–प्यासी, अपनी प्यारी दुलैया।
अंदयाई से निगो इतैलौ, लग आई लौलैया।।

-जिला सहकारी संघ मुद्रणालय, छतरपु[र]

बरसात और बुंदेलीगीत

-डॉ० प्रेमलता 'नीलम'

आषाढ़–सावन–भादों की घनघोर बरसात में जब मल्हार राग गूंजता हो और बुन्देली की स्वर लहरियां ददरियां, कजरी, सैरो जैसे लोकगीत लय–ताल से ताल मिलाते हुए बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक पक्ष को समृद्ध करते हुये रिमझिम फुहारों संग बरसात का आनंद दूना कर देते हैं :–

"उठी–उठी रे घटा घनघोर
नभ में चमके बीजुरिया।
बन नाच रहे जोड़ा मोर,
छनन–छनन बाजे पायलिया।।"

सचमुच, बुन्देली माटी की सोंदी महक के समान ये बुंदेली लोक गीत भी, मन आंगन को महका देते हैं इन गीतों में मर्यादा, संस्कारों का पूरा–पूरा निर्वाह हुआ है। आनंद तब और अधिक आता है जब आषाढ़ का पहला–पहला पानी हो, साजन–सजनी का साथ हो मन रंगीला हो, तो कह उठता है –

"कोरी रजइया के दरद बिछौना,
आ जा धना मोरी आ जा री,
मोय जाड़ो लगत है।"

तब उत्तर होता है –

कैसे आऊं ऊंची अटरियां,
सावन–भादों की लगी अंधियारी।"

इसी मौसम में बेला के फूलों की निराली छटा होती है। प्रकृति के ये प्रसून प्रेमाभाव को जन्म देते हैं इस गीत में मार्मिक वर्णन मिलता है–

" बेला फूलों आधी रात, गजरा की के गरे डारों।"

बुन्देलखण्ड में बरसात में ददरियां गाई जाती है। महिला–पुरुष दोनो गाते हैं। यथा– "सावन की लागी झड़ी, पिया गये परदेश हो। प्यू–प्यू बोलत पपीहरा, मोरे हिय में लगत ठेस हो।" इन गीतों में नारी मन की वेदना है, वहीं सुकुमारता, माधुर्य भी दिखाई देता है तभी नई–नवेली दुल्हन गुन गुनाती है– बरस रई कारी बदरिया, आजई मोरे तन पतरी चुनरिया।" मस्ती से भरे यह गीत बड़े मन मोहक और भक्ति भावना से ओत–प्रोत है। ब्रज की थाप हमारे बुन्देलखण्ड में भी झूला गीतों के साथ ध्वनित होती है। इन झूला गीतों में कृष्ण भक्ति, राधा कृष्ण प्रेम, गोपियों संग रास, कृष्ण की बाल्य लीलाओं का वर्णन चित्रित होता है।

"झूला डारौ कदम की डार, झूलत नंद किशोर हो हारी।"

बुन्देली कजरी का अनूठा आंनद होता है इस फुहार भरे मौसम में–

"हरे रामा आज बृज में श्याम बने मनहारी हो हारी,
काजर बूंदा, बिछिया ले लो गलियन देख मुरारी रे–हारी।"

किसानों को फुरसत का समय होता है वर्ष भर की थकान को इसी मौसम में निकालते हैं और दो पाली बनाकर सैरो का गायन करते हैं। इस सैरो में ओज, श्रृंगार, वियोग रस का मिला–जुला रूप रहता है।

"बैठी तो रइयो रे,..........SSS
बैठी तो रइयो रानी सतखण्डा में
खइयो डबो के पान,
जब हम आहैं अरें रण कूच से,
तोरी मोतिन भरा देहौं मांग––"

उत्तर कुछ ऐसा होता है :–

"जरजा–वरजा रे,
जरजा–वरजा तोरे सतखण्डा
तोरे पानों में परजा तुषार,
तोरे अकेले अरे जियरा बिन,
मोहे सूनो लगे संसार।"

उक्त गीत में भारतीय नारी मन की सुकोमल प्रेम और समर्पण की भावना कितनी सुखद और आनन्द प्रद है।

इन्हीं दिनों महिलाओं के व्रत, उपवास का माहौल होता है। जैसे हर तालिका में महिलाएं गाती हैं– कहां पाहौं अकउआ के फूल, शिव के चढ़ावे खों।" इसी व्रत में रात्रि जागरण होता है। तो हास परिहास की चुटकी भी नारी लेती हैं।

"दे लये ककरी के ठांसे हो हम तीजा उपासे
हम इते करत शिव की पूजा उते पिया जू रूऑसे।"

बुन्देलखण्ड के आल्हा–ऊदल की वीरगाथा से सभी परिचित हैं, जब बरसात में झड़ी लगती है तब आल्हा का गायन लय–ताल–स्वर में बद्ध गाया जाता है जिसमें युद्ध क्षेत्र, विवाह आदि का वर्णन होता है।

ये बुन्देली लोक गीत बुंदेलखण्ड संस्कृति को बरकरार रखे हुए हैं, ये सभी लोक गीत संसार की आपा–धापी से दूर हैं यदि इनमें मन डूब गया तो मनुष्य समस्त यातनाओं राग द्वेषों से दूर हो जीवन का सही आनंद उठाता है। ये बुंदेली गीत बुंदेली धरा की धरोहर है, सोंदी माटी का चंदन है तो आइये क्षेत्रीय भाषा लोक संस्कृति से जुड़ें और नवीन पीढ़ी को अवगत करायें, छत्रसाल जैसे वीरों से, लक्ष्मी बाई जैसी वीरांगनाओं से और लोक परम्परा से। तभी हम अपना बुंदेली माटी के प्रति ऋण चुका पाएंगे शत–शत् नमन तुम्हें बुंदेलखण्ड।

-एच/27, लॉ कॉलेज के पास,
दमोह-470661

बुन्देलखण्ड की लड़कियों का खेल :

चपेटा

- श्रीमती ब्रजलता मिश्र

बुन्देलखण्ड में लड़कियों का एक खेल है 'चपेटा'। इन्हें कहीं-कहीं गुट्टे भी कहा जाता है। यह खेल वर्षाऋतु विशेषकर सावन में खेला जाता है। चपेटा मुख्य रूप से लाख के चौकोर टुकड़े होते हैं जिनकी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई समान होती है जो लगभग आधे इंच की रहती है। गरीब लड़कियों कुछ सुधरे से कंकड़ बीन कर उनसे चपेटों का काम करती हैं। काठ, संगमरमर, हाथी दांत, सींग तांबे और पीतल आदि से भी चपेटा बनाये जाते हैं।

विवाह के उपरान्त प्रथम सावन में वर पक्ष की ओर से वधू के मायके को जो वस्त्राभूषण, मिठाई एवं खिलौने भेजने का रिवाज है, उसे 'सांवनी' कहते हैं। सांवनी में चपेटा भेजना आवश्यक है। यह चपेटा अनिवार्यतः लाख के ही होते हैं। किन्तु सम्पन्नता एवं वैभव का प्रदर्शन करने के हेतु लाख के चपेटों के साथ चांदी और कहीं-कहीं सोने के भी चपेटा भी भेजे जाते हैं जिनमें कि नग भी जड़ दिये जाते हैं।

चपेटा के खेल में दो या अधिक लड़कियां भाग लेती हैं ये लड़कियां अलग-अलग अथवा दो-दो की टोलियों में बैठकर चपेटा खेलती हैं। इसे गुइयाँबाजी कहते हैं। खेलने वाली लड़कियों की रुचि के अनुसार चपेटों की संख्या पांच, सात, नौ या अठारह या उससे अधिक भी कर ली जाती है। किन्तु नौ चपेटों का खेल अधिक प्रभावित है। अतः उसी का इस लेख में विस्तार किया जा रहा है।

लड़कियां नौ चपेटे लेकर उनको उछालकर हथेली के दूसरी ओर पहुँचें पर रखती हैं और पहुंचे से पुनः उछालकर हथेली पर लातीं है। ऐसा करने में एक चपेटा गिर जाने की छूट रहती है। परन्तु यदि दो तीन या चार चपेटे जमीन पर गिरते है। तो वे हथेली में आये हुये चपेटों में से एक चपेटा उठाकर उसे उछालती हैं और जब तक वह उछलकर वापस हांथ में आये वब वह नीचे का गिरा हुआ एक-एक चपेटा उठा लेतीं हैं गिरा हुआ अन्तिम चपेटा हर बार बिना उछाले उठाया जाता है। यही क्रम नौ बार तक चलता है उसे "हतियन" कहा जाता है ऐसा करने में यदि चूक पड़ जाती है तो बाजी छिनकर दूसरी लड़की के हांथ आती है। यदि हथेली से पहुंचे तक उछालने में गिरे हुये चपेटों की संख्या पांच या अधिक होती है तो भी बाजी छिन जाती है उस प्रसंग में यह भी बतलाना उपयुक्त होगा कि हथेली से पहुंचे पर जितने चपेटा पहुंच चुके हैं वह पहुचें की उछाल से हथेली पर पुनः सब के सब आ जाने चाहिये अन्यथा इस चूक से भी बाजी छिन जायेगी। यदि जमीन पर पड़े चपेटे असावधानी से टकरा जायें या एक चपेटे को लेते समय दूसरा चपेटा हाथ से हिल जाये तो भी दोष माने जायेंगे और इन सभी प्रकार के दोषों से बाजी छी ली जायेगी।

उसके बाद एक चपेटा उछालकर जमीन पर हथेली थपथपा हुये उसे हाथ में लेते हैं और फिर दो चपेटों को उछालकर जमी थपथपाकर उन्हें हाथ में लेते हैं। इसे नक्कौ-थप्पौ कहते हैं इस खेल की सभी क्रियाओं के बाद होता चलता है। उसके बा नाक से सांस रोककर मुंह बन्द करके 'नोनी-बुरई' की जाती है अर्थात दांहिने हाथ की हथेली में नौ चपेटे लेकर उन्हें उछालक वे हांथ में लेती हैं यदि कोई चपेटा नीचे नहीं गिरता है तो व 'नोनी' होती है और पूर्वानुसार नक्को-थप्पो किया जाता है। बुर करने में वे नाक से सांस लेती हैं मुंह खोलकर बात भी कर सकत हैं। इसमें चपेटा लेने में यह सावधानी नहीं रखी जाती कि को चपेटा जमीन पर न गिरे अर्थात चपेटा जमीन में गिर भी सकते हैं इसके बाद वे नक्को-थप्पो करतीं है।

अब सभी चपेटों को जमीन में झटके के साथ फैला दें हैं और स्वेच्छा से कोई एक चपेटा उठाकर उसको उछालते हु नीचे पड़े चपेटों में से एक-एक चपेटा उठाती जातीं है ऐसा वे बार करती हैं। इस प्रक्रिया को "हकियन" कहा जाता है। त नक्को-थप्पो लेतीं हैं। इसी प्रकार दो-दो, तीन-तीन, चार-चा पांच-पांच, छैः-छैः सात-सात, और आठ-आठ चपेटों को उठाव नक्को-थप्पो करती हैं। इन्हें क्रमशः दुकियन, तियन, चईन, पच्च छक्कन, सत्तन और अट्ठन कहा जाता है। अब नम्मे की जा है अर्थात नौ चपेटों को हथेली से पहुंचे पर और पहुंचे से हथे पर नौ बार उछाला जाता है। इसमें सावधानी रखी जाती है कोई चपेटा भूमि पर न गिरने पाये। अंत में नक्को-थप्पो करते उसके बाद सभी चपेटों को फैलाकर एकहरी बरीं देती हैं। अथ एक बार चपेटा उछालकर दूसरा चपेटा उठाती है, उसे हाथ लेकर पहले वाले चपेटा को उसी प्रकार हाथ से उछालकर तीस चपेटा उठातीं हैं ताकि दूसरा चपेटा उसके स्थान पर छोड़ दे हैं ऐसा नौ बार करने के बाद नक्को-थप्पो लेतीं हैं। दूसरी ब भी इसी प्रकार की जाती है अन्तर केवल इतना है है कि चपेटा उठाने पर उसके स्थान पर वे दो-दो चपेटे छोड़ती ज है और नक्को-थप्पो लेती है। अब बारी आती है "खुटखुट" क इसमें वे सभी चपेटे फैलाकर किसी एक-एक चपेटे को उठा उछालतीं हैं और दूसरे चपेटो को तब तक जमीन पर दो खुट-खुट धुन कर के उठा लेती हैं इस प्रकार वे नौ बार क नक्को थप्पो लेतीं है। दोहरी खुट-खुट में वे एक के बजाय

चपेटों से नौ बार खुट–खुट करने के बाद नक्को–थप्पो करतीं है।

इसके अनन्तर वे 'सुपारी' काटतीं है। अर्थात एक चपेटा बायें हाथ की मुट्ठी में बनाकर अंगूठा और तर्जनी के स्थान में दबाती हैं। शेष आठ चपेटों को जमीन में फैला देतीं हैं अब कोई एक चपेटा उठाकर उसे उछालकर नीचे पड़े चपेटों में से एक–एक उठातीं हैं और उसे बायें हाथ में पकड़े हुये चपेटा से बजाकर दायें हाथ में लेतीं जाती हैं। इस प्रकार नौ बार करके नक्को–थप्पो लेने में एक चपेटा उछालकर तर्जनी से बायें हाथ वाले चपेटा को छूतीं है और फिर दो चपेटों को उछालकर दायें हाथ की सभी अंगुलियां बायें हाथ के चपेटा से छूती हैं।

फिर वे सभी चपेटों को फैलाकर एक चपेटा उछालकर नीचे पड़े हुये चपेटों को एक–एक करके उठातीं जाती हैं और क्रमशः नौ–नौ बार 'करेला–करेली', मकोरा–मकोरी, करोंदा–करोंदी, ककोरा–ककोरी, नाक या मुंह से बिना सांस लिये अनवरत रूप से कहतीं जाती हैं और नौ बार तक पूरे चपेटा उठाने तक वे बिना सांस लिये हुये यह कहतीं जाती हैं और ऐसी ही अवस्था में नक्को–थप्पो लेतीं है तब वे सांस ले पातीं हैं।

अब वे 'झूमका' करतीं हैं अर्थात सभी चपेटों को फैलाकर एक चपेटा उठातीं है। उसे उछालकर दूसरा चपेटा उसी समय उठातीं हैं फिर दोनों को उछालते हुये तीसरा और तीनों को उछालते हुये चौथा अर्थात जितने चपेटा हाथ में आते जाते हैं उन सबको उछालते हुये नीचे के चपेटा लेतीं जातीं है। अन्त में सभी चपेटा हाथ में आ जाते हैं तो सबको उछालकर "नक्को–थप्पो" लेतीं हैं।

फिर 'बजनी' और 'गैर बजनी' की जाती है इसमें चपेटे जमीन में फैलाकर एक चपेटा उठाकर उछालकर नीचे से एक–एक चपेटे उठाये जाते हैं ध्यान रहे कि नीचे से उठाया गया चपेटा ऊपर उछाले गये चपेटे से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करे अर्थात् बजे। यदि वह नहीं बजा तो बाजी चली जायेगी। इस प्रकार नौ बार करके नक्को–थप्पो लेते हैं। इसमें भी चपेटों का बजना अनिवार्य है। अब 'गैर बजनी' होती है जो बजनी के बिल्कुल विपरीत होती है। अर्थात इसमें वे दोनों चपेटा परस्पर टकराने न चाहिये। यदि वे बज गये तो बाजी छिन गई। फिर "नक्को–थप्पो" भी बिना बजे ही लेना पड़ती है।

इसके बाद 'डिबिया लगाना' और 'खोलना' है। इसके लिये नौ चपेटे जमीन में फैलाकर कोई एक चपेटा उठाकर उसे उछालकर नीचे पड़े एक–एक चपेटे उठाते हुये बाँयें हाथ में रखकर तथा दायां हाथ ऊपर से रखकर 'डिबिया बन्द' करने की मुद्रा प्रदर्शित की जाती है। नौ बार ऐसा करने के बाद "नक्को–थप्पो" भी इसी प्रकार डिबिया बंद करने के संकेत से ही लिया जाता है। डिबिया खोलने में इसी प्रकार लिया जाता है अन्तर केवल यह है कि दायें हाथ का चपेटा बायें हाथ में रखकर दायाँ हाथ इस पर पलटकर (पहुँचे के बल पर) रखते हैं। इस प्रकार नौ बार करके ऐसे ही "नक्को–थप्पो" करते है।

अब 'नीबू चूसने' की बारी आती है। सभी चपेटे फैलाकर कोई चपेटा उछालकर एक–एक को जल्दी–जल्दी उठाकर उसे होंठों के पास से जाकर चूमते हुए रखा जाता है इसे ही नीबू चूसना कहते हैं। नक्को–थप्पो भी ऐसे ही लेते हैं। फिर नौ बार 'फर्रन' किये जाते हैं अर्थात सभी चपेटा जमीन मे डालकर कोई एक चपेटा उठाकर उछाला जाता है और नीचे का चपेटा उठाया जाता है, अब इन्हीं दो चपेटों को उछालकर तीसरा चपेटा जमीन से उठाते हैं। उछाले गये इन दो चपेटों में से एक दायें हांथ में और एक बायें हांथ में लेते हैं बाद में "नक्को–थप्पो" भी इसी तरह लेते हैं।

"कुंए में पानी भरने" का खेल भी अनूठा है। इसमें लड़कियां इस प्रकार बैठती हैं कि दोनों पैरों के तलवे एक दूसरे से जुड़ जायें। ऐसा करने से दोनों तलवों के बीचों बीच में (तलवों की गहराई से) कुछ जगह खाली रह जाती है उसे कुवाँ मान कर आठ चपेटे कुवें के चारों ओर (पैर पर) रखती हैं फिर बारी–बारी से एक चपेटे को उछाल–उछालकर पैर पर रखे हुये एक–एक चपेटे को कुयें में गिराती हैं। जब सारे चपेटे कुये में गिर जाते हैं। अब वे उसी एक चपेटे को उछालकर जमीन पर पड़े सभी चपेटे एक बार में ही ले लेती हैं। फिर "नक्को–थप्पो" करती हैं।

अब 'सूप फटकने' की प्रक्रिया होती है। इसके लिये नौ चपेटों को हाथ में लेते हैं दोनो हाथों की अंजलि से चपेटे इस प्रकार उछाले जाते हैं कि वे उल्टे हाथ में बाएं हाथ की हथेली और दायें हाथ के पंहुचे पर आ जाते हैं। नौ बार इस प्रकार करने पर "नक्को–थप्पो" भी ऐसे ही लेते हैं।

"रोटी बनाना" भी इसी खेल का एक अंग है। इसके लिये लड़कियां दो चपेटे एक पंक्ति में रखतीं है। उनके पीछे तीसरा चपेटा इस प्रकार रखती हैं कि दोनों जुड़ जायें अर्थात चूल्हेनुमा आकृति बनातीं हैं। इसी प्रकार इससे लगभग एक बालिश्त की दूरी पर एक ओर चूल्हा बनाती हैं। दोनों चूल्हों के ऊपर एक चपेटा रखती हैं। जिसे तवा माना जाता है। अब वे दोनों चूल्हों के आगे नौ बार एक ही चपेटा उछालकर जल्दी से रोटी बेलने का अभिनय करके उसे उछालकर लेतीं जातीं है और "नक्को–थप्पो" भी ऐसे ही लेतीं है फिर दोनों चूल्हों के तवों पर रोटी डालने का अभिनय करतीं हुई वे नौ बार चपेटा उछालतीं है और अन्त में यही चपेटा उछालकर दोनों चूल्हों अर्थात सभी चपेटों को उठा लेतीं हैं और "नक्को–थप्पो" लेती हैं।

अन्त में 'पंगत' होती है। इसमें वे आठ चपेटों की पंक्ति थोड़ी–थोड़ी दूर पर रख देती है। 'लेओ भाई पातर' यह कहतीं हुई वे आठ बार एक चपेटा उछालकर लेतीं जाती हैं, और दायें हाथ से ही पत्तल परोसने का आठों बार अभिनय करतीं जातीं है। फिर 'लेओ भाई दोना', 'लेओ भाई कड़ी', 'लेओ भाई दार', 'ले लो भाई भात', ले लो भाई पापर, ले लो भाई बरा, ले लो भाई मंगोरा, ले लो भाई रोटी, 'ले लो भाई चटनी', 'ले लो भाई अचार', 'ले लो भाई पानी', आदि आठ–आठ बार कहती हुई चपेटा उछालती हुई

अलंकरण हैं और मरने के बाद भी ये चिन्ह शरीर के साथ जाते हैं। जनजातियों की इस धारणा के कारण गुदने उनके शरीर के लिए अनिवार्य हो गये हैं। गुदनों के प्रति ललक जनजातीय महिलाओं के मन में बचपन से ही जाग जाती है। पांच या सात वर्ष की उम्र से ही लड़कियां गुदने गुदवाना आरम्भ कर देती हैं। मृत्यु के बाद परलोक में इन गुदनों में निहित जादू और लोक विश्वास आत्मा के साथ जाकर न सिर्फ उसकी रक्षा करते हैं, वरन अलंकरणों के द्वारा इस लोक में भी उनके सौन्दर्य को बढ़ाते हैं।

सभी जनजातियों के गुदने और उनके उद्देश्य समान नहीं होते । गोधिया जनजाति में गुदने जीवन के अनेक उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। ये सौन्दर्य वृद्धि के साधन होने के साथ ही ये शरीर की रक्षा भी करते हैं। ये सुहाग के चिन्ह भी हैं और भूत–प्रेतों से रक्षा करने वाला कवच भी । शरीर के कुछ गुदने भयानक जंगलों में विषैले जीव–जंतुओं और खूंखार हिंसक पशुओं से भी बचाते हैं। कभी–कभी तो नवजात शिशु के दीर्घायु होने के कामना के लिए संवर से निकलते ही उसे गुदवा दिया जाता है। इनमें प्रेम और सम्मान का प्रदर्शन करने के लिए भी गुदना एक माध्यम है। गुदना गुदवाने का कार्य बचपन से ही आरम्भ हो जाता है। सामान्यतया पांच–छः वर्ष की अवस्था में, सावन के महीने में लड़कियों को ग्रामीण मेले में ले जाकर गुदने गुदवाते हैं। कभी–कभी गोदने वाले इनके डेरों पर भी आ जाते हैं। मोधिया स्त्रियां विवाह पूर्व अपने मस्तक पर एक बून्दा या फूल, नाक पर तीन बून्दें, गाल और ठोढ़ी पर एक–एक बून्दा तथा आंखों के ऊपर फूल–पत्ती की बेल, कोरों पर तीन–तीन लकीरों की कनपटी गुदवाती हैं। इनके कानों पर फूल तथा कानों के पीछे पांच लकीरें भी गोदी जाती है। मोधिया स्त्रियां दोनों हाथों में, अंगुली की पोर से कंधे तक गुदने गुदवाती हैं। ये अंगुलियों में अंगूठियां अथवा पत्तेदार बेल तथा हथेली के पीछे पान गुदवाती हैं। इसके साथ ही कलाई पर कड़ा एवं कलाई से कंधे के बीच परी, फूल–पत्तियों की बेल या केवल फूल, विभिन्न प्रकार के पक्षी, चिड़िया, तोता, मैना, मोर, सांप, मछली आदि के गुदने गुदवाती हैं। इनमें परी केवल सीधे हाथ पर तथा मछली एवं पक्षी कलाई से कोहनी के मध्य ही गोदे जा सकते हैं। बिच्छू तथा मछली अंगूठे के पिछले भाग पर अविा हथेली के पीछे गुदवाना अच्छा माना जाता है। मोधियों में विवाह के तुरन्त बाद अथवा पहले सावन में सुहाग चिन्ह के रूप में प्रत्येक स्त्री सीने के मध्य भाग में, दोनों स्तनों के बीच चौक के आकार का गुदना (कलश चौघड़ा) अवश्य गुदवाती हैं। इसे ये विशेष महत्व देती हैं। गुदने में अरूचि रखने वाली अथवा बहुत कम गुदने गुदवाने वाली स्त्रियां भी इस सुहाग चिन्ह को अवश्य गुदवाती हैं।

बैगा जनजाति संसार में सबसे अधिक गुदना प्रिय है। बैगा स्त्रियां गुदना को स्वर्गिक अलंकरण मानती हैं। शरीर का कोई ऐसा हिस्सा नहीं होता जहाँ बैगा स्त्रियां गुदना न गुदवाती हों। बैगा स्त्रियों की मान्यता है कि स्वर्ग में ये गुदने ही बैगाओं की पहचान कायम करते हैं। यदि कोई स्त्री धरती पर गुदना नहीं गुदवाती है तो भगवान के सामने उसे सब्बल से गुदना गुदवा पड़ता है। बैगाओं में गुदना की सामाजिक मान्यता भी कम न है। इनमें गुदना गुदवाने वाली स्त्री का समाज में सम्मान जाता है एवं अधिक गुदनारी स्त्री का ससुराल में भी वि सम्मान होता है। गुदना न गुदवाना परिवार की निर्धनता प्रतीक है। गुदना गुदवाना बैगा स्त्री का धर्म है। उसके शरीर शोभा है। बैगा जनजाति में आठ वर्ष की आयु में लड़कियां गुद गुदवाना आरम्भ करती हैं और विवाह के बाद तक गुदवाती रह हैं। बैगा स्त्रियों में शरीर के सारे गुदने एक साथ नहीं गुदव जाते । इनमें सबसे पहले कपाल पर गुदने गुदवाये जाते हैं, फि पीठ, जांघ और अन्त में छाती पर गुदना गुदवाया जाता है बैगाओं में बरसात को छोड़कर किसी भी मौसम में गुदने गुदव जा सकते हैं यदि कोई लड़की गुदना गुदवा रही हो तो उ समय लड़कों और पुरूषों का वहां जाना निषिद्ध होता है। इन विश्वास है कि पुरुष किसी स्त्री को गुदना गुदवाता देख ले उसे अच्छा शिकार नहीं मिलता। बैगा स्त्रियां बादी जाति स्त्रियों से गुदने गुदवाती हैं। बैगा जनजाति में गुदना स्त्रियों अलंकरण तो है ही, इनका शरीर पर भी प्रभाव पड़ता है। बैगा का विश्वास है कि गुदनों के कारण स्त्रियों को बादी की बीम नहीं होती, जहर का प्रभाव नहीं पड़ता एवं बीमारियों से लड़ने क्षमता बढ़ जाती है। बैगा स्त्रियां मशीन से गुदना कभी न गुदवातीं।

गुदनों का कोरकू समाज में विशिष्ट स्थान है। इनमें पवित्र माना जाता है। कोरकू स्त्रियों के लिए गुदना गुदव अत्यन्त आवश्यक है। सामान्यतया ये पांच वर्ष की आयु से गुदना गुदवाना आरम्भ कर देती हैं तथा विवाह के पूर्व तक इ शरीर का अधिकांश भाग गुद चुका होता है। सौन्दर्यवान अधिक आकर्षक दिखने के लिए कोरकू स्त्रियां कुँवारेपन से अपने शरीर के विभिन्न अंगों पर विभिन्न प्रकार के गुदने गुद हैं। ये मस्तक पर अंग्रेजी के 'एम' के आधार का गुदना गुद हैं, जिसमें ऊपर नीचे बूंदा होते हैं। ये नाक के दोनों एक–एक बून्दा, दोनों गालों पर एक–एक बून्दा तथा ठोढ़ी तीन से पांच बून्दे गुदवाती हैं। कोरकू स्त्रियां दोनों हाथ हथेलियों के पीछे बून्दा और रेखाओं से बने चौक, भुजाओं बून्दा, सांकल, त्रिकोण तथा आड़ी–तिरछी रेखाओं से आकृतियाँ गुदवाती हैं। ये अपनी जाँघों एवं पूरे पैरों पर वि प्रकार के फूल–पत्ती, लतायें, बेलें, चौक तथा बून्दों से ब अनेक प्रकार की आकृतियां गुदवाती हैं।

भीलों के शरीर के विविध अंगों पर गुदने गुदवा रिवाज है। पुराने समय में घर की वृद्ध महिलाएं गर्मी के बिंया तथा बालोर के रस द्वारा बबूल के कांटे या सुई से गु के शरीर का स्थायी श्रृंगार करती थीं। भील बालाएं कनप चिरल्या, माथे पर टिपका, दोनों गालों पर तीन–तीन दाण पर बायीं ओर तीन दाणा, ठोढ़ी पर नौ दाणे, मस्तक पर

लेकर इक्कीस दाणे, छाती पर आम्बा, आम्बा गौर भुजाओं पर हरज्योघोणी, छितरा, खजूर, वाकडेल्यो, हाथ के पोहचे पर चौक, कट्टावरी, मोर फुलड़ो, बावड़ी, बांबियो आदि की सुन्दर आकृतियां गुदवाती हैं।

देवार स्त्रियां अपने शरीर के विभिन्न अंगों पर अनेक प्रकार के गुदने गुदवाती हैं। वे स्वयं इस कला में दक्ष हैं एवं अपनी जाति के अलावा अन्य जनजातियों एवं जातियों की स्त्रियां गुदना गोदते तथा गुदवाते समय गीत भी गाती हैं। ये अपने अंगों पर भिन्न–भिन्न आकृतियों के गुदने गुदवाती हैं, जिनमें ज्यामितीय आकारों में अनेक किस्म के वृक्ष, फूल, पत्तियां, पशु आकृतियां, मधुमक्खियां, बिच्छू, सर्प, मन्दिर, तालाब, चौक, सूर्य, चन्द्रमा, टोटम आदि प्रमुख हैं। गुदना गोदने वाली देवार स्त्रियों का अन्य जातियों एवं जनजातियों के गुदनों से सम्बन्धित ज्ञान विलक्षण हैं। कौन सी जाति की स्त्रियां किन–किन अंगों पर किन–किन आशय चिन्हों को गुदवाती हैं? इस जानकारी के मामलों में ये जीवित कोश हैं। इन्हें गोदनों से संबंधित विभिन्न जनजातियों में प्रचलित मिथक एवं उनसे सम्बन्धित लोक विश्वासों का भी विस्तृत ज्ञान होता है।

पाताल कोट की भारिया जनजाति में भी लड़कियां पांच–सात वर्ष की अवस्था से गुदने गुदवाना आरम्भ कर देती हैं। इनमें गोदने वाली स्त्रियां दूसरी जाति की होती हैं। भारिया स्त्रियां ओझा जाति की स्त्रियों से गुदने गुदवाती हैं। इनमें सामान्यतया परम्परागत ढंग से, सुई और काजल की सहायता से गुदना गोदा जाता है। इनके हाथ के गुदने बड़े कलात्मक होते हैं। ये दोनों हाथें पर मोर, घोड़ा, कँास, इमली का पत्ता, फूल और विभिन्न प्रकार की आकृतियों के बिच्छू गुदवाती हैं। 'धंधा' के नाम से प्रचलित गुदने का इनमें विशेष महत्व है। इसमें छः बिन्दुओं को एक ही रेखा में बड़े रहस्यमय ढंग से जोड़ा जाता है। इन बिन्दुओं में एक मनुष्य का सम्पूर्ण शारीरिक आभास सांकेतिक रूप से होता है। जैसे एक बिन्दु का सिर, दूसरे का शरीर, दो बिन्दुओं के हाथ, शेष दो बिन्दुओं के पांव। इस धंधा का खुलासा भी भारिया महिलायें अपने ढंग से करती हैं। वे लड़की के होने वाले पति का संकेत इन बिन्दुओं में मानती हैं।

राजस्थान की घुमन्तू जनजाति गड़िया लोहारों में गुदनां जीवन का आवश्यक अंग है। इनकी स्त्रियां मस्तक पर फूल बूंदा, ओम या चांद, आंख की कारों पर कनपटी, नाक, गाल, ठोढी पर एक–एक बून्दा गुदवाती हैं। ये गले पर हार की तरह तीन या पांच पुतरिया, भुजाओं पर बजुल्ला, पहुंचों पर सीतारोसाई तथा कलाई पर मोर, मछली बिच्छू व भिन्न प्रकार के फूल गमले आदि के गुदने गुदवाती हैं। इनमें ओम हथेली के पीछे भी गोदा जा सकता है। ये पेट पर नामी के दोनों ओर अलग–अलग प्रकार के जेवर तथा पूरी पिण्डली पर फूल–पत्तियां गुदवाती हैं।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है; किन्तु ऐसा लगता है कि जनजातियों के गुदने इससे प्रभावित नहीं हुए हैं। इनमें आज भी लड़कियां चार–पांच वर्ष की अवस्था से गुदने गुदवाना आरम्भ कर देती हैं और विवाह के पूर्व शरीर का अधिकांश भाग गुदवा लेती हैं। इनमें गुदने से सम्बन्धित अनेक कठोर नियम भी है यदि कोई स्त्री किसी नये ढंग का गुदना गुदवा ले या कोई निषिद्ध गुदना गुदवाये तो तुरन्त जनजाति पंचायत बैठ जाती है। इस पंचायत में सामान्यतया गुदना मिटाने का दण्ड दिया जाता है। इसी प्रकार यदि कोई स्त्री अपने शरीर पर किसे ऐसे व्यक्ति का नाम गुदवा ले, जो वर्जित हो तो उस स्त्री की बहुत बदनामी होती है तथा जनजातीय पंचायत उसे कठोर दण्ड देती है।

- 100, *पंचशील नगर, सिविल लाइन्स,*
दतिया (म०प्र०) 475 661

हम मन खां रंग दैबी...

- *लल्लूमल चौरसिया*

तुमने देखी न संसारी, का जानो लाचारी।
छिन छिन घूंट लहू की पीकें, जिये बिचारी नारी।।
देह धरें सब अनुभव करकें, जुगती एक बिचारी।
रोज रेज मरबें सें अच्छो, मरबो एक दिना री।।

गुइयां हम होरी लौ रैबी, फाग खेलकें जैबी।
जीवन के सब दाग पोंछ कें, मन निर्मल कर लैबी।।
छूटैं नहीं छुटांय उमर भर, अंग–अंग रंग लैबी।
उन्ना रंगे अबैलौ सबने, हम मन खां रंग दैबी।।

बुन्देली में समृद्ध मौखिक धरोहर

-घनश्याम कश्यप

बुन्देलखण्ड की मौखिक कथन परंपरा अत्यन्त समृद्ध है। कानियां–कानातें, पहेली, बुझौअल, गारीं–फागें, सैरे–आल्हा लोगों का भरपूर मनोरंजन करते हैं। यह अलिखित निधि अब थोड़ा बहुत लिखित रूप ले रही है। फिर भी बहुत कुछ काम बाकी हैं। कोई डेढ़ सौ वर्ष हुए जब बुन्देली लोक काव्य को लिखित रूप देना शुरू कराया था, फर्रूखाबाद के कलेक्टर चाल्स इलियट ने 'आल्ह खंड' के प्रकाशन के साथ, यह समस्त उत्तरभारत में लोकप्रिय हुआ। फिर रामनरेश त्रिपाठी ने बुन्देली लोक गीत 'ग्राम गीतों' के रूप में छापे। चौथे दशक में टीकमगढ़ से निकले 'लोकवार्ता' और 'मधुकर' पत्रों ने लोक साहित्य का महत्व आंका। सागर के पंडित शिवसहाय चतुर्वेदी ने बुन्देली लोक कथाओं के कई संकलन छपवाए। गरौठा के श्री कृष्णानंद गुप्त ने बुन्देली लोकोक्तियों और शब्दों का संकलन किया। 'ईसुरी' की फागों के बड़े संग्रह झांसी और इलाहाबाद से निकले। छतरपुर से आकाशवाणी तथा 'मामुलिया' पत्रिका बुन्देली बोली और लोक साहित्य का प्रचार–प्रसार करते रहे है। इस तरह बहुत से मौखिक सामग्री लिखित रूप में सामने आई है। फिर भी गांवों में गुणीजनों के पास अपार सांसकृतिक धरोहर मौखिक संपदा के रूप में मौजूद है। जिसमें जो सांस्कृतिक तत्व निहित है। उन्हें कुछ उदाहरणों से समझा जाए। ये पंक्तियां देखिये–

–गनेश जू खों चौक पूरौ मेंदरे जू आन विराजे।

(कुपात्र का ऊँचे स्थान पर बैठ जाना)

–हौम करतन हात बर गए।

(अच्छा काम करने पर बुरा हो गया)

–कथरी कौ मुड़ारसौ बांदे, गुलाल खों बिरजे फिरें।

(दरिद्रता में सम्मान की आकांक्षा)

–कुतियां प्रागै जान लगें तौ हंडिया को चाटै।

(कुकर्मी का धर्मात्मा बनना आसान नहीं)

–जी घर में लच्छमी होत, ऊ घर के खपरा हंसत।

(सम्पन्नता छिपती नहीं)

सैकड़ों वर्षों से चली आती ऐसी कहावतों में अर्थगर्भत्व और व्यंजना का उत्कर्ष तो है ही, किन्तु गणेश लक्ष्मी जैसे पौराणिक देवों, होम–धूप, प्रयाग–यात्रा, कथरी, हंडिया, खपरा, मुड़ारसौ (साफा) आदि के उल्लेख बुन्देली लोक संस्कृति का पर्याप्त परिचय देते हैं। पुरानी पीढ़ी के विसर्जन और आधुनिकता के दबावों से ऐसी मूल्यवान लोक–सामग्री विलुप्त न हो जाए, इसलिए क्या इनका संकलन और संरक्षण आवश्यक नहीं ? ऐसे ही इन पहेलियों की बानगी पर विचार करें, जो प्राचीन प्रज्ञा और बौद्धिकता का परिचय देने में पूर्ण समर्थ हैं।

–तनुक सौ लटका थूलमथूल (मोटा) करया (कमर) धोती, माथें फूल

उत्तर –मु

–नाँय गई माँय गई, को जाने दारी कयाँए (कहां) गई।

उत्तर – पगडं

–बेला (कटोरा) भर भात, तुम ना खा पाओ, ना तुम्हारो बाप।

उत्तर – नम

–तनक सौ लरका बम्मन कौ, तिलक लगाएँ चंदन कौ।

उत्तर – उड़

–एक लइ (ली) दो फैंक दईं।

उत्तर–दात

–तनक सौ सोनों सब घर नौनौं (अच्छा)।

उत्तर – दीप

–सास–बऊ हारै (खेत) गई, लाल बटरिया गाढ़ गई।

उत्तर – आ

–सास–बऊ हारै (बाजार) गईं, चौंखरौ लटका गईं।

उत्तर–ता

–बब्बा सोवे ई घर में, पाँव पसारे ऊ घर में।

उत्तर – बेंड़ा/दीप

–अक्कल की कोठरी, बक्कल के किबार,
लाल–काले झूँमका, पानी की बहार।

उत्तर – तरबू

ऐसी पहेलियाँ बुझाते, लोक कथाऐं कहते–सुनते, ज्ञान च करते बुन्देली लोग और बाल–गोपाल ज्ञानवर्द्धन के साथ मनोरंज करते आए है। यह मौखिक सांस्कृतिक विरासत एक पीढ़ी दूस पीढ़ी को सौंपती आई है। इसका माध्यम हजारों वर्षों से वह लो भाषा रही है, जो जनता को एकता एक सूत्र में बाँधती है। इसक नाम है बुन्देली भाषा।

बुन्देली भाषा की विशेषताएँ:- यह लोक भा संस्कृत की बेटी नहीं, उसकी माँ शौरसेनी अपभ्रंश है और इसक सगी बहन है ब्रज भाषा। ईसा से 150 वर्ष पूर्व हुए पतंजलि अपभ्रंश को संस्कृत से भिन्न भाषा कहा है। भरतमुनि ने इसे शक और अभीरों की भाषा बताया था। बुन्देली भाषा पर भी यह ब लागू होती है। यह राज दरबारों या विद्वानों के शास्त्रार्थों विकसित नहीं हुई। बुन्देली तो खेतों–खलिहानों, अलावों–चौपाल हाट–बाजारों और लोकाचारों में पल–पुस कर सयानी हुई है इसकी पहचान कराता है यह भाषा–सूत्र –

नायँ मायँ औ, टक टिक टिक्का। ठाकुर धई एन चोखो सिक्क

इसमें 'टक–टिक–टिक्का' जैसे शब्द और 'ठाकुर धई' जै

वाक्यांश हैं। इससे बुन्देली का रूप सजता है। इस भाषा की प्रकृति को समझने में इन सबके प्रयोग वाले वाक्यों से सहायता मिल सकती है। देखिए बुन्देली के ये वाक्य –

–***नायँ–मायँ*** जिन भटकौ भैया।

(***इधर उधर*** मत भटको भाई)

–डूकरी, जा तुमाई बुरई ***टक*** है।

(अम्मा, यह तुम्हारी बुरी ***आदत*** है)

–लठिया दीवार से ***टिका दइ।***

(लाठी दीवार से टिका दी हैं)

–ई बात को ***टिक्का*** रखिऔ, नईं भूल जाओ

(इस बात का ***ध्यान*** रखना, नहीं भूल जाओ)

–***ठाकुर धइ,*** हम अवस्य आएँ।

(***भगवान कसम*** हम अवश्य आएँगे)

–को कत खोटो हें, ***एन चोखो सिक्का*** है।

(कौन कहता है खोटा है– ***बिलकुल चोखा सिक्का है।***)

ये वाक्य तथा ऊपर के उदाहरण बुन्देली भाषा के सभी व्याकरणीय रूपों के परिचायक भले ही न हों, पर ये ग्रामीण बोलचाल के नमूने हैं। विद्वानों ने वाक्य को भाषा की बुनियादी इकाई माना है। भर्तृहारी 'वाक्य पदीय' कृति के एक श्लोक में वाक्य का महत्व रेखांकित करते हैं।

पदे न वर्णाः विद्यन्ते वर्णेषु अवयवा न च।
वाक्यात् पदानां अत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन।।

यहाँ लेखक पदों, वर्णों और उनके अंगों को नकार कर, वाक्य को ही अभिव्यक्ति का प्रधान तत्व मानता है।

अन्य भारतीय जीवित भाषाओं की तरह बुन्देली वियोगात्मक भाषा है। इसके कारक चिन्ह मूल शब्दों से अलग रहते हैं। इसकी सरल वाक्य रचना को समझने के लिए प्रश्नोत्तर शैली की एक बाल–कथा देखिए।

बिलो काँ चलीं? हाटै। काय खों चलीं? कुमड़ा लैन। ल्याईं कैसें? ढड़काउत–ढड़काउत। पौलौ कैसें? खप्प–खप्प। चुरऔ कैसें? बदर–बदर। खाऔ कैसें? हप्प–हप्प। परौ काँ। चूले पाछें। ओड़ों का? सूप। जौ देखौ बिलो कौ रूप।

इसका अर्थ है – बिल्ली कहाँ जा रही है? बाजार को। किसलिए जा रही है? कद्दू लेने। (कद्दू) कैसे लाई है? लुढ़काते–लुढ़काते। काटा कैसे? खप्प–खप्प। पकाया कैसे? खदर–बदर। खाया कैसे? हप्प–हप्प। लेटी कहाँ? चूल्हे के पीछे। ओढ़ा क्या? सूप। वाह!री बिल्ली। वाह रे तेरा रूप!

इस छोटी सी बाल–कथा में बुन्देली भाषा की अनेक विशेषताएँ निहित हैं। इसमें कुमड़ा, पौलना, चुराना (पकाना), परना, ओढ़ना, जैसे देशज शब्द हैं। सूप अकेला संस्कृत का मूल शब्द है। बुन्देली शब्दों में 'ह' वर्ण लोप होता है जैसे कहाँ की जगह काँ, चूल्हे की जगह चूले का प्रयोग। इसी तरह कहता, रहता, पहनता के बदले कात, रात, पैरता आदि क्रियाएं बुन्देली में प्रचलित हैं। बच्चों को रिझाने वाले ध्वनि पर आधारित, खप्प–खप्प, हप्प–हप्प, जैसे शब्दों का खूब प्रयोग है। 'हाटै' शब्द देखिए इसमें कर्म कारक की 'को' विभक्ति नहीं है। इस भाषा में घरै, खेतै, स्कूलै आदि प्रयोग प्रचलित हैं। हम तुम जैसे सर्वनाम शब्दों में भी हमें, तुमें के प्रयोग होते हैं, साथ ही हम खों, तुम खों के रूप भी विकल्प की तरह चलते हैं। ऐसी अनेक रोचक बाल–कथाएं, लोक–कथाएं, लोक–गीत बुन्देली की मौखिक साहित्य संपदा को समृद्ध बनाते हैं।

भाषा की इस चर्चा में बुन्देली के शब्द भंडार पर संक्षिप्त विचार और देशज शब्दों के अलावा बुन्देली में संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी, मराठी आदि भाषाओं के शब्द समय–समय पर मिलते रहे है। और तो और तमिल शब्द 'तट्टू' और 'पर्रवें' बुन्देली में टाठी (थाली) तथा परेवा (कबूतर) के रूप में मौजूद हैं। वैदिक संस्कृत का शब्द 'वैश्वानर' उर्दू का 'शहनाई' तथा अंग्रेजी शब्द 'हारमोनियम' देखें। इनके बुन्देली रूप वैस्वान्दर, सानैयाँ तथा हरमुनिया बने। यह लोक भाषा बाहरी शब्दों को ग्रहण कर उनका सरलीकरण करते हुए उन्हें अपना भाषा संस्कार देती है। नीचे दी कहावत में 'वैश्वानर' शब्द का प्रयोग देखिए–

हमाए ना सें आग ल्याई नाव धरौ वैस्वान्दर।

इसमें एक सामान्य स्त्री संभ्रान्त नारी पर कटाक्ष करती है। वाह रे लोगों हमारी दी हुई आग को वैस्वान्दर कहते हो। बुन्देली का विकास जन सामान्य तथा सम्भ्रान्त जनों के समागम में हुआ। इसीलिए शहनाइयों और हारमोनियम के सरल रूप 'सानैयाँ' और 'हरमुनिया' के रूप में प्रचलित हुए, परन्तु इन तद्भव रूपों में नया मिठास और लोक भाषा का संस्कार विकसित हो सका। बड़े लोगों के विवाहों में भले ही वेद मंत्रों का पाठ होता है किन्तु दलितों के यहाँ जिस जीवन्त भाषा में ब्याह सम्पन्न होता है, उसका नमूना देखते ही बनता है। विवाह में सवासा (वयोवृद्ध फूफा) कहता है–

झूमक तुरैया कैसी–बैठ जा मौड़ी ऐसी,
भूरा कुमड़ा कैसौ–बैठ जा मौड़ा ऐसौ।

फिर पड़ती है सात भावरें और सवासा कहता है–

कओ पंचो, भव बियाव? उपस्थित जन कहते हैं – हव जू भऔ!

ऐसे ब्याहों में जो दैनगी दी जाती है उसका जायजा भी लीजिए–

आगौनी में मुरगा दीनों, पांव पखरई में बिल्ली।
बंद छुड़ाई में कुतिया दीनी जी की लंबी पूंछ।।

विवाह जैसे सुखद लोकाचार का पूरा उल्लास छपकता है इस सहज वाक्यावली में। बुन्देली के महाकवि 'ईसुरी' ने ऐसी ही सहज जीवन्त भाषा में लिखा है अपना अमर लोक काव्य। आनन्द लीजिए कवि की एक चौकड़िया फाग का।

सबसौं बोलो मीठी बानी। थोरी है जिंदगानी।
जेइ बानी सुरलोक पठावैं, जेई नरक निसानी।।
जेइ बानी हाती चढ़वावै, जेई उतारै पानी।।
जेई बानी सौं तरे 'ईसुरी' बड़े–बड़े मुनि ग्यानी।।

बुन्देली लोक मूल्यों की महिमाः- बुन्देली लोक मूल्यों के बारे में कहा जाता है कि यहाँ का बुन्देली जन–समाज इन्हें पूजता है। कुछ दशक पहले संपूर्ण समाज में बुन्देली मूल्यों पर आचरण होता था। तब राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ने लिखा था – अहा, ग्राम्य जीवन भी क्या है! क्यों न इसे सबका मन चाहे? आज उन मूल्यों का तेजी से क्षरण हो रहा है। पारंपरिक मर्यादाएं मिट रही हैं। बढ़ती भौतिकता नैतिकता पर हावी होती दिख रही हैं। बुन्देली समाज में उथल–पुथल है। सुख शान्ति और संतोष के सुगंधित वातावरण में हिंसा, फरेब और स्वार्थों का प्रदूषण फैल रहा है। अपवाद स्वरूप कहीं जाने वाली ये कहावतें चरितार्थ होने लगी हैं–

– साँचे तौ फांके करें औ, लाबर लड्डू खाँएं।
– बहन भली ना भैया, सबसे भलौ रुपैयो।
– सौ डंडी पै एक बुन्देलखंडी।

यह आखिरी कहावत ऐसी फैली कि इसने बुन्देलखंड की साख को भारी धक्का पहुँचाया। चंदेलों का स्वर्णयुग जब उतार पर था तो ग्यारवीं–बारवीं शताब्दियों के बीच उरई के माहिल राजा ने दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान और महोबा के परिमाल चंदेल के बीच भारी चुगलखोरी की और उन्हें खूब लड़ाया। चुगलखोर के लिए आज भी बुन्देलखंड में 'मैला डंडी' नाम प्रचलित है। यह प्रवृत्ति एक कूटनीति के रूप में ढली और शहंशाह अकबर के विरुद्ध उसके शहजादे सलीम की बगावत में ओरछा के राजा वीरसिंह बुन्देला ने सलीम का साथ दिया। इन बातों ने गरीबी में पलते बुन्देलखण्ड को खूब बदनाम किया और गरीब की जोरू सारे गांव की भौजाई बन गई।

पर इस बदनामी का मतलब यह न समझा जाए कि बुन्देलखण्ड की संस्कृति मूल्यहीनता की शिकार है। मैंने गांवों में बुन्देली वृद्धजनों को अक्सर सोने के समय यह कहते सुना है – भगवान सबको भलौ करै। लोक कल्याण और परमार्थ की य भावना महाकवि ईसुरी की फागों में मुखर है। आइए कुछ फागों के सहारे बुन्देली लोक मूल्यों की थाह लें–

दीपक दया धरम कौ जारौ, सदा रात उजियारौ।
धरम करे बिन करम खुलैना, कुंची बिना ज्यों तारौ।।
समजा चुके करें ना रइयौ, दिया तरें अंदियारौ।।
कात ईसुरी सुनलौ प्यारी, हो जै पार निवारौ।।

0 0 0

अपने समर समर पग धारौ। संसारी में यारौ।।
चलबू करे धरम कौ मारग, रामैं नाइ बिसारौ।।
बुरए काम, चुगली सें हरदम, कड़ियौ काट किनारौ।।
जौ कलजुग कौ काल 'ईसुरी', जतन जतन सें टारौ।।

0 0 0

राखे मन पंछी ना रानें। एक दिन सब खाँ जाने !
ना जे अटा अटारी अपने, ना बखरी दालानें।।
खा लो, पी लो, लै लो दै–लो, जेई लगें ठिकानें।।
कर ले धरम कछु वा दिन खों, जा दिन होत रमानें।।
'ईसुर' कात मान लो मोरी, लगी हाट उठ जानें।।

ये लोकादर्श कोरी कवि–कल्पना से उपजे मूल्य नहीं 'ईसुरी' ने बुन्देली जन–समाज में अपनी गहरी पैठ से उन्हें पर जाँचा था। प्रतिकूल परिवेश में आजीविका के लिए संघर्ष क श्रमशील बुन्देली जनों को अकाल, अतिवृष्टि और ओलावृष्टि तो प्रताड़ित किया ही है, हजारों सालों के उच्च वर्गीय, साम और साहूकारी शोषण से कामगारों को विपत्ति की आग में जल है। ऐसे परिताप में उन्हें सिद्धों, सन्तों फकीरों और खास गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस ने बड़ी सान्त्वना ढाढस बँधाया। आस्था बनाए रखा। तभी तो हर बुन्देली गृ रात–दिन काम में मरता–खटता सोचता है– राम नाम सा और भरम जार है।—

बुन्देली बोली

- जगदीश्वर

बुन्देली बोली अनमोली, भरत सबई की झोली,
ब्रज की बहन अवध की बिटिया, हिन्दी की हमजोली।
सबइ बोलियन सें करबै जा हँस–हँस, हंसी–ठिठोली,
कत 'जगदीश्वर', अब तौ जा बुन्देलखण्ड की हो ली।।

बांके बोल बुन्देली के, खनकत बिछिया अलबेली के,
पग धरतन पै परत छमाके, जैसें नार नवेली के।
कानन में मिसरी–सी घोरै, बूझै खेल पहेली के,
'जगदीश्वर' ऐसें न खेलौ, धना खेल अठखेली के।।

किस्सा अथाई की

- डॉ० के०एल० पटेल 'मनोहर'

अबुझ बुझौवा गांव के, ग्यान गठरियन देत।
मौका पै करलो कछु, चेत सकौ तौ चेत ।।

हमाये पुरखन ने पैलउं–पैल अथांय सें अथाई, चौपाटी से चौपाल शब्द बनाये हुइयें। काये सें अथाई–चौपालन में होबे बारी किसा–कहानियन में गैराई के ओर–छोर कौ तनकऊ अन्दाज लौनई लगत। उनमें चारऊ बेदन कैंसी गैरी सीख मिलतईं, ऐई के संगै संसार–सागर के खट्टे–मीठे सबक अथाई चौपालन के मदरसन में सुनबे–गुनबे को मौका सोऊ मिलत। पुरानें जमाने सें नदिया–नारन के आस–पास, हारन–पहान के बीचऊँ–बीच, हलके–बड़े गांव–गौंड़न, पुरवा–पालन, कुआं–कंछवारन में रचो–बसो हमाऔ, प्यारौ 'बुन्देलखण्ड' अपने मूल–मुलक के राजा–रजवारन की, उनके तीर–तरवारन की, हजारन पुरानी यादें अहानन कहानन के बहाने अपने पुरखन की थाती अपनी छाती सें लगायें अबेलौ जैंव की तैंव सोरऊ चोखी की चोंखी नसल में बचाये आओ। हमाये गांव–गौंड़न के रिबैया अपढ़ा भइया। अपने लोक की अमीरी–गरीबी, खेती–बारी, तीज–तेभार, औसर–काज, रैबो–सैबो, खैबो–पीबो, पैरबो–ओढ़बो, बोलबो–चालबो, आबो–जैबो, आव–भगत, भजन–पूजन, गुजर–बसर, पाप–पुन्न, लोक–लाज, दान–दच्छना के अहाने–कहाने अथाई–चौपालन में जेठे–स्यानन के मौं से सुन–सीख के अपने दादन–परदादन के ख्यालन कौ खजानों (लोक साहित्य) अबैलौ अमरौती सी खांय चलो आओ।

अब तौ जौ नई–नई किसम (फैसन) कौ दिखनौस, ठनगनया, घिनौनों, बेलिहाज परदेसी चलन कौ चकाचौंद भरो तिलमिलाऊ कालकूट कैसो जीहरीलो असर हमाये मूल–मुलक की बापौती के ऊपर पिरलय कैंसौ सत्यानासी खतरा एकदम सें मड़रान लगो। ईसे हमाव सबई कछु गुरमाटी भओ जा रओ। अबतौ हमें कछु भ्यासन लगो कै हमाव अपनौ कहाबे बारौ सब कौ सब हमाये सामू हमाये बीच से हमेसई के लाने अलोप न हो जाबै। येई अंदेसे के कारन गांव–गोड़न से जुरे अपने भइया–बेनन, मौड़ी–मौड़न खाँ हम कछु संदेसे दैबो चाउत, कै वे बनबूडे कैसी लफंगू फिलमन की नंगी, उगारी दुनिया के "ईलू–ईलू" की हवा–हिलोरन में परकें अपनी जिंदगानी नोने के बरबाद न करकें अथाई–चौपालन में होबे वारी किसा– कहानी, अहाने–कहाने, देहातन के अनपढ़, कक्कन–बब्बन से सुनबें–सीखबें, लिखबें फिर उनकौ मतलब समझवें। ईके बाद अपने मूल–मुलक के लाने कछु करें–धरें। ऐसौ करबे बारन कौ नांव सबरी सिंसारी में अमर सोऊ हो जैहैं। काये सें अब ऐसौ करबो हमाये लाने भैतऊं जरूरी हो गओ।

सुनौ कहानी गांव की, गूढ़ ग्यान की खान।
इने समझके फिर करौ, पुरखन की पहचान।।

हमायी अथाई–चौपालन में ऊसें तौ भांत–भात की बाते–चीतें कैबे–सुनबे मिलतई हैं। अकेलें जब किसा–कानोतन कौ भरवा–भूत सवार हो जात, तौ फिर किबैयन–सुनैयन खाँ हूंका–टहूंका की किसन कौ ऐसौ सुरौदो लगत कै कभऊँ–कभऊँ तो भुनसारे को कुकरा की बिरियां लौ किस्सन के समुंदर में किबैया–सुनैया इतनी गैराई लौ डूब जात, कै फिर उनें किस्सन के सिवाय कछू लौ नईं सुहात।

अथाइयन में दो भांत की किसायें कैबे कौ चलन भौतऊ पुरानौ है। पैली हूंकाबारी किसा औ दूसरी टहूकाबारी। हूँकाबारी कौनऊ–कौनऊ किसायें अधरतू औ सबरत् सुनबे हां खूबई मिलती रई। टहुकाबारी किसाएं हलकी–हलकी चुटकुलयाऊ कबतन घाई, गागर में सागर भरवे बारी अक्कल की बक्कल उदेरबे में कौनउं तरा की कोर–कसर नईं छोड़ती इनई किस्सन, खाँ कोउ अटकौवल, कोउ भटकौवल, कोउ जनौवल, कोउ बुझौवल, कोउ उरझौवल, कोउ बतौबल के नांव के खूबई जानत हैं। इनमें कछू भीतरी फरक सोऊ है, जीकी चरचा अलग सें करने पर है। इतै हम एई किस्सन की तनक सी झलकें दओ–चाउत, जीसें सहरन में रैके लम्बी–चौंरी झब्ले मारवे बारे ज्ञानियन–ध्यानियन की थोरी–भौत आंखें खुल जाबैं।

दिन भर हारन–पहारन, कुआं–कछवाहरन के काम–धंधन के थके–मांदें कछु लरका–बारे, जेठें–स्याने अथय की उसार–ग्वासली से फुरसते भये, ब्यारी करी फिर किस्सन के किबैयन–सुनैयन कौ एक जांगा जमारौ जुरन लगत। एक जनो किसा कान लगत, दूसरौ ऊकौ ज्वाबं दैन लगत। अपने बचपन–लरकपन में ढोर–बछेरू चराउत बेरां, खेती–बारी कौ काम करती बेरां सुनी–सीखी किस्सन में जित्तीं यादरईं, उनई में से कछू हम इतै दैरये, जीसैं हमाये जैसे दूसरे जनन खां कछू करबे की सुमी जरूरई लगै।

1. एक लई दो फैंक दई। (दतौन)
2. तोरे मौमें देहौं तोरे आये–गये के मौंमें दैहौं। (गड़ई)
3. एक लरका की टेढ़ी नाक। (चना)
4. एक लरका के कछू नइयां। (बटरा)
5. एक लरका हार में करया बांदे डरो। (चारे की पूरा)
6. एक लरका कौ पेट फटो। (गौहू)
7. एक लरका ने अंदयायी से छेर भरो। (पोता)
8. अंधयारे घर में ऊंट बलबलाय। (जातौ)
9. जब सें परी तब सें उठी नइयां। (धरती)
10. जबसे धुसी तबसे निकरी नैयां। (गाज)
11. जबसें टंगो तबसें गिरौ नइयां। (बादर)
12. नांय गयीं मांय गई लाल बीजा गाड़ गईं। (आग)
13. ठांड़े तौ ठाड़े, बैठे तो ठांड़े। (सींग)
14. नांय गईं माय गईं मैदरौ सौ टांग गईं। (तारौ)
15. जबई बताई जबई जान जाव। (जबा)
16. एक लरका बम्मन कौ, तिलक लगायें चंदन कौ। (उरदा)

17. बली कौ लरका खूब बली, खपरा फोरै करै गली। (धुआं)
18. एक डबला कुदई भरो, बऊ से पूछौ कां धरौ। (भटा)
19. एक अचंभौ सुनो सुजान, तरें मेड़ी ऊपर खरयान। (सिंगारी कौ छतिया)
20. तनक सी दुकिया दुक–दुक करै, लाख टका कौ काम करै। (सुई)
21. कारी कुत्तू झब्बे कान, चलरी कुत्तू लुच्चू खान। (करैया)
22. चार खूंट कौ जरयानौ, ऊमे परो कोऊ गुड़यानो। (खटोली)
23. आठ कुलारी नौ तरबारें, तऊं न कटें गजबेल की डारें। (परछाईं)
24. तनक सौ सोनो, सब घर नौनौ, भग गओ सोनो मिट गओ नौनौ। (दिया)
25. चार पांवने चार लुचई, एक के मौं में दो–दो दईं। (खटोली)
26. जब से बिछुरे तबसे मिले नइया। (सूरज–चांद)
27. गेर–गेर बारी लगी बीच में कुंआ।
सेत रंग ओरौ सो मूत गओ सुआ। (मौवा)
28. चार बैलवा चार ठठेरे, एक–एक के मौंमे दो–दो घुसेरे। (खटोली)
29. कक्का कयें जुरैना, बब्बा कये जुर जाय। (ओंठ)
30. कटोरा के भीतर कटोरा, बेटा बाप से गोरा। (नारियल)
31. हम गड़े तुम टंगे बजारै कबै चलौ। (आलू–भटा)
32. तनक सी सुज्जो गजभर पूंछ।
ना जाने तौ बऊ से पूंछ।। (सुई)
33. हमें लगादो तुम सो जाव। (किवारे–सांकर)
34. कारे पहार पै रकत कौ बूंदा। (घुन्चू)
35. पांच जनी पौचाबे जांय, घाटी उतर अकेलौ जाय। (कौर)
36. गली–गली दौ सोते जांय, घैरा घूंसा करती जांय। (पनैंया)
37. अन्न खांय न पानी पियें, ठांड़े हिन्ना चूं–चूं करे। (किबारे)
38. नाय तक्का मांय तक्का, बीचऊंबीच लम्बे कक्का। (बेड़ा)
39. एक रूख लदर–बदर फरो, ऊके नेंचे समुंदर भरौ। (सिंगारौ)
40. एक पेड़ ऐसौ बरयानों, तरे सेत ऊपर हरयानौ। (मूरा)
41. नीर–छीर की उठे हिलोरें बोले हाँ–हू बानी।
भरे कुआ में बुड़की देबै और मुगाबै पानी।। (नैनू कौलोंदा)
42. टेढ़ी मेढ़ी बांसुरी बजावे बारौ को।
सीता चली मांयके लौटाबे बारौ को।। (नदिया)
43. एक पहार पै बैल दलांकै। (कुलरिया)
44. तीन नेत्र शंकर नहीं, दूध देत नहिं गाय।
पेड़ चढ़ो पंछी नहीं, ईकौ अरथ लगाय।। (नारियल)
45. लम्पा से हांत गौड़े, सूते सी करयाई।
मूंछन पै हाथ फैरे, सांवरौ सिपाई।। (चीटा)
46. झट नाहाँ झट माँहाँ, छै गोड़े दो बांहां।
पीठ के ऊपर पूछ लटकै, जौ तमासौ काँहाँ। (तखरिया)
47. तीन पांव धरनी धरै, एक धरै अम्बार।
बिन बादर बिन मेघ के, गिरै मूसलाधार।। (कुत्ता)
48. सुआ परेवा किलकिला, संग बगलन की नार।
पिया बजारै जात हो, चीजें लइयो चार।। (पान)
49. बर मांगन बरसें गई, वर मांगे हैं दोय।
बर पाये बेवर भई, जानत है सब कोय।। (कैकई–दशरथ
50. दिल्ली देखी बम्बई देखी, फिर देखो कलकत्ता।
ऐसौ पेड़ कबहुँ ना देखो, फल के ऊपर पत्ता। (सिंगारे
51. जुद्ध करत ते दो जने, देखत ती एक नार।
जिनके नैना चाइये, दो हजार औ चार। (कालियानाग, कृष्ण, नागिन
52. एकई बखरी एकई गांव, दो बिटियन कौ एकई नांव।
मिले जुरै कौ रै गओ पेट, दोनों के भओ लरका एक।। (छिपन
53. बाप बेटा कौ एकई नांव, मताई कौ और।
ई कौ अरथ बताइयौ, फिर टौरियौ कौर।। (मऊव
54. पन्द्रा आये पावने, बरा बनाओ एक।
सबखाँ परसो आदौ–आदौ, दूल्हे परसो एक।। (पखवाड़ा, चांद
55. तनक सी न मनक सी हरदी कैसी बाम।
चट्ट चूमा ले गई हाय मोरे राम।। (बरैय
56. फरै न फूलै लगै न डार।
जीखाँ खावै सब संसार।। (नौंन
57. धरौ–धरौ धुधकत अदबरो।
ओई के भीतर पानू भरो।। (हुक्का
58. आंखन देखी भौंसे खाई।
चीखी हो तो राम दुहाई।। (खाई–खदर
59. कारी पौनी सेत तगा।
भइया ईको अर्थ लगा।। (छिरिया या भैंस को थन
60. कारे पहार पै गलगल ब्यानी, ऊकी तेली बड़ी मिठानी। (शहद
61. फंदी कंदा पै खालें डाटें। ओई खां पैरें ओई खां काटे।। (कुलरिय
62. बिरछा ठांडो हार में, नर–पंछी सब खांय।
बाप घुसो है पेट में, पूत बराते जाय।। (खजरी के खब
63. लम्ब पूंछ बड़दन्त है, लंक बिनासन कीन।
रामायन में है नहीं, हनुमान ना चीन।। (पच
64. तुला–तुला कौ बैर है, कुंभ कौ लै गओ चोर। (राम–रावण, सीत
65. जबलौ रई मैं भोरी–भारी, तबलौ सै लई मार।
जबसें पैरी लाल घंघरिया, अबना सैहों मार।। (गगरी

हमाये गांव–गौड़न के जेठे–स्याने जिनें करिया अच्छर भैं बराबर रओ, उनके मौं से ऐसी किसा–कहानी अगर समेट के जुटा जाबैं तो हजारन लाखन से कम न हुइयें। इने इखट्टौ करकें अच्छे खासे बड़े–बड़े पोथन्ना बनाये जा सकत। अगर जल्दी सें जल्दी इ खां बटोरबे को काम नईं करो, तो कछू दिनन में सारी दुनियां हम लोगन के बारे में जेऊ कै है, कै –

का बरसा जब कृषि सुखानें। समय चूक पुनि का बछतानें।।

3/8, प्रोफैसर्स कॉलोनी, छतरपु

केन किनारे लोक कला और लोक संगीत

- राहुल मिश्र

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड गौरवशाली अतीत अद्वितीय लोक कला, अनूठी लोक संस्कृति व संगीत के लिए विख्यात है। यद्यपि मोटे तौर पर देखा जाए तो सारे बुन्देलखण्ड में लगभग एक सी तहजीब नजर आती है, लेकिन अलग–अलग अंचलों में बुन्देलखण्ड के अलग–अलग रंग देखने को मिलते हैं। विद्या निवास मिश्र ने अपनी पुस्तक नदी, नारी और संस्कृति में सही ही लिखा है कि नदी संस्कृति पर अपना प्रभाव छोड़ती है, और इसीलिए अलग–अलग स्थानों पर नदियों के किनारे शहरों व गांवों की अलग ही तहजीबें होती हैं। बुन्देलखण्ड के लिए यह बात अक्सर ही कही जाती है कि पुराना बुन्देलखण्डी शौर्य अब ददुआई में बदल गया है लेकिन समूचे बुन्देलखण्ड के बजाए चंद्रावल, केन और यमुना नदी के बीच का असमतल, नदी नालों और जंगलों वाला तिरहार क्षेत्र इस बात की सार्थकता को लगभग स्पष्ट ही करता है, क्योंकि यह क्षेत्र हमेशा से ही अपनी प्राकृतिक बनावट के कारण डाकुओं की शरण स्थली रहा है। आज भी स्वयं के बारे में ऐसी ही डाकू प्रभावित क्षेत्र वाली मानसिकता का शिकार भले ही इस क्षेत्र में कुख्याति प्राप्त हो लेकिन जिस तरह से यहां बुंदेलखण्ड और खासकर बांदा जनपद की पहचान, संस्कृति, सभ्यता, कला और संगीत सुरक्षित रहे हैं, वह किसी से छुपा नहीं है। आज भी चाहे वह तुलसी का रामचरित मानस हो, जगनिक का आल्हा हो या चंदवरदायी का पृथ्वीराज रासो हो या बुंदेलखण्ड के परम्परागत लोकगीत हो अपनी अलग छाप लिए लोगों के बीच सुरक्षित हैं।

इस क्षेत्र के लोग चाहे ब्राम्हण हों, ठाकुर, वैश्य, धोबी, चमार, काछी या केवट हों, सबके बीच तुलसी के मानस की वह अहमियत है, जो विरासत में मिली किसी अनमोल वस्तु की होती है, और यही कारण है कि चाहे वह प्रातः का समय हो, दोपहर हो, शाम हो या डिब्बी की ढिमिरीमाटी लौ हो; राम चरित मानस में अपने जीवन का लक्ष्य, जीवन की संवेदनाएं, जीवन का संगीत जीवन की कला और जीवन की संस्कृति तलाशते राम चरित मानस की चौपाइयों को जोर–जोर से पढ़ते हर घर और चौपाल में बच्चे, बूढ़े, औरतें, अमीर, गरीब, अनपढ़ सुशिक्षित, उच्च वर्गीय या निम्न वर्णी अवश्य ही मिल जाएंगे। रामचरित मानस के प्रति यही भाव है जिसके कारण इस क्षेत्र के किसी भी मेले या पर्व पर रामलीला अवश्य होती है, बुन्देलखण्डी तरीके से नहीं वरन् नौटंकी की विधि से होने वाली राम लीला का विशेष आकर्षण रहता है।

चूंकि यह क्षेत्र केवट बाहुल्य क्षेत्र है, इसलिए केवटों के द्वारा नाव में गाए जाने वाले मांझी गीत भी विशेष महत्व के होते हैं। इस क्षेत्र की अपनी अलग भाषा तिरहारी में अलग–अलग अवसरों में अलग–अलग गीत प्रस्तुत किए जातें है। सांस्कारिक गीतों की श्रेणी में बच्चे के जन्म के समय से लेकर, चंगोलया, मुण्डन, कनछेदन, विवाह आदि, दैनिक जीवन के गीत, भजन, राधेश्याम, रामायण, मल्हार, लमटेरा, दिवारी, फाग आदि के गीत तिरहारी भाषा में गाए जाते हैं। परम्परागत गीतों की श्रृंखला में जांते पीसने के समय के गीत, बारह मासा, धोबी गीत, भडयांय, मामुलिया गीत और फसल बोने, काटने के समय गाए जाने वाले गीत भी विशेष महत्व के हैं। विभिन्न बिंदुओं के अंतर्गत निम्न प्रकार से इनका वर्गीकरण करके स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है–

अ- सांस्कारिक गीत :- जन्म से लेकर जीवन के विभिन्न संस्कारों के प्रतिनिधि गीत आते हैं। जैसे–
कौने लोक से आए हो रे कौने लोक का जइहौं, कौने घरै लइहौ, अवतार हो रे।

यह जन्म के समय गाया जाने वाला गीत है, जिसे बुन्देली संगीत में सोहर कहते हैं।" सोहर का एक उदाहरण यह भी है :–

ढामक पेड़ महुलिया, पतवन घन बसै रे,
रामा वही तरे ठाड़े कन्हइया मुरली बजावै रे।

चंगेलिया गीत –

नवजात शिशु की दीर्घायु की कामना लेकर बुआ द्वारा विशेष प्रकार का एक चोंगा (चंगेलिया) लेकर नाचते समय ये गीत गाया जाता हैं–

ननदी हमार कुर्ता टोपी लाई, कुर्ता भी लाई टोपी भी लाई।
दरजी का यार वहौ संग लेत आई ननदी हमार...... ।

(चंगेलिया गीत)

मुण्डन संस्कार के गीत –

बालक के मुण्डन के समय गाए जाने वाले गीत –

जौं मैं जनत्यों शंकर रामा मुण्डना तुम्हार,
सोने का छुरवा गढ़ा वै, तौ बाबा तुम्हार।

(मुण्डन गीत)

उपनयन संस्कार के गीत –

एक उदाहरण निम्न है–

नीली घोड़ी, मुख चौरी, रतनारे हैं केशव,
वही चढ़े फिरें बरूअना पूछैं, बखरी बाबा केरीरे।

विवाह गीत :–

विवाह के समय इस क्षेत्र में तरह–तरह के गीत गाए जाते हैं जिनको निम्न उदाहरणों से सुस्पष्ट किया जा सकता है–

मोरे पिछवारे सुपरिया का पेड़वा सो ऐलंग बेलंग,
वाखै डार रे; वही तरे दुल्हेरवा के बाबा का मालिन ओरहन देय रे;
बरजौ न साहेब अपने दुल्हेरवा, दवारे सुपरिया के डार।

(द्वारचार गीत)

आतर परसीं पातर परसीं परस गईं हैं दुनियां;
जनक पुरी की नरियां, राम लखन दोंनों जेवन बैठे,
दैवैं सखिन गरियां, जनक पुरी की नरियां।

(जेवनार के समय : गारी)

खोरन खोरन इसुरी महादेव,
गलिन गलिन भगवाना जी,
काहे चढ़े आवैं इसुरी महादेव,
काहे चढ़े आवै भगवाना जी।

(कलेवा के समय : गारी)

मैं ना पहनौं लीलिया बोर
जो मैं पहनौं रंडुवा रौयावैं डीमड़ फोर ;

(दादरा)

(जब नवविवाहिता अपने घर लौट कर आती है तब दादरा गीत गाए जाते हैं)

ब – मजरा/कीर्तन :–

यद्यपि इस क्षेत्र में रामचरित मानस का पाठ ही भक्ति भावना का केन्द्र है, किन्तु तिरहारी भाषा में बुन्देली लोक गीतों की तरह ही कई प्रकार के भजन भी प्रचलित हैं। कुछ प्रमुख भजन एवं प्रकार से हैं–

(भजन)

आज मोरे अंगना मा रुकमिन बोली,
कलम दान हरि स्याही मंगवाई,
पहिले नाम लिखो हरि आपन;
पीछे लखन की लड़ाई हो रामा;
कलम दान हरि स्याही मंगवाई।

(राधेश्याम कीर्तन)

मइया उमहे चलो मन मेरा हो मां, उमहे चलो मन मेरा,
कहना से मइया तोरे दल उमहे, कहना लेत बसेरा दरस का;
मइया उमहे चलो मन मेरा हो मां।

(देवी गीत : उमाह)

स– दैनिक जीवन के पर्व गीत –

तिरहार क्षेत्र में बुन्देलखण्ड की अजब संस्कृति तब देखने को मिलती है जब खेत में काम करता किसान, घाट पर कपड़े धोता धोबी, घर पर जांत पीसती गृहणी, कुएं पर पानी भरती किशोरी और नाव चलाते केवट अपने गीतों में मगन होकर काम करते हैं और हंसते गाते जीवनयापन का परिचय देते हैं। इनके अलावा अन्य प्रचलित गीत विधाओं में बारह मासा, होली के समय फाग, दिवाली में दिवारी गीत, धोबी गीत आदि हैं।

दिवारी गीत व नृत्य :–

दिवाली में अहीर जाति के लोग विशेष परिधान पहन कर हाथ में लाठी लेकर नृत्य करते हैं व लाठी प्रहार व बचाव की कलाएं प्रस्तुत करते हैं। इनकी यह कला जापान के कुग–फू–कराटे और चीन की रैकी से किसी भी तरह कम नहीं हो सकती।

बदुआ धरे कसंहडी धरे मुसकाय रे; अहीर का लरका कनखी मारै;
या टाठी कबै मोरे धरै जाय रे।

(दीवारी गीत)

भेला ने तोरे लंबे देसा हो ....
मोरी नजरिया ना फेंकी जाए हो, भेला ने तोरे ....

(लमटेरा)

सावन भादौं की रैन चंद्रमा उदौ कियो है;
तीन लोक के नाथ जनम मथुरा में लियो है।

(बारस मासा)

धोबी कपड़ा जाज मऊ के घाट,
मछरी साबुन लै गई धोबी बारा बाटरा, रामछियो, रामछियो

(धोबी गीत)

होली में गावों की चौपालों में सभी लोग एक साथ बैठकर फाग गाते हैं और एक दूसरे पर स्नेह पूरित अबीर, गुलाल फेंकते हैं।

मढ़िया के खोलो केवार महादेव, गौरा ठाड़ी दुआरे मा।

(फाग)

अब काहे उड़ जाए अंचलवा, पिया परदेसवा मा बिलमा रहे।

(फाग)

चले सरमन सोभा कई भांत की,
कंवर लहे पिता मात की;

(छंददार गारी)

द– नृत्य एवं स्वांग :–

तिरहार क्षेत्र में लोकगीतों के अतिरिक्त नृत्य एवं स्वांग विधा भी प्रचलित है। नवरात्र में उमाह गीतों की धुन में स्वांग करते हुए नृत्य को जवारा नृत्य कहा जाता है, जिसमें नर्तक अपने गाल में लोहे की सांग घोंप कर नाचता है। ढीमरों की ढिमरयाई स्वांग, कुम्हारों तथा मेहरों के स्वांग, भाटों के स्वांग धोबियों का कुण्डा नृत्य तथा भाटों की मंडयाय (व्यंग्य) अपना विशेष महत्व रखते हैं। ये स्वांग (विशेष परिधानों को पहनकर और साज श्रृंगार करके) किए जाते हैं।

य– वाद्य यंत्र –

इस क्षेत्र में मुख्यतया वाद्य यंत्रों के रूप में मृदंग, पखावज, ढोलक, मंजीरा, झांझ, हुड़क, चिमटा, खडंजी, बांसुरी, शहनाई, चिलगोजा

चैतुवे

- राजबहादुर सिंह

ये चैतुवे दुखमार
चले आ रहे
जैसी भूखी दीमकों की कतार !

पार करते पठार
नद–नाले कछार
विन्ध्य के फूले हैं पलाश –
खेली है फाग
पहाड़ियों पर फेंकी यह किसने गुलाल?
भर मुट्ठियाँ सौ–सौ हजार
सौ–सौ हजार,
सौ–सौ हजार !

चला था इतिहास –
नर–नारी–पशु–समास
चले थे हम – है क्या याद?
दिल्ली से दौलताबाद !
हाँ, चले थे हम –
वह निर्वासन की बात !
आह !
सोच बहती अश्रुधार
विन्ध्य के दुर्गम गिरि–गह्वर पार
चले थे हम – सौ–सौ हजार
सौ–सौ हजार,
सौ–सौ हजार !

खेंतो को करता सपाट
मिट्टी के गढ़–गढ़ी पाट
विजय को मदान्ध–अशोक का सैन्य बल
गुजरा था कभी झूमता
ले हय–दल मतंग
फूँकता रण भेरी
ठोंकता धौंसा–मृदंग
विजय को कलिंग !
और
सदियों के बाद आज – ये
भैंसों पर लदे
बैलों के काँधों पर फँदे
जीवन के तीर – श्रम की कमान पर सधे!
कण्टक पग भरे – आ रहे
वृद्ध–बाल–नवजवान !

छेड़ते तान पूरे
घुरके–खँजड़ियों पर तान
हँसिया श्रम का निशान
बैठ मेड़ों पर, श्रम दे अमूल्य
देंगे दिन आरक्त ढाल
सब श्वेद झार
कर तन तार–तार – श्रम के सपूत
सौ–सौ हजार,
सौ–सौ हजार
सौ–सौ हजार !

काटते हैं चैत
करते खलिहान–उड़ान
कर धूम्रपान
हैं गाते गान – बीते अतीत के
दलेल की हुलेल के
बुँदेला जगत राज के
मराठा बाजीराव के
सन्त के – महन्त के
खाते रोटी कैथ की चटनी से परस
शुष्क तन, हृदय सरस
बहती है प्रेम–धार —

'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'
करते हैं कर्म
'संघे शक्ति : कलौयुगे – मूलमंत्र!'
फिर भी कलह में पलते –
है सत्य बात !
श्रम के सपूत – सौ–सौ हजार
सौ–सौ हजार,
सौ–सौ हजार !

किल्ले – पिल्ले से बालक – नक बहे !
लिए तूँबी से बढ़े पेट – हिलाते
मानवता के व्यंग चित्र ये
पशुता के भी चित्र अधूरे,
दिखाते भाग्य की छलना
दीनता का अभिनय –
उमेठते पेट
माँगते भीख
दबा नासिका पुट – मिन मिनाते
बजाकर काकली गाते –
कि –
' माईं ने हमकाँ पालो तो
दिन भर भूँकन मारो तो
रात के मउवा भूँजेते
खात में डऊवा मारो तो
माईं भगावै दूर–दूर
मम्मा बुलावे कूर–कूर ...'
तो जीवन की विपत कहानी
हो जाती प्रारम्भ
छिप जाता करूणा के मेघाम्बर में –
आर्त हो, प्रजातंत्र का सूर्य
श्रवण कर –
'देखो, यह है बुँदेलखण्ड !'

(पृष्ठ क्रमांक 66 का शेषांश..)

पिपिहरी, मटका, खपचिया, इकतारा, झींका, नंगड़िया, नंगाड़ा, सारंगी और तबला का प्रचलन है।

केवट वेद व्यास को अपना आराध्यदेव मानते हैं और उन्हीं का आलम्बन लेकर मांझी गीत गाते हैं। यद्यपि मोटे तौर पर देखने में तो ये गीत लगभग एक से लगते हैं, मगर इनकी बनावट (संगीत संरचना) धुन, लय, ताल, आदि बिल्कुल भिन्न–भिन्न है जिसे साधारणतया तो समझा ही नहीं जा सकता। इतनी ज्वलंत संस्कृति व संगीत होने के बावजूद भी आज की पीढ़ी उस उबाऊ हो हल्ला वाले पछुवा संगीत की ओर दौड़ रही है जो मानसिक शांति, आत्मिक आनंद, और स्नेहासक्त वातावरण देने के बजाए मानसिक अशांति देती है। कहीं ऐसा न हो कि पॉप म्यूजिक के शोर–शराबे के बीच अपनी पहचान, अपनी संस्कृति व संगीत गुम हो जाए।

-ई/3, टीचर्स कॉलोनी, अतर्रा

कहाँ, वीरों का गढ़ कालिंजर
गढ़ कुँड़ार
खजुराहो के दैवी मंदिर
विन्ध्य की अटवी मनहर
नर्वदा–शोंण के मीठे निर्झर
दे रहे चुनौती उन सबको
मानवता के खण्डहर के ये नन्हें अँकुर !
नन्हीं आँखों के निर्झर !
सत्यं–शिवं–सुन्दरं हैं वे
सत्यं–शिवं–सुन्दरं ये भी
कितनी सीधी सच्ची बात !
बोलो,
क्या नहीं सत्य यह बात?
बीनते दिनभर शिला
पसीने से तर, बेखबर
सीखते हैं पेट पालन कला
बनेंगे कल चैतुवे
चलेंगे पाँत बाँध
काटेंगे खेत
करेंगे खलिहान–उड़ान
पालेंगे परम्परा – निभायेंगे रीतियाँ
ये कड़ेरे, कोरी, काछी, कुम्हार
सौ–सौ हजार
सौ–सौ हजार,
सौ–सौ हजार !

माटी की पुतरियाँ
आँखों की सोना चिरय्याँ
बीन लेतीं गोबर से दाना –
आँचल में बाँध लेती हैं – लगाकर माथे से
खा लेती हैं धोकर
ढोकर ले जाती हैं गोबर
पाथकर उपले
बेंच आतीं ईंधन का साधन
इनकी बहू–बेटियाँ
साहस कर
पठार पार
ठोकरें खा हजार –
लौटती हैं शहरों से
डूबती लाल–पीली संध्या में
नमक–मिर्च–हल्दी आँचल में बाँधे हुए
दुधमुँहे बच्चे
झोली में टाँगे हुए
झींगुरों के संग गातीं – राछरे
बिलवाई
रमटेरे
जहाँ लगते हैं – डाकू राजन के फेरे।

'गोहुन की रोटी घियागुर खाय
राजा की गोली जिया लैके जाय
हाँ, जिया लैकै जाय '

घर में मिट्टी के पात्र –
हम कहते जिनको कुपात्र ?
काठ का डऊवा औ कठौती
पीढ़ियों की बपौती
बोरें बालों की गूदड़ी
गर्दन में हँसुली गिलट की
लाखों की चूड़ियाँ आवाज देती हैं
पीसती है चक्की होते भोर
चैतुवे की दुलहिन – आलापती'
ओ, बऊ कबै बजै रमतूला
मुयें देकनै दूला ...'
राग बुँदेली : किस्सा गोंड़वाना
उसके पतन का
सोलहवीं शताब्दी
सम्राट् की वह राज्य–लिप्सा?
आज भी ना भूले हैं – अपने को भूलकर भी
देश की दुख भरी गाथा
उस जलालुद्दीन का जलजला
उस महान् अकबर की मार – बेशुमार !
ये चैतुवे दुखमार !
सौ–सौ हजार
सौ–सौ हजार,
सौ–सौ हजार !

आते हैं याद – वे राजा छत्रसाल
मधुकरशाह
ओरछा के राजमहल
ओरछा की रंगीली बात —
वीरसिंह जू देव, केशव कवि, प्रवीणराय !
पन्ना के अमान
गढ़–गढ़ियों का इतिहास
सुरई
मुकरबे
सहनियाँ, धुबेला के ताल !
अब भी है पन्ना में हीरों की खान
महोबा,
महाराजपुर के पान जाते हैं दूर–दूर,
चँदेली भूमि का पानी
रंग लाता है लाल,
जलती वीरता की मशाल,
विश्व की वीथियों में – खजुराहो के शिल्प का
कितना है गुमान ?
बिखरा है बीहड़ घाटियों में –
विन्ध्य का वैभव,
लोकगीतों में फूटे हैं निर्झर –
विन्ध्या के प्राण
सिमटा संस्कृति का शेष रूप
हो उठा उद्वेलित – इन चैतुवों में
मूर्तिमान !
गुजरते हैं एक कल्पना से
धरित्री किये है धारण कल्पान्तरों से
पर खो चुकी – पुरातन पहचान
ये विन्ध्य की श्रेणियाँ
अब बन्ध्या हैं – सौ–सौ हजार
सौ–सौ हजार,
सौ–सौ हजार !

ये संघ
यूनियन
काँग्रेस – समाजवादी मोर्चे
पढ़े–लिखे लीडर देते है भाषण
बढ़ती है सभ्यता
अन्तर्राष्ट्रीयता – इनको कहाँ है ज्ञान?
क्या है प्रजातंत्र – किसका?
किसके द्वारा?
किसके हेतु?
सोचते हैं वह राम–राज्य था हमारा
था नृपपिता एक
भू–माँ एक
सुख–दुख एक
चोरी न डकैती थी
न रिश्वत थी
न हाट में कटौती थी !
कर थे अनुकूल
अफसर थे फूल
खुली थी हाट – मिलती थी
दमड़ी में मन भर लाग !
मजदूरी थी खूब
हो गई ग्रीष्म की दूब – आज
था कितना बड़ा ताज !
युद्ध कितने विशाल !
फिर भी जीवन था सस्ता, मजेदार !
डऊवा सा हाथ धरे – माथे पर
हण्डी सी खोपड़ी में
खट्टी महेरी सी किस्मत पका रहे
चूल्हे से घुटनों पर बैठे हैं भार डार !
ये भाग्यवादी, श्रम के सपूत
करो इनको नमस्कार !
सौ–सौ हजार,
सौ–सौ हजार,
सौ–सौ हजार !

- रानी की बगिया, बेनीगं
छतरपुर (मप्र)

हरदौल

- वीरेन्द्र बहादुर खरे

दिसम्बर 1635 के जाड़ों की रात थी। हड्डियां कंपा देने वाली सर्दी थी। चौंदा के घने जंगल के बीच बने एक वीरान किले के गुप्त कमरे में ओरछा के राजा जुझार सिंह हिन्दुस्तान के मुगल बादशाह शाहजहाँ की फौज से हारकर छिपे हुये थे। वे भूमि पर आंख बंद किये लेटे थे। अचानक उन्हें ऐसा लगा जैसे किसी ने उन्हें झकझोर दिया हो। अधखुली आंखों से उन्होंने अंधेरे में कुंअर हरदौर से मिलती जुलती परछाई दिखी। उन्होंने सुना कोई उनसे कह रहा है। ''महाराज अपनी प्रजा और अपनी मातृभूमि को गैरों के हाथों लुटने के लिये छोड़कर रणभूमि से जान बचाकर जंगल में छिपना वीर बुन्देला को शोभा नहीं देता। यहां आप कायरों की तरह जंगल भाग रहे हैं। वहां मुगल सेना ओरछा को उजाड़ रही है।'' राजा बोले ''मुझे कायर कहने वाला तू कौन है? सामने आ मैं तुझे अभी मौत के घाट उतारता हूं।'' छाया हंसी ''मुझे नहीं पहचाना आपने? मैं हूं आपका छोटा भाई हरदौल। और रहीं मौत के घाट उतारने की बात तो भइया मरे हुये व्यक्ति दोबारा नहीं मरते। हरदौल! नाम सुनते ही चौंक पड़े राजा। ''हाँ हरदौल ही तो है'' राजा ने आंखे मलते ही धीरे से कहा। फिर बोले ''दूर हो जा मेरी आंखों के सामने से क्या मेरा मजाक उड़ाने आया है? या मुझसे बदला लेने आया है? छाया बोली ''भइया मैं आपको संकट से बचाने एवं यह स्थान छोड़ देने के लिये कहने आया हूँ। मुगल सेना आपको खोजने के लिये यहाँ तक आने वाली है। अच्छा हो आप यहां से निकल जायें।'' जुझार हंसे ''तू और मुझे बचाने आयेगा? क्या मैं इतना भोला हूँ कि तेरी बात का विश्वास कर खुले जंगल में अपनी मौत बुला लूंगा? हा–हा–हा तू और मेरा भला चाहेगा। राजा की हंसी सुनकर पास ही सोई महरानी जाग उठी। उन्होने महाराज को बड़–बड़ाते हुये देखा। उनका शरीर ुस्से से कांप रहा था।

रानी ने कहा ''क्या बात है महाराज आज इतने उत्तेजित यों है? जुझार ने कहा ''हरदौल था। छोटे मुह बड़ी बात कह रहा ा। मुझे कायर एवं धोखेबाज कह रहा था।'' रानी ने आश्चर्य से हा ''हरदौल लाला आये थे? आपको धोखा तो नहीं हुआ? हाराज आपकी इस पतिव्रता दासी ने ही उन्हें आपकी आज्ञानुसार ष भोजन दिया था। दाह संस्कार तो आपके सामने ही हुआ था र सन्देह कैसा?'' ''रानी तुम भी आज मुझ पर व्यंग कर रही । यह हरदौल जब तक जिन्दा रहा मुझे दुख देता रहा और अब बनकर मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है। तुम नहीं जानती हो रानी तुम्हारे और हरदौल के स्नेह सम्बन्धों को लेकर दिल्ली दरबार अमीर मुझ पर कितना हंसते थे। जी चाहता था कि उनकी न ले लूं और अपनी जान दे दूं। मुझे वह दिन अच्छी तरह याद नब अमीर इशाक वेग के सरदारों की महफिल में मुझसे कहा ''राजा साहब आज तो दिल्ली में बादशाह की सेवा करते रहते हैं महारानी अपना समय कैसे काटती होगी? हम तो जहां जाते हैं अपनी बेगम को साथ ले जाते हैं।'' तभी बाकी खाँ बोल पड़ा ''पागल हुये हो। तुम'' रानी साहिबा क्यों उदास रहेगी? उनके पास तो उनका बांका सजीला देवर हरदौल है। उन्हें काहे का दुख। बरखुरदार! लता अपना सहारा खुद खोज लेती है।'' मैं आगे नहीं सुन सका और तलवार खीच कर बाकी खाँ की ओर बढ़ा। सरदारों ने बीच बचाव करके मुझे रोक दिया। किन्तु बाकी खाँ ने कहा था ''महाराज औरत कभी वफादार नहीं होती है। अगर आप अचानक ओरछा जायें तो अपने नव–जवान भाई को महल में ही पायेंगे। जरा सोचिये वह क्यों दूसरे राजकुमारों की तरह मुगल दरबार के सुखी जीवन को पसंद ना कर ओरछा में ही रहना चाहता है?

मैं क्रोध से भरा महफिल से उठ आया और सीधा ओरछा की ओर चल पड़ा। जब में लम्बे सफर के बाद ओरछा पहुंचा तो मैने देखा कि हरदौल हाथ में पट्टी बांधे और कमर में बादशाह शाहजहां द्वारा मुझे भेंट की गई तलवार बाँधे महती के कक्ष में पलंग पर लेटा था। मैंने जो कुछ सुना था वह सच पाया। मैं अपने घर में अना–चार को नहीं पनपने देना चाहता था। रानी ने टोका ''महाराज हम लोग मौत के दरबाजे पर खड़े हैं। यहां हमारे बीच कोई तीसरा नहीं है क्या आप सचमुच आपकी मेरे और हरदौल के बीच अनैतिक सम्बन्ध होने का विश्वास था। और मुझे आप बदचलन समझते थे? मैने उस समय भी सोचा था कि यह कैसा पुरूष है जो अपनी चरित्रहीन पत्नी को तो जीवित रखता है पर उसके प्रेमी को मरवा डालता है। राजा मेरा तो मानना है कि चरित्रहीनता का तो एक बहाना था आप हरदौल की लोकप्रियता से भयभीत थे। हरदौल की वीरता ने उनके स्वभाव ने प्रजा के प्रति उदारता ने, साहस एवं नैतिक गुणों ने, अपनी प्रजा में बेहद लोकप्रिय बना दिया। वह उन पर जान दे सकती थी। आपको डर था कि कहीं आपकी गैरहाजरी में हरदौल ओरछा के राजा ना बन जायें। यह बात किसी से छिपी नहीं थी कि आपने होनहार बेटे जगतराज ने आपकी गैरहाजरी में कैसा शासन किया। उसने ससुर वीर सिंह महाराज के साथियों कृपा राम गौड़ आदि को बंदी बना दिया। उसी के मोह में पड़कर आप हरदौल के दुश्मन बन गये थे। आपको लगता था कि हरदौल ओरछा की गद्दी पर न बैठ जाये। वह आपके पुत्र के लिये खतरा न बने इसलिये उसका हटाना बहुत जरूरी था। क्यों मैने ठीक कहा ना?''

राजा गरजे – ''बकवास मत करो। मुझ को उससे कोई डर नहीं था। उसकी क्या हिम्मत जो मेरे रहते ओरछा पर राज्य करने को सोचता। क्या मैं उससे कमजोर था? मुझे भी जनता

प्यार करती थी। मैं वीर सिंह का खून हूँ।'

राजा को सहसा ऐसा लगा जैसे उसे झूठा कहा गया हो। उसने चौंककर कहा "क्या तुमने मुझे झूठा कहा" रानी ने कहा "नहीं"। "फिर किसने कहा होगा" राजा ने पूछा। रानी सहज स्वर में बोली –"आपके मन ने कहा होगा।" महाराज लेकिन अब मैं कहती हूँ कि आप झूठ बोल रहे है। आपने स्वयं कहा कि आपको मेरे एवं लाला के सम्बन्धों पर सन्देह था। सन्देह मिटाया भी जा सकता था। संदेह पर कोई किसी को मौत की सजा नहीं देता है। अगर सजा देना चाहते तो मेरे टुकड़े–टुकड़े करवा देते। पर जब मैंने अपने एवं लाला के निर्दोष होने का सबूत दिया तो आपने यही कहा मैं कुछ नहीं सुनना चाहता हूं। अगर तुम निर्दोष हो और तुम्हारा उससे गलत सम्बन्ध नहीं तो हरदौल को अपने हांथ से विष मिला भोजन दो। मतलब साफ था सारा क्रोध हरदौल पर था। वे इतने लोकप्रिय थे कि कोई भी व्यक्ति किसी भी लालच से उन्हें विष नहीं दे सकता था इसलिये आपने मुझे चुना। आपने नारी के मर्म स्थल पर चोट की थी। नारी अपने चरित्र पर आंच नहीं आने देना चाहती है वह इस लांछन को मिटाने के लिये कोई भी काम कर सकती है।

"महाराज मैं आज भी उस दृश्य को ज्यों का त्यों देख सकती हूँ मेरे निमंत्रण पर दूसरे दिन वे ओरछा आये। चूड़ीदार पैजामा एवं अगरावा पहने पीली पाग बांधे वे घोड़े से उतरकर रनवास में आये। और बोले "भौजाई मिल जाय कछु परसाद तो पेट भरे।" मुझे चांदी का थाल लेकर आते देख वे बोले "भौजी दासियां कहां गई। अगर जौ नरम कलाई लचक जैहें तो जौ गरीब विचारो मुफ्त में मारौ जैहै। भइया मोरी छुट्टी कर दे है" मैं उनकी सरस बातों का आनन्द नहीं ले पा रही थी। मेरे मन में सत् एवं असत् का महाभारत मच रहा था मैं ग्लानि से सिर नहीं उठा पा रही थी। जी चाहता था कि थाली लेकर आपके पास पटक दूं और कह दूं कि "नहीं मार सकती हरदौल को मैं, आप जो चाहें मेरे बारे में सोचें। मैं बरबस रुलाई रोक रही थी और आंसू थे कि पलकों में बंद ही नहीं होना चाहते थे। वे बोले जा रहे थे "भौजी आपकी देवरानी भी आपके दर्शन को आना चाहती थी। पर आजकल उसे भूख नहीं लगती है उवकाई आती है। अरे भाभी आपको खुशखबरी भी सुनाई और आप कुछ नहीं बोलीं। बतलाओ क्या बात है?" वे चौकी पर बैठ गये थे। मैने गुपचाप थाली चौके पर रख दी तभी उन्होनें मेरी आंखों में आंसू देख लिये। उन्होनें फिर चुहल की। "भौजी पुरइन में बूंदें तो बहुत देखी पर सीप से मोती टपकत आजई देखे हैं। भइया महल में आये हैं तभी ठकुराइन ने अपने हाथ से खाना बनाओ है। चलो इसी बहाने आपके हाथ की रसोई चखने का मिल गई। अच्छा भाभी करत हों लक्ष्मी नारायण।" उन्होने सबसे पहले खीर की कटोरी उठाई। अब मैं चुप न रह सकी। मैं बोली "लाला कटोरी रख दो इसमें विष मिला है।" उनके चेहरे में मुस्कान खेलने लगी। "अब बात बनी इन हाथों से तो जहर भी रसायन हो जे हैं।" विष केवल खीर में है या लुचई में भी? मैने गम्भीर होकर कहा "लाला में सच कह रही हूं। महाराज ने हमारे पवित्र संबंधों पर सन्देह करते हुये आज्ञा दी है अगर मैं निर्दोष हूं तो तुम्हें विष खिला दूं।" उसने एक पल मुझे देखा और कहा "दाऊ ने इसमें क्या झूठ कहा? आप हमें प्रानन से अधिक चाहती हैं। मुझे मर जाने देती। और भाभी मैं भी आप को जान से बढ़कर चाहता हूँ इसलिये मैं इस विष भरी खीर का भोग लगाऊँगा। राजा ने बीच में रानी को टोका "रानी तुम बड़ी भली हो अब तो कहती हो कि उसकी दृष्टि के पाप नहीं था। कोई उसकी आंखे नहीं पहचान पाई।" महारानी हंसी बोली "अपने मन को धोखा मत दो महाराज आप खूब जानते हैं कि वे और ही माटी के बने थे। एक बात और याद रखियो नारी पुरूष को आंखें देखकर ही पहचान लेती है कि दृष्टि पुत्र की है या लोलप लम्पट की। लाला को मैं नहीं जान पाई आ आप? राजा बोले अच्छा अब चुप रहो। हम यहां शत्रु से छुपकर बैठे हैं। रानी ने कहा "मैं आज तक चुप ही तो रही हूं अब बात पूरी कर लेने दीजिये। हाँ तो उन्होने बोलते–बोलते चम्मच को खीर से भर लिया। मैं चीखी "लाला! तुम्हें होने वाले पुत्र की " – वे बीच में बात काटकर बोले "भाभी आगे मत बोलो मैं जानता हूं कि तुम क्या कहोगी।" "खीर न खाओ, जान बचाकर भाग जाओ।" वह गंभीर हो गया– "भाभी ईश्वर साक्षी है मैने तुम्हें सदा मां ही समझा है और तुमने भी मुझे पुत्र सा ही प्यार दिया है। अगर राजा के अलावा किसी और ने ऐसा लांछन लगाया होता तो मैं उसकी बोटी–बोटी काटकर चील कौओं को खिला देता। भइया ने ही लांछन लगाया है इसलिये प्रतिवाद करने का समय नहीं है। अब तो उनको आज्ञा मानकर आपको विष देना है और मुझे खाना है इसी से मेरी आपकी और राजवंश की मर्यादा की रक्षा होगी। मैं मरकर ही शक के विषैले नाग का जहर उतार सकूंगा। भाभी और कोई उपाय नहीं है। अगर मैं भाग गया तो जानती हो क्या होगा सारे ओरछा नगर में हमारे और आपके सम्बन्धों पर उंगली उठ लगेगी। लोग कहेंगे कि रानी ने राजा से विश्वास घातकर हरदौल को भगा दिया। राजा के सन्देह पर सत्य को मुहर लग जायेगी और इतनी बड़ी बदनामी के साथ मैं कैसे जी पाऊँगा? और त और क्या मैं आपकी देवरानी के सामने जा सकूंगा? वह जीवन तो मौत से बुरा होगा। भाभी आपने अच्छा किया जो मुझे पहले ही बतला दिया। अब मरने का आनन्द आयेगा। शत्रु को सामने देखकर लड़ने में कुछ ओर ही मजा आता है। भाभी! अब देखना कैसे सड़प सड़प करके हड़पता हूं खीर।

मैने कहा "लाला मेरी भी तो सुनो। तुम! दोनों भाई क मुझे हत्यारिन बनाने पर तुले हो। मैं अपना काला मूँह कि दिखलाऊँगी? लोग मुझे हत्यारिन कर कर घृणा से न थूकें देवरानी क्या कहेंगी? बोलो! किस जन्म की दुश्मनी निभा रहे हो तुम दोनों" हरदौल बोले "भाभी इतना कमजोर न बनो तु हत्यारिन कौन कहेगा? बतलाकर कोई किसी को विष देता है यह हत्या नहीं है आत्म हत्या है। जब भइया ने ठान लिया है

जहर को खाना ही पड़ेगा। भाभी हंसू न तो और क्या करूं? इतना बड़ा आघात बिना हंसे नहीं सहा जा सकता है। बेटे को मां का प्रेमी कहा जाये और बेटा मरे नहीं और जिन्दा रहे तो उससे बढ़कर बेशरम कौन होगा। अब तो मुझे अपने आप पर ही लाज आ रही है। भाभी मरना तो है ही अब सवाल यह है कि लज्जा से मरे या हंसी खुशी विष पीकर ठाकुर हूं इसलिये शहीद होकर ही मरना चाहूंगा। मैने कहा ''अगर किसी को मरना ही है तो मैं क्यों न मरूं मेरा क्या है? भाभी तुम्हारी मौत से तो मेरा मरना ही बेकार हो जायेगा। तब लांछन लगाना और सरल होगा।'' जब तक मैं उनका हाथ पकडूं वे चम्मच को मूंह में डाल चुके थे। मेरे ना ना कहने पर उन्होंने झटपट दो चम्मच खीर खाली मैं दहाड़ मार कर रोना चाहती थी पर मेरा मुह अवाक खुला उसका विषपान देख रहा था और आंखें सावन भादौ की तरह झर रही थी। धीरे–धीरे उनका बदन नीला पड़ने लगा। पर उनके चेहरे पर आक्रोश नहीं था। उनकी आंखों में मौत का उपहास था। वे मेरे पैरों के पास कटे वृक्ष की तरह गिर गये और हां महाराज मैने उन्हें बेटे की तरह गोद में लिटा लिया। महाराज क्या मिला उन्हें मार कर क्या आप उन्हें दोषी बना पाये? वे तो मर कर देवता हो गये।

क्या राज्य आपके पास रह सका? क्या इस घटना के बाद आपको प्रजा की श्रद्धा मिल सकी? देखो ना राज्य छूटा। मातृभूमि छूटी। अपयश मिला और आज जान के लाले पड़े हैं। जिन्हें आप जनता की नजरों से गिराना चाहते थे वे ध्रुव तारे की तरह अटल एवं अमर हो गये हैं। उन्होंने तो इस हत्यारिन को भी पावन बनाकर अमर कर दिया। पता नहीं अपनी मौत किस हालत में हो। हो सकता है ओरछा राज्य रा. के लिये बुन्देलों के हाथ से निकल जाय। पर एक बात सच है अगर हम और आप याद रहेंगे तो मात्र हरदौल के कारण।

राजा चुपचाप सुन रहे थे बोले ''रानी शायद तुम सच कह रही हो। सचमुच हरदौल जीत गया। दो चार दिन से जब भी आंखे बन्द करता हूं हरदौल सामने आ जाता है और यहां भाग जाने को कहता है लगता है कल का सूर्य नहीं देख पायेंगे'' चलो अब रात को ही भाग चलें मरना ही है तो खुले मरेंगें।

थोड़ी ही देर में राजा और रानी दोनों किले के मुख्य द्वार निकलें। वे अभी दूर नहीं जा पाये थे आखिर राजा हांफने लगे। वे थककर एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गये और फिर उनकी आंख लग गयी। रात के लगभग दो बजे थे। कहीं से कोई आहट नहीं आ रही थी। अचानक दो गौड़नें पेड़ के नीचे दो व्यक्तियों को देखा वे धीरे–धीरे उनके पास आये। उन्होंने राजा को गौर से देखा परस्पर इशारा किया। फिर उनमें से एक राजा की छाती पर चढ़ गया। जब तक राजा उठते उसके मजबूत हाथ राजा की गर्दन को कस चुके थे। राजा के मुह से घुटी चीख निकली। रानी जागी उन्होंने एक छाया को राजा का गला दबाते देखा वे चिल्लाई। तब तक दूसरे गोंड़ ने रानी को पकड़ना चाहा। रानी भागी तभी भागता हुआ गौड़ मुह के बल गिरा, ऐसा लगा जैसे किसी ने उसे उठाकर पटक दिया हो। रानी भाग रही थी। उन्हें लग रहा था कि कोई कह रहा हो भाभी! भाभी। रानी ने बिना मुड़े चिल्लाकर कहा ''नहीं! इस बार नहीं इस बार मत बचाना।'' वे तेजी से सामने की बावरी की ओर चढ़ी। उन्होंने गहरे जल में छलांग लगा दीं। थोड़ी देर तक पानी की लहरें भाभी! भाभी चिल्लाती रहीं और फिर शान्त हो गयीं।

-उप प्राचार्य, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान,
कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) म0प्र0

---

* ''सेत बरसें खेतभर, कारे बरसें पारे भर।
जब उठें धुँआं धारे, तब आयें नदी नारे।''

* ''तीतर पंखी बादरी, विधवा काजर देय।
वे बरसें वे घर करें,, ई में न संदेह।।''

* नारि सुहागिन घट भर लावे, दूध माधरी सम्मुख जो आवे।
सामें गऊ चुखावै बच्छा, जेई सगुन है सब से अच्छा।।

* तिल भौंरी लासुन मसो, होय दाहिने अंग।
जाय बसै वन खण्ड में, तऊ लच्छमी संग।।

* आलू बोयें अँधेरे पाख, खेत में डारे कूड़ा राख।
समय समय पर सिंचाई, दूना घर में आई।
कदम कदम पर बाजरा, मेढ़क कूदे जुवार।
ऐसे जो बोवै कोई, घर घर भरै कोठार।

* खेती बाड़ी चाकरी, औ घोड़े का तंग,
अपने हाथ संवारिये, चाहे लाख हो संग।

* बुध बृहस्पति दोनों भले, शुक्र न भले बखान।
रवि मंगल बोनी करे, द्वार न आवे धान।।

* पांच मंगल होवे फाल्गुनो, पूस पांच शनि होय।
काल पड़े कह भड्डरी, बीज बोओ मति कोय।

बुन्देलखण्ड के देदीप्यमान साहित्यकार लाला परमानंद 'प्रधान'

आलेख - डॉ0 डी0 पी0 खरे, व्याख्यात

बुन्देलखण्ड की वीर प्रसूता, सुरासुर वन्दित, वेद चर्चित भूमि ने हिन्दी साहित्य के अनेक मूर्धन्य साहित्यकारों को जन्म देकर मानव सभ्यता का गौरवशाली इतिहास रचा है। प्रातः स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास, हरिराम व्यास, आचार्य कवि केशवदास, बिहारी, पदमाकर, मुंशी अजमेरी, मैथलीशरण गुप्त, वियोगी हरि, वृन्दावन लाल वर्मा, केदारनाथ अग्रवाल जैसे श्रेष्ठ साहित्यकारों की जन्म स्थली होने का श्रेय इस अंचल को प्राप्त है।

इसी कड़ी में लाला परमानंद प्रधान जैसे मूर्धन्य साहित्यकार हुए हैं, जो उदात्त साहित्य सृजन करने के बावजूद विस्मृत व अल्पज्ञात रहे हैं। परमानंद जी का साहित्य सृजन बहुआयामी, श्रेष्ठ और चौंकाने वाला साहित्य है। श्री प्रधान का व्यक्तित्व और कृतित्व असाधारण प्रतिभा सम्पन्न है।

परमानंद प्रधान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बिल्कुल समकालीन साहित्यकार थे। इनका जन्म सन् 1850 में टीकमगढ़ नगर (टेहरी) में श्रेष्ठ साहित्यकार हरिदास जो 'हरिजन' उपनाम से 'तुलसी चिन्तामणि' जैसे महान् ग्रंथ के रचयिता हुए हैं, के यहाँ हुआ। इनके पिता श्री ओरछा राज्य के महाराजा हमीर सिंह (1854–74 ई.) के राज्याश्रित कवि थे। श्री प्रधान को योग्य पिता तथा बुंदेलखण्ड के शिरोमणि गुरु पं. गंगा प्रसाद त्रिपाठी का शिष्यत्व प्राप्त कर अपने जीवन को निखारने हेतु सोने में सुहागा जैसा संयोग प्राप्त हुआ।

> *बुन्देलखण्ड में साहित्य–सृजन भी एक लम्बी परम्परा है। इस परम्परा में आचार्य कवि केशव से लेकर ईसुरी, ख्यालीराम, गंगाधर, बिहारी लाल भट्ट आदि ने साहित्य सृजित किया है। अनेक प्रभावी रचनाकार शोध के अभाव में गुमनामी के शिकार हैं। टीकमगढ़ के डॉ0 डी0पी0 खरे ने एक ऐसे ही महान् साहित्य–साधक लाला परमानन्द 'प्रधान' के काव्य–संसार को प्रकाश में लाने का भगीरथ प्रयास किया है। श्री प्रधान जी के वृहद रचना संसार पर यह आलेख प्रकाश डालता है।* **- संपादक**

परमानंद जी ओरछा राज्य के महाराजा प्रताप सिंह (1974–1930) के राज्याश्रित कवि थे। इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या में से 32 ग्रंथ उपलब्ध हो चुके हैं। इन ग्रंथों में संस्कृत साहित्य का अपूर्व ज्ञान हिन्दी भाषा में समाहित कर हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की गई है। जैसा मैंने पूर्व में लिखा है कि श्री प्रधान का साहित्य बहु आयामी, श्रेष्ठ और अचम्भित करने वाला साहित्य है। उसी कथन को सिद्ध करने हेतु श्री प्रधान के साहित्य पर संक्षिप्त समीक्षात्मक प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगा।

श्री प्रधान जी के उपलब्ध 32 ग्रंथों को मोटे तौर पर चार भागों में रखा जा सकता है –

1– भक्तिपरक साहित्य –

(अ) प्रबन्ध काव्य –
1. प्रमोद रामायण
2. मंजु रामायण
3. रामायण मानस दर्पण
4. जानकी मंगल
5. रामायण मानस तरंगिणी (प्रकाशि
6. रामायण मानस चंद्रिका

(ब) लघु काव्य –
7. हनुमत विरुदावली शतक

(स) स्फुट काव्य –
8. रामचन्द्र पचासा
9. जानकी श्रंगाराष्टक
10. गणेशाष्टक
11. विश्वंभर सुमिरिनी
12. अपराध भंजन (रामचंद्र चालीसी) प्रकाशित
13. वर्ण चौंतीसी
14. हनुमत पैंतीसा

2– नीति विषयक ग्रंथ –

15. नीति सुधा मंदाकिनी
16. हित मुक्तावली
17. प्रताप नीति चंद्रोदय (रत्न परीक्षा)
18. प्रताप नीति दर्पण
19. नीति सारावली

3– श्रृंगार विषयक ग्रंथ –

20. रम्भा–शुक संवाद

4– विविध ग्रंथ –

21. भर्तहर सार
22. महेन्द्र मृगयादर्श
23. महेन्द्र मृगयाचरित्र
24. महेन्द्र धर्म प्रकाश (व्यवहार खण्ड)
25. सामन्त रत्न
26. स्फुट पद
27. ब्रम्ह कायस्थ कौमुदी
28. राज भृत्य प्रकाश (प्रकाशित)

29. गंभीर छन्दोदय पिंगल
30. रस अलंकार बोधिनी
31. अष्टगन प्रस्ताराष्टक
32. रस भेद वर्णन

उक्त समस्त ग्रंथों में परमानंद जी की बहुआयामी ज्ञान दृष्टि की स्पष्ट झलक होती है। उनका अधिकार भक्ति, श्रृंगार, नीति, दर्शन व न्याय के अतिरिक्त आचार्यत्व पर समान रूप से होता है।

रामायण मानस चंद्रिका की इन पंक्तियों में गागर में सागर भरने की चेष्टा देखिए–

हे मृग विहंग वृक्ष अलि श्रैनी। कहु कहं जनक सुता पिक बैनी।

वे तुलसीदास जी की तरह केवल 'तुम देखी सीता मृगनयनी की भावना को और गहराई देते हुए सीता जी का पता पूंछ रहे हैं।

आंचलिक रीति–रिवाजों का मनोहारी चित्रण कर श्री प्रधान की रीति निम्नांकित छन्द सीता जी की सहेलियों से कहलवाना कितना उपयुक्त है?

"सुनहु राम यह शंभु धनुष नहिं जिहिं तोखि छन माहीं।
जनक राज तनया कर कंकन छूटत कठिन लखाहीं।"

उदात्त साहित्य : श्री प्रधान का साहित्य सृजन उच्च कोटि का है । वे प्रकृति चित्रण में एक कुशल चितेरे, श्रृंगार वर्णन में परिपूर्ण रसिक, भक्ति के क्षेत्र में उत्कृष्ट भय, काव्य–लक्षण चित्रण में श्रेष्ठ आचार्य तथा गवेषणात्मक मौलिक चिन्तन के रूप में साहित्य सृजन करते रहें इनके काव्य के चंद अंश प्रस्तुत हैं :–

नाद सौंदर्य का श्रेष्ठ कवित्त

पेखी नृत्य शाला मैं विसाला मोद माला हाल,
जामैं मंजु मण्डली गवैयन की गा रही।
रागैं राग रसिक विराग जस राम के तैं,
काम के न कै हूँ वाम भागी भूरि भा रही।
भनै परमानंद मृदंग तैं उमंग भरी,
धिक धिक तान धिक तान ध्वनि छा रही।
किंकृत मंजीर मंद बोलत इसारा सारि,
करन पसारि वार वनिता बता रही।

(नीति सारावली से)

श्रृंगार वर्णन का उत्कृष्ट कवित्त

"कंचन के संपुट समान कुच पीन जाके,
छीन कटि लोचन नवीन मीन सम हैं।
अंग अंग सरस मनोज मद माते मंजु,
गति गरवीली सी गयंद तैं न कम है।
भनै परमानंद सुसील तरुनाई भरी,
चंद्र मुख केस पास जैसे तोम तम है।
अैसी वर वाम है, सकाम नहिं भेंटी तास,
जीवन वृथा ही जग जान्यौ जात हम है।"

(रम्भा शुक सम्वाद से)

भक्ति भावना का उदात्त ललित पद छंद

कब गजराज गीध गनिका गुह किय सुकर्म जिन तारत।
कवन अजामिल किय सुधर्म जिहिं लगियन वार उधारत।
केवट कपि सुकंठ निश्चिर पति बंधुहिं सुखनि सम्हारत।
विश्वंभर जगदीश विरद कत मेरी वार विसारत।

नीति के उत्कृष्ट दोहे :

पंच वर्ष प्रमान लालन ताडये दस वर्ष।
पुत्र षोडस वर्ष मैं गुनि मित्र सदृस सहर्ष।
फूल गंध तिल में जथा तेल काष्ट मधि आगि।
पय मधि घृत गुड़ ऊख में त्यों आत्मा तनु लागि।

प्रेम के महत्व को प्रतिपादित करने वाला काव्य -

अग्निहोत्र बिन वेद नहिं जज्ञ नहीं बिन दान।
कबहुँ न सिद्धि न भाव बिन तातैं प्रेम प्रधान।

काव्य लक्षण को प्रतिपादित करने वाला साहित्य -

तेरह ग्यारह मात्र फिर, तेरह ग्यारह जोय।
सो दोहा विपरीत तैं होय सोरठा सोय।
मिलि विभाव अनुभाव, सात्वक संचारी तथा।
जहँ प्रगटत थिर भाव, रस पूरन वरनत सुकवि।

अचम्भित करने वाला सहित्य - श्री प्रधान हिन्दी साहित्य के एक मात्र ऐसे साहित्यकार हुए हैं जिन्होनें एक ओर श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में वर्णित करते हुए गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'राम चरित मानस' की कथा को आधार लेकर रामायण मानस दर्पण, रामायण मानस तरंगिणी, मंजु रामायण, रामायण मानस चंद्रिका जैसे प्रबंध काव्य ग्रंथों की रचना की, वहीं श्रीराम को रसिक शिरोमणि प्रदर्शित करने वाला ***'प्रमोद रामायण'*** जैसे महाकाव्य का सृजन किया।

प्रमोद रामायण की कथावस्तु संस्कृत के दुर्लभ ग्रंथ ***'अमर रामायण'*** से ली गयी है। प्रमोद रामायण में कुल 62 सर्ग हैं । जिसके चतुर्थ सर्ग में श्री रामचंद्र जी का लोक भोगानन्द वर्णित किया गया है । इनका क्रम इस प्रकार वर्णित है –

1. चंद्रद्वीप 2. भद्रद्वीप 3. पंगक द्वीप 4. प्रभा द्वीप 5. हय द्वीप 6. गज द्वीप 7. ***भोगानन्द***

इसी भोगानन्द में कौशल देश, मैथिल देश हैं, जिनमें क्रमशः अयोध्या और मिथिलापुर नगर हैं।

पंचम विलास (सर्ग) में वानावती स्वर विष्णु कन्या विवाह

का वर्णन है। वानावती पुरी सागर के दक्षिण तीर पर स्थित है। विष्णु भक्त राजा मण्डलेश्वर वहाँ पर राज करता था। इसके दो पुत्र पुरूकान्त तथा महाकान्त थे। मण्डलेश्वर के विमाता पुत्र महावीर तथा सुवीरा थे। जिनकी रानियों से उत्पन्न पुत्रियों का काव्यमय वर्णन का सार इस प्रकार है –

मण्डलेश्वर राजा की रानी चंद्रकरा की पुत्री सुरंजसा थीं। महावीर की पत्नी सुखावली की पुत्री सुकला तथा सुवीर की पत्नी चंद्रवली की पुत्री चंद्रप्रभा हुई ।

एक दिन नारद मुनि स्वेच्छा से उपवन में आये जहाँ उक्त तीनों कन्याओं ने मुनि से आशीष ली । हस्त रेखा देखकर नारद जी ने कहा कि इन तीनों को राम नाम का पति मिलेगा । मुनिराज ने सम्पूर्ण कथा का वृत्तांत समझाया । दशरथ सुत श्री राम का विवाह वसिष्ठ जी को बुलवाकर विधान सहित उक्त तीनों पुत्रियों के साथ सम्पन्न हुआ ।

प्रमोद रामायण ने इस प्रकार के अनेक प्रसंग हैं । इसमें श्री राम व सीता जी के पूर्वजों का भी विस्तृत वर्णन है । अनेक नवीन पात्रों का समावेश भी है। जिससे श्री परमानंद जी के व्यापक पौराणिक ज्ञान का पता चलता है । यथा –

दशरथ जी के भाइयों के नाम – विक्रम रथ तथा यशोरथ राम के चचेरे भाई (विक्रम रथ के पुत्र) भानु प्रभ तथा गुन प्रभ तथा (यशोरथ के पुत्र) भद्र कांति तथा चित्र विक्रम ।

राजा दशरथ जी की बहिन – देव कला जी । इनका विवाह विसालका पुरी के राजा संधिराज के साथ वेद रीति अनुसार हुआ था । देवकला जी के पुत्र नामदेव हुए । ये राम के फफेरे भाई हैं ।

अष्ट गण प्रस्ताराष्टक - श्री प्रधान का ऐसा दूसरा ग्रंथ है जिसमें हिन्दी साहित्य की अद्वितीय जानकारी भरी हुयी है । इसमें प्रत्येक गण के 19–19 लक्षण दिए गए हैं ।

यथा– मगण, यगण, भगण, नगण, जगण, तगण, सगण व रगण के लक्षणों में इनके देवता, फल, तिथि, नक्षत्र, वार, वर्ण, रं देश, थल, जन्म, गोत्र, आयुध, दृग कलायें, रस, वाहन, वेष दिशाभिमुख बताए गये हैं।

बृम्ह कायस्थ कौमुदि में गायत्री मंत्र के 24 वर्णों में प्रत्येक वर्ण पर पृथक–पृथक दोहा रचकर इन्होंने अपनी श्रद्ध व्यक्त की। समस्त 16 संस्कारों का वर्णन किया गया है। विवाहि स्त्री के धर्म, गृहस्थ के कर्त्तव्य आदि वर्णित है। यह ग्रंथ 4 प्रकाशों का है। 33 वें प्रकाश में दार्शनिक दृष्टिकोण प्रतिपादि हुए श्री प्रधान लिखते हैं :–

ध्यान योग तैं ब्रम्ह कौ दरशन जो अभिराम।
ध्यान कहियँ सो तास विधि वरनत अग्र ललाम।

वे ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हुए दार्शनिक चिंतन में ईश्वर व द्वैत, अद्वैत व द्वैताद्वैत रूप में स्वीकार करते हैं।

श्री परमानंद जी प्रधान ने संस्कृत साहित्य का अध्ययन शुक्र नीति के आधार पर 'प्रताप नीति दर्पण' जैसा विशाल ग्रंथ चाणक्य नीति के आधार पर 'नीति सारावली' जैसे ग्रंथों की रचना कर हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की वहीं भक्तगण प्रस्ताराष्टक ग्रंथ में अष्टगणों के 19–19 लक्षण देकर, प्रमोद रामायण में विस्मयकारी किन्तु उदात्त व व्यापक पौराणिक ज्ञान उढ़ेलकर रम्भा शुक सम्वाद में उत्कृष्ट श्रृंगार व भक्ति का प्रतिस्पर्धात्मक चित्रण कर, महेन्द्र धर्म प्रकाश में राजा के न्यायाधीशी कर्तव्य व दण्ड विधान के मार्गदर्शी सिद्धांतों को निरूपित करते हुए राजभृत्य प्रकाश मं आदर्श राज कर्मियों व अधिकारियों के काव्यमय वर्णन प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य के विपुल भण्डार में योगदान देकर बुन्देलखण्ड के यशस्वी साहित्यकार कहलाने का गौरव प्राप्त किया है। इनकी खोजी प्रवृत्ति में भर्तहर सार के अंतर्गत कुरान पुरान को समान स्तर पर महत्व देते हुए साम्प्रदायिक सद्भाव की अलख जगाई गई है। ऐसे श्रेष्ठ साहित्कार को शत्शत् नमन।

डाइट कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ (म०प्र०)

भैया जा बुन्देली धरती, दुःख सबई के हरती।
महुआ मेवा बेर कलेवा, करा–करा मन भरती।।
औंरा, आम, अचार, मकुइयां, गाँवन–गाँवन फरतीं।
कहत गोपाल यहाँ की माटी, हीरा पैदा करती।

भैया अनबोलन न बोलो, बात–बात से तोलो।
कइयक बातन हाथी चढ़ गये, कइयक रस विस घोलो।
वाणी मीठी सदा बोलियो, बोल–बोल अनमोलो।
कहत गोपाल घोल कर मिसरी, सबके मन खाँ मोलो।

इतनी बात हमारी मानो, अपने सम सब जानौ।
जांत–पांत खाँ भूल विसर के दइयो नहीं ठिकानौ।।
खून खून में फरक डारबे, मद में फिरे दिवानो।
कहत गोपाल बराबर सब हैं, सबको एकई बानो।

ई की ऊ सें न तुम कइयो, सदा ध्यान जा दइयो।
धरम–करम, ईमान भुलाने, उनके घर न जइयो।।
भलो करत न कभऊँ काउ को, हरदम बच ते रइयो।
कहत गोपाल, धरम के खातिर ई की ऊ की सइयो।

- गोपाल दास रूसिया
हरिहर रोड, हरपालपुर

बुन्देली लोक गाथाओं का सांस्कृतिक स्वरूप

- डॉ० दुर्गेश दीक्षित

बुन्देलखण्ड के कण कण में शौर्य, आदर्श, प्रेम, भक्ति, परोपवृत्ति, और लोकमंगल की भावना के दर्शन होते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य के मध्य विचरण करते हुए मानव–मन–मयूर नर्त्तन करने लगता है। माँ धरती की कोख में बहुमूल्य खनिज और रत्न भरे पड़े हैं। जिनके कारण वसुधा का नाम वसुन्धरा सार्थक सिद्ध हो रहा है। यहाँ के वन्यप्रान्त, पर्वत प्रदेश, सरिताओं का सुधा सरिस सलिल और शस्य श्यामला भूमि मानव–मन को आकर्षित किये बिना नहीं रहती। कृषक–किशोरियों के ललित कंठों से निस्सृत लोक गीतों और लोकगाथाओं के मधुर स्वर कर्ण विवरों में सुधा रस उड़ेल देते हैं। इस परम पावन वसुन्धरा पर अवतरित कविगण बुन्देलखण्ड के गुण गायन करते हुए नहीं अघाते। कविवर घासीराम जी व्यास की पद्य पक्तियाँ दृश्टव्य हैं:–

"चित्रकूट, औरछौ, कलिंजर उनाव तीर्थ,
पन्ना खजुराहो जहां कीर्ति झुकि झूमी है।
जमुन, पहूज, सिन्धु, वेतवा, धसान, केन,
मन्दाकिनी, पयस्विनी प्रेमपाय घूमी है।
पंचम, नृसिंह राव चंपतरा छत्रसाल,
लाला हरदौल भाव, चावचित चूमी है।
अमर अनंदर्नाय असुर निकंदनीय,
वन्दनीय विश्व में बुन्देलखण्ड भूमी है।।"

यहां के आदर्श लोक साहित्य में लोक संस्कृति का भण्डार भरा पड़ा है। लोकगीतों, लोककथाओं, लोकोक्तियों और लोक गाथाओं में लोक संस्कृति के दर्शन होते हैं।

सच पूछा जाय तो हमारा हिन्दी साहित्य लोक साहित्य की ही आधार भूमि पर स्थित है। लोक साहित्य से ही हिन्दी साहितय को बल प्राप्त हुआ है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लोकर आज तक के शिष्ट–साहित्य को बुन्देली लोकगाथाओं से बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई है। जिनमें लोक संस्कृति का स्वरूप स्पष्ट झलकता हुआ दिखाई देता है। आज के विषाक्त और विकृत वातावरण को नवीन दिशा–निर्देशन का कार्य बुन्देली लोकगाथाओं के द्वारा किया जा सकता है। लोकगाथाओं के लोकोपयोगी सांस्कृतिक स्वरूप का आकलन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है :'–

(१) साम्प्रदायिक एकता : आज संपूर्ण देश में साम्प्रदायिकता का दूषित रूप दिखाई दे रहा है। धर्म और सम्प्रदायों के नाम पर भीषण नर–संहार हो रहा है। यहां तक कि भूत पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को साम्प्रदायिकता की बलि–वेदी पर न्योछावर होना पड़ा। इस घोर विघटन के कारण अखण्ड भारत के खण्डित होने की स्थिति निर्मित हो रही है। ऐसे संकटमय समय में बुन्देली लोकगाथायें साम्प्रदायिक एकता का पाठ पढ़ाती हैं। प्रारंभ से ही हिन्दू और मुसलिमों में धर्म और जाति के नाम पर विघटन और विद्वेष दिखाई देता रहा। कहीं स्वर्ण मन्दिर, कहीं कश्मीर और कहीं राममन्दिर आड़े आता रहा। किन्तु बुन्देली लोकगाथाओं में हिन्दू–मुसलिम एकता के दर्शन होते हैं। सन् 1857 के विद्रेह में हिन्दू और मुसलमानों ने कंधा से कंधा मिलाकर अंग्रेजों को अपने देश से खदेड़ने का प्रयास किया था। दोनों सम्प्रदायों की एकता के बल पर ही देश स्वतंत्र हुआ। वीरांगना लक्ष्मीबाई की सेना में हिन्दुओं के साथ मुसलमान भी प्राणार्पण करने के लिए कटिबद्ध थे।

लोहागढ़ संग्राम में राजा हिन्दूपति की सेनायें हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों का साहस और शौर्य अधिक दिखाई देता है। युद्ध में रज्जब वेग पठान, नूर खाँ, जाफर खाँ और मिर्जा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। लोकगाथा में रज्जव वेग के शौर्य का वर्णन देखने योग्य है।

"रज्जब वेग बखानिये, मल्ल जुद्ध जिहि कीन।
पकर शत्रु के टेंटुवा, डार खास में दीन ।।"

अपनी नव–परणीता वधू को छोड़कर युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ा। लड़ते–लड़ते प्राण त्याग दिये किन्तु वह पीछे नहीं हटा। इसी तरह अन्य मुसलमान वीर भी हिन्दुओं का साथ देते रहे। एक चित्र और देखिये :–

"रज्जब ने उठ कमर में, अपनी कसी कटार।
हिन्दूपति के सामनें, आकैं करी जुहार।।"
प्रबल पठान नोक राखी, सिरें जाफरान।
राखी मुगलानी मिरजा नें भली आन।।
राजा महाराजा हिन्दूपति कौ प्रताप बढ़ो।
नन्दहू किशोर झुक झारी है कृपा न ।।"

झांसी वाली रानी की सेना में हिन्दुओं, मराठों के अतिरिक्त अनेक मुसलमान सिपाही भी थे। इतिहास प्रसिद्ध 'गुलाम गौस' तो उनका प्रमुख गोलन्दाज था। टीकमगढ़ की रानी 'लड़ई सरकार' के दीवान नत्थे खाँ थे। राजा मर्दन सिंह और बखतवली शाह की सेना में अनेक मुसलमान थे। उस समय उनमें किसी भी प्रकार की ईर्ष्या द्वेष की भावना नहीं थी। आज के इस दूषित साम्प्रदायिकता के वातावरण में इस प्रकार की लोक गाथाओं से साम्प्रदायिकता के वातावरण में इस प्रकार की लोक गाथाओं से साम्प्रदायिक सद्भाव जागृत हो सकते हैं। संकीर्ण धार्मिक भावना और स्वार्थ के कारण जो हिंसा भड़क रही है वह अपने आप शान्त हो सकती है। लोक गाथाओं में निहित कथातत्व जनजीवन को

भलीभांति प्रभावित कर सकता है।

(२) राष्ट्रीय भावना : कविवर गुप्त जी का कथन कितना सार्थक और सत्य है – "मनुज नहीं वह पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं" जिस मनुष्य के मन में मातृभूमि के प्रति प्रेम और समर्पण की भावना नहीं है। उसे मानव कहलाने का अधिकर नहीं है। वह तो निरा पशु है, जिसे उदरपोषण के अतिरिक्त कोई ज्ञान नहीं होता। आज के परिवेष में जन–जन के मन में राष्ट्रीय प्रेम जागृत होना आवश्यक है। जब अपने राष्ट्र की गरिमा को नष्ट करने के लिए पड़ोसी राष्ट्र तुले हुए हैं, तब जन–जन का कर्तव्य है कि वे अपने राष्ट्र के गौरव की रक्षा करने के लिए प्राण–पण से तैयार हो जांय। देश को कभी पाकिस्तान का भय कभी चीन की चालाकी, और कभी अमेरिका की चुनौती कष्ट देने लगती है। साम्प्रदायिकता राष्ट्र के विशाल वृक्ष को भीतर ही भीतर से खोखला कर रही है। जब जब देश पर संकट के काले बादल मंडराये, तब–तब देश के नौ जवानों ने प्राणों की आहुति देकर देश की रक्षा की। राष्ट्रीयता तो हमारी परम्परागत धरोहर है। चन्द्रगुप्त, स्कन्द गुप्त और पुरु से लेकर सन् 1857 की गदर तक यह भावना बराबर कार्य कर रही है। सुभाष चन्द्रबोस, सरदार पटेल, चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह और गणेश शंकर विद्यार्थी ने प्राणों की बाजी लगाकर राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया था।

न जाने कितने वीर और साहसी भारतीय राजा अंग्रेजों की सेना से लड़ते लड़ते वीर गति को प्राप्त हुए। राजा हिन्दूपति, धनसिंह, महारानी लक्ष्मीबाई, अवंतीबाई, वखतवली शाह, और राजा मर्दन सिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय है। तत्कालीन वीरों की राष्ट्रीय भावना पर आधारित बुन्देलखण्ड में अनेक लोकगाथायें प्रचलित हैं। जिन्हें सुनकर आज के कायर और निरूत्साही व्यक्तियों के मन में शौर्य का संचार हो सकता है। मदनेश कृत, लक्ष्मीबाई रायछे में रानी के शौर्य और साहस का संकेत मिलता है। वह अंग्रेजों के पक्षधर टीकमगढ़ के दीवान नत्थे खाँ को मेला के बाहर निकालने का आदेश दे देती है–

"बाई ने दीनों हुकम, को यह काँकौ आय।
कहों बेग लै जाय गज, ऊधम रहो मचाय।।"

रानी साहिबा का आदेश सुनकर नत्थे खाँ तिलमिला गया और उसने क्रोधित होते हुए रानी को उत्तर दिया–

"नत्थे खाँ बोलो तबै, वचन सहित अभिमान।
टीकमगढ़ दीवान हम, सुन अबला नादान।।

रानी गद्दार नत्थे खाँ की धमकी सुनकर रंचमात्र भी विचलित नहीं हुई। नत्थे खाँ ने झांसी पर हमला भी किया किन्तु विजय रानी की ही हुई। राजा मर्दन सिंह जीवन भर अंग्रेजों से लड़ता रहा। भले ही उसके कानपुर और तालबेहट के दुर्ग ध्वस्त कर दिये गये किन्तु वह अपने मार्ग पर ही अडिग रहा। अंग्रेज उसकी ललकार सुनकर भाग खेड़े होते थे। उसकी तलवारों के वार देखकर कांप जाते थे। लोक गाथा में वर्णित उसका शौर्य और साहस आज के जन समुदाय के लिए अनुकरणीय है।

कानपुर और तालबेहट के दुर्ग ध्वस्त कर दिये गये किन्तु वह अपने मार्ग पर ही अडिग रहा। अंग्रेज उसकी ललकार सुनकर भाग खड़े होते थे। उसकी तलवारों के बार देखकर कांप जाते थे। लोक गाथा में वर्णित उसका शौर्य और साहस आज के जन समुदाय के लिए अनुकरणीय है–

"दो दो हात चले वीरन के, आड़े हो गये पांव पसार
आंगै बढ़ गये वीर बुंदेला, दोइ दोंइ हातन लये तलवार
भागे गोरा खेत छोड कै, अपने डार–डार हतयार
धरती रंग दई रकत धार सैं, कईयक लाशै, दई बिछाय
महाकाल कौ रूप दिखा रओ, मिटुंअई नई वौ दैसत खाय।"

इस प्रकार की शौर्य प्रपूर्ण पदावली सुनकर कायरों के मन में भी शौर्य का संचार हो सकता है।

लोहागढ़ के राजा हिन्दूपति की सेना के सिपाहियों ने वीरता का परिचय दिया था। जान जेज अंग्रेज सेनापति की सेना के छक्के छुड़ा दिये थे। वीर निर्भीक होकर बढ़कर प्रणार्पन कर रहे थे। जरा उनका साहस देखिये –

"चारक कटे भदौरिया, रज रक्खन रजपूत।
दो निशान तिल वंश के, साबित कटे सपूत।।
छै पठान् साबित कटे, नगर लुहारी खेत।
जाफर खाँ और नूर खाँ, मिरजा जस के हेतं।।"

क्या इन वीरों का बलिदान व्यर्थ जायगा। क्या ये आज के नवयुवकों के लिए प्रेरणा स्त्रोत नहीं है। इन लोक गाथाओं को सुनकर, आजका नवयुवक वर्ग प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। उनके मन में राष्ट्रीय भावना जागृत होगी। आज के नारी समाज के लिए लक्ष्मी बाई अवंतीबाई जैसी अनुकरणीय पात्र हैं।

(३) मान-मर्यादा की रक्षा : भारत जैसे आदर्श प्रधान एवं विश्वगुरू की संज्ञा से सम्मानित देश में मर्यादायें खण्डित हो रही हैं। एक भाई दूसरे भाई का दुश्मन बना हुआ है। पुत्र ने अपने माता पिता को कष्ट दे रहे हैं। सतियों का सतित्व आम बाजार में नीलाम हो रहा है।सच पूछा जाय तो आज न किसी का मान है और न किसी की मर्यादा। मान और मर्यादा स्वार्थ की तराजू पर तौले जा रहे हैं। स्वार्थ सिद्धि के लिए आज का आदमी गधे को भी बाप कहने के लिए तैयार है। स्वार्थ सिद्धि के पश्चात, गौरवशाली और सम्माननीय व्यक्तियों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। इस सन्दर्भ में गोस्वामी तुलसीदास जी की पंक्तियां खरी उतरी हैं–

"गर्ज परें कछु और है, गर्ज सटें कछु और।
तुलसी भांवर के परत, नदी सिरावत मौर।"

आज की इस विषम परिस्थिति में मान–मर्यादा का पाठ पढ़ाने वाली बुन्देली लोक गाथायें संजीवनी औषधि का नाम दे सकती हैं। उनमें निहित कथातत्व और उपदेशात्मक प्रवृत्ति आज

के पथ भ्रष्ट नवयुवकों का मार्ग दर्शन करती हैं। 'सरमन' जैसा पितृभक्त अन्यत्र दुर्लभ है। उसकी पत्नी अपने अंधे सास–ससुर को बहुत कष्ट देती है। बहू के त्रास के कारण अंधे माता–पिता बहुत दुखी रहते हैं। सरमन तो सच्चा पितृ–भक्त था ही। उसे यह सब सहन नहीं हुआ। वह अंधे माता–पिता को कांवर में बैठाकर तीर्थाटन के लिए निकल पड़ा। मार्ग में अंधे माता–पिता को प्यास लगने पर वह पानी भरने के लिए तालाब पर गया और वहां राजा दशरथ के तीर से उसकी मृत्यु हो गई। श्रवणकुमार पितृ भक्ति पर बलिदान हो गया। लोकगाथा का एक चित्र दृष्टव्य है।"चले सरमन वन शोभा कई भांतकी,

कांवर धरें पिता मात की।
सरमन वन को चले डगर कै, कांवरमात पिता की धरकैं,
चलतन प्यास लगी बहुकर कै, बेटा पानी ल्याओ भर कै।।"

क्या यह लोक गाथा, आज के पितृ–प्रताड़ना करने वाले नवयुवकों की भर्त्सना नहीं करती? इसे सुनकर पाषाण हृदय वाला पुत्र भी द्रवित हो जायगा। बुन्देलखण्ड के कुछ महापुरूषों ने बुन्देली संस्कृति की रक्षा करने के लिए प्राणों की बाजी लगाना स्वीकार कर लिया था। मुगलशासन में कोई भी हिन्दू बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता था। किन्तु ओरछेश मधुकर शाह ने बादशाह अकबर की इस आज्ञा का उल्लंघन करते हुए बुन्देली मान–मर्यादा की रक्षा, की थी। अकबर ने अपने दरबार में समस्त हिन्दु राजाओं को यह आज्ञा दी थी –

"देखिये किसी का नहीं यह घरबार है।
जानें आप लोग मेरा यह दरबार है।
तिलक लगाना मुझे सख्त नागवार है।
आप से इसी से यह इसरार है।।"

किन्तु बादशाह अकबर की आज्ञा का मधुकरशाह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि उन्होंने दूसरी बार और अधिक बड़ा तिलक लगा लिया और शाही दरबार में पहुंच गये। बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन करना कोई साधारण कार्य नहीं था। किन्तु हिन्दुओं की मान–मर्यादा की रक्षा के विचार से उन्होने प्राणों की भी परवाह नहीं की। यहां तक कि उनके साहस को देखकर बादशाह ने प्रसन्न होते हुए कहा था–

"आपके ही नाम से लगाया अब जायेगा।
मधुकरशाही यह टीका कहलायेगा।।

क्या आज का कोई नवयुवक इतना साहस कर सकता है? आज का शिक्षित समाज मान–मंर्यादा को रूढ़ि और अंधविश्वास कहकर नकारते रहते हैं। उन्हें आधुनिक फैशन और बनाव ठनाव से अवकाश ही कहाँ मिलता है? सभी पाश्चात्य सभ्यता की होड़ में दौड़ रहे हैं। किसी को अपनी भारतीय संस्कृति की ओर देखने का अवसर ही नहीं है। 'लाला हरदौल' लोक गाथा में नारी के उच्चादर्श को प्रस्तुत किया गया है। यह बुन्देलखण्ड की एक आदर्श लोक गाथा है। इसमें देवर–भाभी के पवित्र प्रेम का चित्रण है। ओरछा के राजा जुझार सिंह की महारानी पार्वती अपने देवर हरदौल से पुत्रवत् प्रेम करती थी। दरबार के कुछ सरदार हरदौल के प्रभुत्व को देख कर ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने राजा जुझार सिंह को हरदौल के प्रति भड़का दिया और कह दिया कि माहराज! महारानी का चरित्र ठीक नहीं है। जुझार सिंह के मन में संदेह तो था ही। अब उनके संदेश की पुष्टि हो गई।

राजा जुझार सिंह ने महारानी पार्वती को आदेश दिया कि तुम आज ही हरदौल के भोजन में विष मिला देना। सुनते ही रानी बेहोश हो गई। हरदौल निर्दोष तो थे ही। रानी दुविधा में पड़ गई। एक ओर पति की आज्ञा और दूसरी ओर निष्कलंक देवर। वह कर ही क्या सकती थी। अंत में रानी के पतिव्रत की ही विजय हुई। उसने विष मिश्रित भोजन तैयार करके देवर हरदौर को आमंत्रित किया। हरदौर को देखते ही रानी मूर्छित हो गई। हरदौर कुछ समझ नहीं पा रहे थे। सचेत होते ही रानी ने सारा हाल कह सुनाया। सुनते ही हरदौल बोले –

"भौजी कैसी सिर्रन हो गई, भैया की कई करनें।
सांसी आ जा नांय मांय की, बातन में नईं परनें।।
विष को कौर बिना कयें खालओ, बात बड़े की मानीं।
भोजन करतन देवर देखो, पागल हो गई रानी।
इतनी कै कैं उड़ गये उनके, तुरतई प्रान पखेरू।
ऐसी जा अनहोनी सुन कैं, रो रये चिरई चरेरू।।"

सत्य की परीक्षा में लाला हरदौल खरे उतरे। रानी पार्वती का पतिव्रत धर्म और लाला हरदौल का पवित्र प्रेम अमर हो गया। वे बुन्देलखण्ड के अमर देवता बन गये। आज बुन्देलखण्ड के गांव–गांव में हरदौल के चबूतरे बनें हुए हैं। मांगलिक कार्य के प्रारंभ में उनकी पूजा की जाती है। विवाह के बाद दूल्हा–दुल्हिन की पालकी उनके चबूतरे पर रूक कर, मनौती मनाती है। बुन्देलखण्ड की नारियां आज भी बड़े आदर से गाया करती है –

"नजरिया के सामने तुम, हरदम लाला रइयौ।
जैसी लाला अबै निभाई, ऊसई सदा निबइयौ।
नजरिया के सामने.........."

रानी पार्वती और लाला हरदौल का आदर्श चरित्र आज पुरूष और नारी समाज के लिए अनुकरणीय है।

(४) नारी जागरण : पुरूष सत्ता को दृष्टि पथ में रखते हुए भारत में नारी का स्थान एक दासी के रूप में ही था। लोग उसे हेय दृष्टि से देखते थे। वह परदे में बंद केवल भोग विलास का ही साधन थी। अपने पति और परिवार वालों की सेवा करना ही उसका प्रमुख धर्म था। पर–पुरूष से वार्तालाप करना तो अलग है, दृष्टि–निक्षेप करना भी पाप माना जाता था। नारी की दीन दशा को देखते हुए भारतीय साहित्यकारों ने नारी जागरण पर बल देते हुए साहित्य–सृजन किया। साहित्य की हर विधा में नारी को प्रमुख स्थान दिया गया। मध्यकालीन बुन्देली लोक गाथाओं में नारी का स्थान सर्वोपरि है। नारियों के पौरुष

और पतिव्रत धर्म के उदाहरण भरे पड़े हैं। उनकी वीरता और साहस को देखकर पुरुष भी की आश्चर्य चकित हो जाते हैं। गोंड़वाने की रानी दुर्गावती ने मुगलों के दांत खट्टे कर दिये थे। महारानी लक्ष्मीबाई नव युवती होते हुए भी महाकाली के रूप में कृपाण लेकर अंग्रेजों की सेना पर टूट पड़ी थी। अवंतीबाई सिंहनी के समान वाडिंगटन पर टूप पड़ी थी। उसकी तलवारें के वार देखकर अंग्रेजों की सेना में हाहाकार मच गया। उसका बलिदान अमर हो गया। इस प्रकार की नारियों का शौर्य और साहस आज के नारी समाज के लिए प्रेरणास्पद है।

बुनदेलखण्ड की "मथुरावली" लोक गाथा आज के नारी समाज के लिए प्रेरणादायक है। उसने नारीत्व की रक्षा के लिए तम्बू में आग लगाकर प्राण त्याग दिये थे। वह डोला में बैठकर ससुराल जा रही थी। मार्ग में मुगल आक्रामक ने उसका अपहरण कर लिया। उसे अपने पातिवृत और सतित्व की रक्षा करना आवश्यक था। उसने तम्बू में आग लगाकर प्राण त्याग दिये। मुगल हाथ मलता रह गया। लोकगाथा में मथुरावली के कथन को प्रस्तुत किया गया वह उस मुगल आक्रामक से कहती है।

"जारे मुगला पानी भर लेआ, प्यासी मरें मथुरावली,
जौ लों मुगला पानी खौ गओ, तम्बू में दैलई आग।
ठांढ़ी जरें मथुरा वली।

उसके पति को अपार दुख हुआ किन्तु उसके भाई को प्रसन्नता हुई। उसने कहा कि :-

रोय चलें बाके बालमा, विहंस चले वाके वीर।
राखी बहना पगड़ी की लाज, ठांढ़ी जरें मथुरावली।"

आज के समय में इस प्रकार की नारियां बहुत कम दिखाई देती हैं जिन्हें अपनी मर्यादा और नारीत्व का ध्यान हो। मथुरावली एक आदर्श बुन्देली महिला थी, जिसने नारी जाति के मस्तक को ऊँचा किया है। आज के नारी समाज को मथुरावली के आदर्श चरित्र से प्रेरणा प्राप्त होती है। इससे बड़ी नारी जागृति और क्या हो सकती है?

(५) धार्मिक भावना : पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में लोग धर्म से दूर हटते जा रहे हैं। आचार-विचार संयम नियम से तो आज के नवयुवक कोसों दूर हैं। इस समय धार्मिक भावना तो केवल नारियों में ही शेष रह गई है। पढ़ी लिखी नवयुवतियों को तो धर्म से कोई प्रयोजन नहीं है। सिनेमा, पार्किंग और होटल का खान पान ही उन्हें अच्छा लगता है। सच पूछा जाय तो उनका ईश्वर तो केवल फैशन ही है। धार्मिक भावना उनके मन में कैसे उत्पन्न हो सकती है? धर्म का अर्थ केवल रूढ़वादिता नहीं है। धर्म मनुष्य को कर्तव्य और संयम-नियम मय सद्मार्ग प्रदर्शित करता है। मन की कलुषित भावनायें अपने आप समाप्त हो जाती हैं। परोपकार दया और अहिंसा आदि उत्तम गुण उत्पन्न हो जाते हैं। व्रत और उपवास से उदरशुद्धि के साथ ही आत्मशुद्धि हो जाती है। चित्त की एकाग्रता मनुष्य को सिद्धि की ओर ले जाती है। मन्दिरों में जाते ही मनुष्य का मन समस्त दुर्भावनाओं को भूल कर हरि के चरणों में लग जाता है। धार्मिक भावना के अभाव के कारण मानवीय गुणों का ह्रास हो रहा है पाशविक वृत्तियां पनपती जा रही हैं। हिंसात्मक वृत्ति धीरे-धीरे बलवती हो रही है। मध्यकालीन बुन्देली लोक गाथाओं में धार्मिक भावना का आधिक्य है। इस प्रकार की लोक गाथाओं को सुनकर आज का युवा किसी न किसी रूप में प्रभावित हो सकता है प्रहलाद और ध्रुव के चरित्र आज के युवा वर्ग का मार्गदर्शन कर सकते हैं। बुन्देलखण्ड की विस्तृत लोक गाथा "जगदेव के पमारौ" एक महाकाव्य से कम नहीं है। यह गाथा 64 दरबारों में विभक्त है। वनरात्रि के अवसर पर गांव के लोग लोकवाद्यों के साथ इस गाथा का गायन किया करते हैं। 'जगदेव' देवी जी का भक्त था। देवी जी की आराधना करते हुए एक बार उसने भाव-विभार होकर अपना शीश काटकर मां के चरणों में अर्पित कर दिया। मां की कृपा से उसके धड़ में नया सिर प्रकट हो गया और जगदेव फिर जीवित हो गया। उससे बड़ी भक्ति भावना और क्या हो सकती है। लोग बड़े प्रेम से गाने लगते हैं:-

"कौना की क्यारन माई, वेला हो चमेली।
कौना की क्यारन अनार, लगे हरे बिरछा झालरे हो माय।।
लंगड़े की क्यारन माई बेला हो चमेली।
देवी की क्यारन अनार, लगे हरे बिरछा।
झालरे हो मांय.....

देवी जी के हर गीत के अंत में जगदेव का स्मरण किया जाता है। "माता जगत की हो भले हो माय"। कारस देव लोक गाथा में माता 'सरनी' की घोर तपस्या और भक्ति भावना का वर्णन है। उन्होंने बारह वर्ष कठिन तपस्या करके 'कारस' जैसा तेजस्वी पुत्र भगवान शंकर के वरदान से प्राप्त किया था।

"बारा बरस तपिया तपी, करे न अन्न अहार।
सरनी गई अस्नान खों, अहे ले तला के पार।।
कमल पै पोंढ़ो राजकुमार"

तपस्या का फल कितना मधुर होता है। यह इस लोक गाथा से स्पष्ट ही है। ओरछेश मधुकर शाह और रानी गणेश कुवरि की भक्ति-भावना तो लोक प्रसिद्ध ही है। मधुकर शाह कृष्ण भक्त थे और रानी रामभक्त। बातों ही बातों में दोनों आराध्यों को लेकर विवाद छिड़ गया। राजा ने कहा कि तुम्हें रामलला यदि इतने अधिक प्यारे हैं तो उन्हें ओरछा ही क्यों नहीं ले आती। यह पति की पत्नी के लिए एक प्रकार की चुनौती थी। रानी को राजा के ब्यंग्य वचन तीर की तरह चुभ गये। उन्हें गम्भीर देखकर राजा ने समझाया कि यह तो परिहास मात्र है इसमें गम्भीर होने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु रानी को अपनी आस्था पर पूर्ण विश्वास था। उन्होनें प्रतिज्ञा की कि जब तक अपने रामलला को ओरछा नहीं ले आऊँगी, तब तक भोजन नहीं

दिन ललित बसंती आन लगे

- जगदीश प्रसाद रावत

सबई ऋतुअन कौ राजा बसंत है। जितनी अपने देश में साल भर में ऋतुऐं होती ऊ में सबसे नोनो जेइ मौसम है। ऐइ सें इयै ऋतुराज कहो जात है। प्रकृति कौ ऋतु खों मन भावन बनावे में भौत योगदान है। मनोरम प्रकृति किये नीकी नइं लगत चौतरफा हरियाली खेतन में फूली पीरी–पीरी पोर पोर उमंग से भरी नई नवेली दुल्हन–सी सरसों। ऋतुराज की अबाई कौ संकेत दै जात। नई कोंपलें कड़ आउतीं। ई ऋतु में प्रकृति नें पेड़न खों एक नई ताकत दई कें कोंपलें और कापिस पेड़न से जल्दी अंकुरात। अगर कोनउ बिरछा में गलती से कुलइयां छल गई कोनउ पेड़ की टहनी टूट गई तौ उतै सें पीका फूट परत प्रकृति प्रदत्त गुण है जौ वसंत कौ।

ऐसी प्रकृति की छटा निहार कें कौन कविमन निठल्लो हो सकत? ऐसे में की गायक कौ मन गान न लगै? ऐसी ऋतु में की के गोड़न में धुँघरू न बंद जैंहें।" बुन्देली बोली के तीन वृहत कवियन में ईसुरी गंगाधर और ख्याली राम को नाम लओ जात है। ईसुरी और गंगाधर ने तौ भौत लिखों वसंत पें। मिथिलापुर की फूल वाटिका में कवि ख्याली खों वसंत वर्णन को मौका मिल गओ–

फूली फूलवान फुलवाई, लखें लखन रघुराई,
टेसू पान तड़ाग तीर के, सोभा वरन न जाई।
क्यारिन में कुंजन की करनी ज्यों विधि हात बनाई
बेली बेल वितानन ऊपर, ऋतु वसंत की छाई।
ख्याली जनकसुता जग जननी, गिरिजा पूजन आई।।

नहि वियोग न सौत घर, नही ग्रहा बलवन्त,
बहू होत कस दूबरी, लागे ललित वसंत।

0 0 0

आली नहि वियोग पिय केरो, मलिन भयो तन तेरो,
सुख सम्पत्ति सब ग्रहा बली है, नही विधाता डेरो।
ऐसी ललित वसंत अवाई, श्रवत समीर छहेरो,
ख्याली राम नायका कौ दुख, कवि जन करौ निवैरौ।

ख्यालीराम ने विरह सिंगार खों बसंत से जोड़ कें विरही नायिका के तन मन की अगन विरह वेदना की हालत भौत बुरई होत। उमंग में हम कल्पना नई कर सकत कै एक वसंत वियोग सिंगार कौ सोउ होत।

तुलसी ने वसंत कौ वरनन दूसरी तरह से करो। वे गीतावली में राम खों वसंत मनवा रय। देखें एक बांकी झांकी –

खेलत वसंत राजधिराज, देखत नभ कौतुक सुर समाज,
बरसत प्रसून वर विवुध वृन्द, जय–जय दिनकर कुमुद चन्दे

ईसुरी ने वसंत कौ बरनन जो एक छन्द में कर दओ वैसे स्यात कोऊ लोककवि नई लिख पाओ। वे अपने खों वसंत में सराबोर करके वसंत के बारे में लिखत–

अब–ऋतु आई वसंत बहारन, लगे फूल फल डारन,
बागन बनन, बंगलन बेलन, बीथी नगर बजारन।
हारन हद्द पहारन पारन, धवल धाम जल धारन।
तपसी कुंटी कन्दरन माही, गई वैराग बगारन,
ईसुरी कन्त अन्त घर जिनके, तिनें दे दुख दारुन।

(पृष्ठ क्रमांक 78 का शेषांश)

करूंगी। इतना कहकर वे अययोध्या की ओर चल दीं। लोक गाथा में कहा गया है :–

"करकैं चलीं प्रतिज्ञा मन में, धरकैं ध्यान प्रभू चरनन में,
जो लौ करों नईं भोजन मैं।
जो लौ मंजु मूरत श्री राम जू की नई पाई–धन्न पूरब की कमाई,

उनकी प्रतिज्ञा और भाव भक्ति से प्रभावित होकर रामलला, अपने आप उनकी गोदी में आ गये –

"डूबा साधे धर कैं ध्यान, गोदी में आ गये भगवान,
रानी खौं भओ सुक्ख महान।
लगा छाती से रामचन्द्र निकर आई, धन्न पूरब की कमाई।"

ये थी भाव भक्ति एक नारी की। उसकी दृढ़ता और लगनशीलता को देखकर भगवान भी द्रवित हो गये। इस प्रकार की लोक गाथायें क्या आज के नारी समाज को प्रेरित नहीं करतीं? इस प्रकार की अनेक लोक गाथायें बुन्देलखण्ड में भरी पड़ी है। जिनमें बुन्देलखण्ड का शौर्य, मर्यादा, प्रेमादर्श का रूप दिखाई देता है। लोक गाथाओं में बुन्देली संस्कृति का भण्डार भरा पड़ा है। बुन्देली संस्कृति की सुरक्षा हेतु लोक गाथाओं के अक्षय भण्डार को सुरक्षित रखना आवश्यक है।

- कुण्डेश्वर (टीकमगढ़)

आम के बौर मन को मदहोश कर रये, बालायें अल्हड़ खेत–खरयानन में हिरनी–सी कुलाचें भर रईं, ऐसे में प्रियतम से मिलन की मनोकामना कौन सुधर युवती न करै। मन्मथ (कामदेव) अपने फूलन के बाणन से जब अक्षत यौवन खों वेध है तौ राम से काम परत है। बसंत ऐसे में मधु मास और ऋतुराज से प्राणघातक बन जात। प्रकृति में लालिमा श्वेत रंग और सर्वत्र हरियाली छाई है। कांस की सफेदी ऐसी लगे जैसे कोउ ने धरती की हरी चुनरिया पें चांदी की वर्क से गोट लगा दई होय। बेल बूटे बना दय होंय। ऐसे में गंगाधर गा दठत –

दिन ललित वसंती आन लगे, हरे पत्र पियरान लगे,
घटन लगी सजनी अब रजनी, रवि के रथ ठहरान लगे।
ख्यालीराम के ख्याल से वसंत पूरी तरह से अवनिक नैया।
व्रत उनके मन मानस खौं रै–रै के अलग–अलग रंगन में रंगत।

एक उनकौ एक रंग और देखौ –

बालम सोच लेव बेदर्दी, बागन छाई जरदी,
कोंप कली विध हम खां दीनी, उन खां दई नामरदी।
अब रस परो कलिन के ऊपर, भौंर करत है गरदी।
ख्यालीराम कोंप पै बगिया, हरदम चाहत सरदी।

बुन्देली ग्राम्य गीतन में ऐसी नोंनी वसंत की छटा निहारवे खौं मिलत है कै मन मुग्ध हो जात हैं। इन गीतन में संयोग और वियोग सिंगार के संग–संग प्रकृति कौ अनूठौ वर्णन बरबस अपनी ताई खेंच लेत। इन गीतन में चुम्बकीय असर –

जीवन के वसंत न जाने कितने बीत गये।
जितने बीते जीवन घट–रस उतने रीत गये।

कवि जगदीश्वर नैराश्य के स्वर में उक्त बात करते हैं। वसंत सरस्वती के उत्सव से सोई जोड़ो जात। वसंत पंचमी खों महाप्राण निराला ने जनम लओ तौ। कवि कौ नैराश्य कौ स्वर बेर–बेर के दिल–दिमाग में गूंजत –

जीवन की आपाधापी में, उमर की नापा नापी में,
कितने आये न जाने, कितने मनमीत गये।
रोया है तो गायेगा ही, आया है तो जायेगा ही,
जाना नहीं भविष्य आज तक कई अतीत गये।
जीवन के वसंत न जाने कितने बीत गये।

वसंतोत्सव में अगर शहीदन के केसरिया बाने की बात करें तो वसंत कौ त्योहार अधूरो मानो जात। वसंती चोला कै सोऊ ई बुन्देली चौकड़िया में बात करें।

पैरो है केसरिया बानों, दूला लग रओ कानों,
ई बानें खों पैर भरो बौ सांसद जीवौ जानौ।
जीवन जल कौ क्षणिक बबूला, नैया कछू ठिकानौ।
जगदीश्वर मिल पानी ऊपर तेल घांई उतरानौ।

केसर रंग की बात बसंत में मन खों झकझोर कर डारत देखे –

केसर रंग कसक रओ तन पै, रंग चढ़ै न मन पै,
रंग–अंग सरबोर चुचारओ, घालें गोरी धन पै।
बासंती रंग की पिचकारी, मार दई जोवन पै,
जगदीश्वर कौ बदन निगर गओ, दोष न दो दरपन पै।
तन मन बारन, डारन–डारन, आओ वसंत बहारन,
नदी किनारन ऊपर पारन, बगरौ बाग बहारन।
क्यारन–क्यारन और पतारन, फूल फलन के भारन,
नद–नरवन की धार न प्यारे भौंरन की गुंजारन।

0 0 0

द्वारन–द्वारन और दीवारन, अम्बर सौ विस्तारन।
जारन–जारन, पेड़ हजारन, धरती खौं उल्दारन।
खुशबू भरी बयारन में जा सब वसंत के कारन।
वे उदास जिनकौ 'जगदीश्वर' जीवन आओ उतारन।

ऐसे ऋतुराज वसंत की आओ हम सब मिल के आगवानी करें। ऋतुराज ई मौसम पै मेहरबान भओ है। नई तौ लगत हतो कै पानी को दोंदरा साल भर परै। पै वसंत शुभ सन्देशा लै कै हमाय ई तन में आओ है। भले पधारे जू। स्वागतम् वसंत।

- कमला कॉलोनी, छतरपुर

---

*धान गिरै सौभागे का, गैहूँ गिरै अभागे का।
बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार,
बिन महरारू घर करै, चौदह साख लबार।
तीतरपंखी बादरी, विधवा काजल रेख,
वह बरसै वह घर करै, यामें मीन न मेख।

*सींग मुड़े, माथा उठा, मुँह का होवे गोल,
रोम नरम चंचल करण, तेज बैल अनमोल।
नीले कन्धा बैगन खुरा, कबहुं न निकले कंधाबुरा।
छोटा मुंह औ ऐंठे कान, यही बैल की है पहचान।
हिरन मुतान और पतली पूंछ, बैल बिसाव कंत बेपूंछ।

बुन्देली कहावतें

- श्रीमती दीप्ति मिश्रा

यत्र–तत्र बुन्देली वसुंधरा पर प्रयुक्त कहावतों का हमने संकलन किया है। इन कहावतों का अर्थ हमनें अपनी समझ से किया है, हमारा प्रयास यह है जो कहावतों के रूप में बुन्देली साहित्य बिखरा है उसे लिपिबद्ध किया जाये। कहीं ऐसा न हो कि हमारे बुजुर्गों के साथ इन कहावतों का भण्डार भी विलुप्त हो जाये।

(1) ''खिलापारे को नांव न होय, गिरापारे को नांव हो जायें''
अर्थ : अच्छा करने पर प्रशंसा नहीं मिलती परन्तु यदि अचानक दुर्घटना घट जाये तो बदनामी तुरन्त मिल जाती है।

(2) ''भोंदू बना की उल्टी रीत, भर भादों में उठावें भींत''
अर्थ : मूर्ख आदमी सोच समझकर कार्य नहीं करता जिस कारण हानि उठाना होती है।

(3) ''बिना मरें सरग नई मिलत''
अर्थ : बिना अपने प्रयास के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है।

(4) ''शक्कर (गुड़) हाँ सोंज, मठा हाँ न्यारे''
अर्थ : सुख में साथ देना, दुख में अलग हो जाना।

(5) ''जल में दोष करम में कीरा, जाँ देखो सों हीरई हीरा''
अर्थ : अकर्मण्य व्यक्ति हर जगह दोष ढूंढता है, जबकि कर्म करने पर हीरा मिल जाता है।

(6) ''सासें न भावें, सों बऊएं बताबें''
अर्थ : खुद को अच्छी वस्तु न लगने पर दूसरों को देना।

(7) ''लोक चलें मोय हूंमस लागी''
अर्थ : दूसरों को देखकर स्वयं वैसा करना।

(8) ''देखत की धन नोनी, राटा कटै न पोनी''
अर्थ : आदमी देखनें में अच्छा परन्तु कुछ काम नहीं आता।

(9) ''कनवाँ अपनों टैट न निहारे, फुली–पराई पर–पर देखे''
अर्थ : अपना दोष न देखना, दूसरों की बुराई उजागर करना।

(10) ''आप के आप संगे बगल चाप''
अर्थ : खुद जाना साथ में दूसरों को ले जाना अथवा स्वयं काम न करना, साथ में दूसरों को भी न करने देना।

(11) ''कारौ कबरौ कोऊ न बचे''
अर्थ : समानता का व्यवहार।

(12) ''करतूत करकें दिखाना''
अर्थ : काम करके सफलता प्राप्त करना।

(13) ''दूदें नहावो, पूतों फलो''
अर्थ : समृद्धि के लिए दुआयें देना।

(14) ''दोई दीन सें गये पाडें, हलुआ मिले न माड़े''
अर्थ : स्वार्थ के कारण सभी लाभ एक साथ लेने की चाह में कुछ न मिलना

(15) ''उतन्ना कौ फगवारौ''
अर्थ : अनावश्यक रूप से प्रदर्शन करना अथवा अत्यधिक उपयोगी सिद्ध करना।

(16) ''चढ़ाए की नाऊन''
अर्थ : बिना कार्य भी घूमना या ऊपर–ऊपर फिरना।

(17) ''सीखो बेटी आप खाँ, माई खाँ न बाप खाँ''
अर्थ : ज्ञान का उपयोग आदमी अपने लिये करता है किसी को उपयोग के लिए नहीं देता।

(18) ''ढेढ़ पोली कुदवा और मिर्जापुर की हाट''
अर्थ : कम साधन होने पर बड़े व्यापार की सोचना।

(19) ''सीखें सुहारीं टँगीं, लल्ला खातइ नईंयां''
अर्थ : अत्यधिक सरल कार्य भी न करना।

(20) ''रात में सोबो, दिन में काम, कबै बोलहो सीता राम''
अर्थ : आराम और काम की व्यस्तता के कारण ईश्वर का स्मरण न करना।

(21) ''दूध मोरो, पूत मोरो, घी मोरो, मठा चाये जो कोई ले जाये''
अर्थ : महत्वपूर्ण पदार्थ का स्वयं उपयोग करना, कम महत्व की वस्तु दूसरों को देना।

(22) ''हांथ पांव के कायले, मों में मूछें जायें''
अर्थ : आलसी आदमी स्वयं का काम नहीं कर सकता।

(23) ''मांग हाँ तेल नईंयां, मुंस कात मगौरा खानें''
अर्थ : साधनहीन होते हुए अधिक अपेक्षायें करना।

(24) ''नीलू के नौ मायके, गलन–गलन ससुराल''
अर्थ : कहीं भी जाकर अपना कार्य सिद्ध करलेना।

(25) ''रिपट परे की हरगंगा''
अर्थ : अनचाही घटना घट जाने पर घटना के अनुकूल काम करना।

(26) ''दोउ पलीतन दै दौ तेल, तुम नाचौ हम देखें खेल''
अर्थ : दोनों पक्षों को लड़ाकर तमाशा देखना।

(27) ''घर के देव ललायें, बाहर के पूजन जायें''
अर्थ : घर के देवता की इज्जत न कर बाहर के देवता की इज्जत करना।

(28) ''घर में आये नांग न पूजें, बामी पूजन जायें''
अर्थ : समय पर कोई काम न करना बाद में व्यर्थ घूमना।

(29) ''दूबरी और दो असाढ़, चरन गयीं दूर हार''
अर्थ : नुकसान पर नुकसान या हानि के बाद और हानि होना।

- अम्बेडकर भवन के पीछे,
किशोर सागर, छतरपुर

कृष्ण भक्त मुस्लिम कवि एनसांई

- डॉ० श्रीमती वंदना जैन

एनसांई बुन्देलखण्ड के उन भक्त कवियो में से हैं, जिनकी सम्पूर्ण काव्य रचना को अभी तक प्रकाश में आने का सुयोग नहीं मिला। सन्त कवि एनसांई का जन्म सन् 1849 में ग्वालियर में हुआ था। आपको अपनी जन्मभूमि से अटूट अनुराग था। आपका पूरा नाम 'एनुल्ला हुसैनशाह'' था परन्तु आपको एन, एनुल्ला, एनानंद और एनसांई, के नाम से स्मरण किया जाता है ।

आपके ह्रदय में बचपन से ही सांसारिक विषय वासना के प्रति उदासीनता थी, फिर भी आपने माँ के आग्रह से 20 वर्ष की अवस्था तक संसार के रागरंग को देखा परखा, और अन्त में वैराग धारण कर फकीरी का बाना ग्रहण कर लिया अपने जीवन पर प्रकाश डालते हुये स्वयं कवि ने लिखा है –

जनम लियो गढ़ ग्वालियर , जन कैसे बड़भाग।
बीस बरस कुल धरम के किये सभी खटराग ।।
किये सभी खटराग ,सीखा माता की लीनी।
जो सेवा परताप प्रीति अपनी भर कीनी ।।
अब सब छोड़ा कुल धरम "ऐन" लिया वैराग।
जनम लियो ,गढ़ ग्वालियर जन कैसे बड़भाग ।।

ऐनसांई दरिया दिल सूफी सन्त थे। सन 1872 में केवल 23 बर्ष की उम्र में ही आपनें सूफी सम्प्रदाय के अर्न्तगत रसूलशाही फिरका में दीक्षित होकर फकीरी कबूल कर ली थी। कुछ दिनों तक आप अजमेंर शरीफ और दिल्ली में रहे। बाद में दतिया की सिफशाह टौरिया पर स्थाई रूप से रहने लगे। भगवान कृष्ण आपके उपास्य थे। आपने गीता का अध्ययन, मनन और चिन्तन कर उसका सरस पद्यानुवाद कुंडलिया छन्द में किया। आपनें गीता के आध्यात्मिक रहस्य को, सरल सहज ढंग से अभिव्यक्त कर उसे लोक प्रिय वनाने की कोशिश की। ईश्वरीन्मुखी प्रेम (इश्क हकीकी) में साधन और साध्य को एकाकार होना अनिवार्य बताया है। एनसांई के राम या हजूर आपके रोंम–रोंम में रम रहें है। आप स्वयं लिखते हैं–

रोम रोम में भिद रहा, सव तन में भर पूर।
ख्वाव ख्याल सब छोडकर, एन भजो भरपूर।।
राम राम जब तक कहो, जब तक जानो दूर।

कवि ऐंनसांई की कुण्डलिया छन्द बहुत प्रिय था, वास्तव में अपने काव्य कौशल द्वारा हिंदी साहित्य के इस विशिष्ट छंद पर अपने ब्यक्तित्व की अमिट छाप अंकित की है। आपकी कुण्डलियों की संख्या एक हजार से अधिक है। इनका प्रचार–प्रसार आज भी अलवर, जयपुर अजमेर और दतिया में आपकी शिष्य मंडली में है। ऐनसाई जितनें सरल थे उतनी ही सादगी से कविता में अपने विचारों को रखनें में सिद्धहस्त थे–

हिन्दी पढ़ा न फारसी, कछू न अक्षर ज्ञान।
अनगिनती कुण्डली कहीं, वेद के अर्थ पुरान।

संत तो जनहित और समाज हित में ही सारा जीवन गुजार देते हैं। उन्हें किसी धन दौलत, पद प्रतिष्ठा की न लालसा होती है और न ही आकांक्षा रहती है। ऐनसांई परमहंस कोटि के फकीर थे। नर से नारायण का तत्व आपने समझ लिया था। आपकी आन्तरिक भावों की सहज अभिब्यक्ति जन जन के मन को छू लेती थी। आपकी काब्य प्रतिमा का परिचय शब्दों में बाँधा जाना अत्यन्त कठिन है। आपने सूफीमत के चारों मुकामों शरियत, भारकत तरीकत और हकीकत का भारतीय आध्यात्म के साथ सुन्दर विवेचन कर यह सिद्ध कर दिया , कि ईश्वर प्रेम की नौका पर बैठकर ही संसार का संतृप्त मानव भवोदधि पार कर सकता है। सम्पूर्ण चराचर हृदय जगत को आप परमात्मा का रूप ही मानते थे–

ब्रम्ह रूप यह सब जगत, जहाँ लौ जौ आकार।
ब्रम्ह उपजावत ब्रम्ह को , ब्रम्ह ब्रम्ह आधार।।

कवि ऐनसांई आध्यात्मिक ऊर्जा से अभिमंडित एक सच्चे साधक कवि थे। कवि का मनोबल बहुत ऊँचा था। संकल्प शक्ति प्रवल थी। आप जब चाहे मन की चंचलता और शरीर की सक्रियता पर रोक लगाकर अनन्त सुख, अनन्त शान्ति और अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति कर लेते थे। आप अपनी आत्मा को अपना सच्चा यार मानते थे–

घोडा मेरे पैर हैं जिन पर मैं असवार ।
मरजी माफक हाथ है, दोनों खिजमतगार।।
दोनों खिजमतगार चलें, मरजी से भाई ।
वे मरजी नहिं होइ, लखो इनकी चतुराई।।
'ऐंन' हमारी आत्मा, सांई हमारा यार।
घोडा हमारे पैर है , जिनपर मैं असवार।।

कवि ऐनसांई की दृष्टि में जीव कठपुतली के समान है, और उस कठपुतली को नचानें वाला परमात्मा है। देखिये–

कठ पुतली की तरह तन, तन मेरा है यार।
सॉस जो मेरे बीच है, सोई बंधौ है तार।।
सोई बंधौ है तार, हिलाय चलाय गुसांई।
चाहे जैसे नाच नचाय, बैठ घर पांई।।
पुतली वाले की तरह, ऐंन' आप करतार।
कठपुतली की तरह तन, तन मेरा है यार।।

आप मानते थे कि खुदा कि दृष्टि में न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान है, ये सब भेद मनुष्य के बनाये हुये है। दुनियाँ में जन्म से ही न कोई छोटा है, और न बड़ा। आप राजा रंक, फकीर

महाबली छत्रसाल बब्बा जू

- जयेन्द्र सिंह परमार

युगों-युगों से हम हिन्दू संस्कृति के अनुसार सनातन धर्म को मानते आये हैं। इसमें हमारे ऋषियों ने हमें सिखाया है कि हमारा परम ब्रम्ह परमात्मा एक ही है। इसके बाद तीन अंश अवतरित हुए हैं जो ब्रम्हा, विष्णु और महेश के नाम से जाने जाते हैं। यह इनका पुरुष रूप है। इनके साथ तीन नारियां शक्ति के रूप में इनके साथ हैं। ब्रम्हा के साथ सरस्वती जी, विष्णु जी के साथ लक्ष्मी जी और महेश जी के साथ दुर्गा जी हैं। बिना इन शक्तियों के ये देव भी कुछ नहीं कर सकते। इसी प्रकार बिना पुरुष के नारी अधूरी है और बिना नारी के पुरुष अधूरा है। इन शक्तियों को हम आज -वर्तमान में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के रूप में देख रहे हैं। सरस्वती जी के आशीर्वाद से इतिहास के आकाश में सूरदास, तुलसीदास, मीरा आदि नक्षत्र की तरह चमक रहे हैं। दुर्गा जी के आशीर्वाद से महाराणा प्रताप, शिवाजी, आल्हा ऊदल दिखाई पड़ते हैं। लक्ष्मी जी का आशीर्वाद सब पर है। इसी कसौटी पर जब हम छत्रसाल को देखते हैं। तो सोला साल की आयु में ये जय सिंह जो मुगल सेनापति थे से मिले और उनके कहने पर दिसम्बर 1665 से फरवरी 1666 ईसवी तक साथ रहे। बीजापुर के आक्रमण में इनके साथ रहे। 1667 के प्रारम्भ में जय सिंह को औरंगजेब ने वापिस बुला लिया। जय सिंह की जगह बहादुर शाह आया जाते समय उन्होंने छत्रसाल से उनकी सिफारिश बहादुर शाह से करने को कहा। इसका उत्तर उनके मुखारबिन्दु से निकला –

"करहि सबल पर चोट, निबल पर घाव न घल्लहिं।
द्वरद मत्त हठ हनहिं, नहिं लंघन कर चल्लहि।।
मिलय तो या विधि खांहि, कुलहिं कबहू न लजावहि।
प्राण रहहि चह जाहि तजें न वंश सुभावहि।।
रीत यही जयसिंह जू, मृतक भये फिर नीह छुअहि।
तर फराय तलफय जलघ तलघ रूधिर केहरि पिअहि।।

बहादुर शाह इनके पिता का मित्र था। देवगढ़ युद्ध में छत्रसाल इस मुगल सेना में रहे। देवगढ़ विजय शाही सेना ने की। देवगढ़ मुगल सेना ने लूटा। बहादुर शाह विजयी हुआ। घायल छत्रसाल को किसी ने देखा। इसलिये शाही सेना से अलग होकर शिवाजी से माघ सुदी 5 सम्वत 1724 (दिसम्बर 1667) को भेंट हुई। शिवाजी 40 साल के थे और छत्रसाल 18 वर्ष 6 माह के थे।

सन 1670 में दतिया के राजा शुभकरण भी उसी तरफ कहीं भ्रमण कर रहे थे। उनको अपना समझ कर मिले। छत्रसाल ने अपना लक्ष्य बताया तो शुभकरण के एक कवि ने असहाय समझ कर कहा।

किन सहारा किन मति दई, कितिक खजाना हाथ।
गोडत हो तुम शाह सो, कितिक सिपाही साथ।।

छत्रसाल का उत्तर–

प्रभु सहाय गुरु मति दई, खलक खजाना हाथ।
लोभ तजे लोहा गहैं, यही सिपाही साथ।।

अब दैलवारा निवासी महाबली तेली जिसे छत्रसाल बचपन से मम्मा कहते आये और जब तक लाल कुंवर जिन्दा रही तब तक इन्हें दद्दा कहती रही। महावली प्यार से जन्म से छतुआ कहता आया जबकि और सब लोग छत्रू राजा कहा करते थे। महावली से धन लेकर 5 घोड़े और 25 आदमी अपने साथ तैयार किये। उनके श्री मुखारबिन्द से ये शब्द निकले, इन पच्चीस वीरों में हर जाति के आदमी थे –

(पृष्ठ 82 का शेषांश)

और सन्यासी में कोई भेद नहीं मानते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन संतो, साधुओं, फकीरों और साहित्यकारों के सम्पर्क में ही बीता। आपकी बहुत सी प्रकाशित और अप्रकाशित रचनायें "बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय झांसी " में सुरक्षित हैं। डॉ0 गुलाबखान गौरी नें ऐंनसांई के उपलब्ध ग्रन्थों का विवरण निम्नप्रकार दिया है–

(1) ऐनुल्लाह कुंण्डली संग्रह (2) स्वयं प्रकाश (3) उपदेश हुलास (4) सिद्धान्त सारिका (5) भगवत प्रसाद (6) सिद्धान्त सार (7) ऐनानंद सागर।

दतिया को अपनी काव्य साधना स्थली बनाने वाले उदार चेता एनसांई की प्रेमानुभूति में दिल गहराई, एवं विरह की आकुलता है। आपने राम –रहीम के, कल्पित भेद को भुलाकर तीनों लोकों तथा चौदह खण्डों में प्रेम का उज्जवल प्रकाश देखा है। अपनी धार्मिक आस्था और विश्वास की परिधि से आगे बढकर रामकृष्ण की भक्ति में स्वयं को अर्पित कर दिया है इसलिए भारतेंन्दु हरिश्चन्द्र ने मुस्लिम कवियों के हिन्दी प्रेम तथा उनकी साहित्य साधना को देखकर लिखा है–

" इन मुसलमान प्रिय जनन पै , कोटिक हिन्दु वारिए।"

- सहायक प्राध्यापक हिन्दी
नेहरू शास0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर (मालवा)

ऐसे नहि हम चाहत हार कि, आज तुम्हें कल और को चाहे।
मैक दे आँख निकाल वही, यदि दूसरी ओर करे जो निगाहै।।
लाख मिले तुम से बढ़ कें, तुम्ही को चहें तुम्हीं को सराहै।
देह रहे जब लो जग में, तब लो नेह को नातौ निवाहै।।
लाख घटे कुल साख न छाड़िये, वस्त्र फटे प्रभु औरहु दैहैं।
द्रव घटे घटता नहि कीजिये, दैहे न कोऊ पै लोक हसैहैं।।
भूप छता जल राशि को पैरवो, कौनहु वेर किनारे लगे हैं।
हिम्मत छोड़ते किस्मत जायेगी, जायगो काल कलंग न जैहें।।

छत्रसाल जू देव को कभी घोड़े की रकाब से पैर नीचे निकालने का मौका नहीं मिला एक से एक बहादुर मुगल सेनापति औरंगजेब दिल्ली से भेजता रहा। ऐसे संकट के समय में उनके मुखारबिन्द से अपने इष्ट के लिये निकले शब्द इस प्रकार हैं –

जापै पखि गाढ़ो तो तुमही कें पुकारवि ठाडो
तुम ही उवारो भई दीन हुय रहत है।।
जैसे रख्यो गजराज वैसे राख लीजे मोह आज
द्रोपदी की लाज या तिहारे हाथ रहत है।।
निकसत न प्राण कष्ट होत है कृपा निदान।
कहो नृपति की पति कैसे कै रहत है।।

करुणा निधान अब मूंदो जन कान हरे, धावो बृजनाथ चीर छूटन चहत है।
वाहन बुढ़ानो कै छोड़ धरवि वानों कैधो मोह पै रिसानो कैधो ऐसही चहत है।
करन अभिमानी जे सुने बड़े वीर दानी, इनकी मति बोरानी चुपचाप हुये रहत है।
पांडव की दासी होत सभा बीच हांसी, अति चित्र में उदासी कोऊ बीच न गहत है।
काको पुकारो काको मारग निहारो नाथ, तुमही समारो चीर छूटन चहत है।
सत्य वादी नृपति जुवा युद्ध को न नाही करत, लेखौ कर योधन लहै सकुनी को मत है।
लै लेव राज्य धन अम्बर सब द्रोपदी को, खीचौ एक पल में या दुसासन कहत है।
भनत छत्रसाल जमा बड़े–बड़े महारथी, दूशासन पायी चीर अम्बर गहत है।

काको पुकारो काको मारग निहारो, फेर तुमही समारो चीर छूटन चहत है।।
बैठे भट भीष्म कर्ण पारथ से, सभा बीच नीत औ अनीत दुष्ट नेंकहू गने नही।
साधू सुचिनारी मान खण्ड वे खरो है खल, कृष्ण को पुकारो फेर कृष्ण क्यों सुने नही।।

कहै छत्रसाल दियो वसन बढाय श्याम, प्रभू प्रभुनाई आवे अंधज मने नहीं।
द्रोपदी की दीनता, दयालुता, दयानिधि की, दुष्टता दुशासन की कहत बने नहीं।।
कौरव कुल वंश में अकरम उदै भयौ, बाडो छल छद्रम अति अधंज के मेह में।
पाण्डव की होत मान खण्डना सभा बीच, त्रिया चाह हये पुकारी गोविन्द के सनेह में।।

चीरन के बढ़के अटम्बर आकाश लगे, खींच खींच करत खल पावन न छेट में।
भक्तन के काज वृज राज लाज राखवे को, आपहू बजाज भये, द्रोपदी की देह में।

छत्रसाल महाराज पर माँ सरस्वती की अटूट कृपा थी य… उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध होता है। इसके साथ–साथ उनकी … पंक्तियां भी सरस्वती–कृपा को रेखांकित करती हैं–

राजी सब प्रजा रहे ताजी रहे सिपाह, छत्रसाल व राज को बा…
न बांको जाय।
जो बीती गजराज पे सो बीती अब आय। बाजी जान बुन्देल…
की राखो बाजीराव।
विनती नृप छत्रसाल की कोऊ होहु नरेश। पुन्न हमारो रखिय…
कहि है सकल कलेश।
छत्रसाल के दान को, कर है खोद विनोद। जर जैहे जर मू…
से मर जैहे विरचोद।

महाबली छत्रसाल को दुर्गा जी का आशीर्वाद प्राप्त था जिसका परिणाम था कि उन्होने आजीवन युद्ध लड़े और उनमें सफलता प्राप्त की। उनके जीवन काल के युद्धों का विवरण निम्नानुसार है –

सन्/तारीख	किससे युद्ध हुआ	युद्ध स्थल	परिणाम
1664–65 (9–1–1665)	दक्षिण में हिन्दुओं से	बीजापुर	बहादुर शाह के साथ रहे। जयसिंह ने सिखाया कि जिस… लड़ना है उसके बुद्धि विद्या सीखो।
1667	कोरम कल्ल	देवगढ़	छत्रसाल घायल हुये। विजय बहादुर शाह की हुई।
1671	लोकपाल सिंह	सहरा	पिता माता के बलिदान का बदला लिया। 5 घोड़ा 25 आदमी…
1671	फिदाई खाँ	औरछा से अतरार	औरंगज़ेब ने ओरछा के रामराजा का मन्दिर तोड़ने भेजा थ… डबरा के पास मारा।
1671	मुहम्मद हासिम	सिरोंज	परास्त किया।
1672	खालिक	धामोनी	मुगलों का मददगार था, परास्त किया।
1672	बघेल राजा	मैहर	मुगलों का मददगार था, परास्त किया
1672	केशव राव दांगी	मैहर	परास्त किया।
1672	सैयद बहादुर	सागर	परास्त किया।
1673	रण दूल्हा	धामोनी गढ़ा कोटा	परास्त किया।
1673	रूहल्ला खां	बंसिया	परास्त किया।
1673	रूमी खान रूहल्ला खाँ	वंसिया	परास्त किया।
1673	इन्द्रमणि	ओरछा के राजा	इन्द्रमणि ने औरंगजेब के इशारे पर छत्रसाल की भूमि प… आक्रमण। छत्रसाल से परास्त हो समझौता किया।

सन्/तारीख	किससे युद्ध हुआ	युद्ध स्थल	परिणाम
1678	मुनव्वर खाँ	घूम घाट	पराजित किया।
1678	मुहम्मद हासिम	कटिया	छत्रसाल विजयी।
1679	तहव्वर खाँ	सागर (सड़वा बाजना)	चन्द्रपाल सिंह की बेटी के समय आक्रमण और राजगढ़ में परास्त
1679	तहव्वर खाँ	राम नगर	हार कर भागा।
1679	करम इलाही	कालींजर	कालींजर अपने अधिकार में लिया।
1679	तहव्वर खाँ	राठ पनवाड़ी	पराजित किया।
19–11–1679	सदुरूद्दीन	धामोनी	पराजित किया।
1679	हिम्मत खाँ	इन्दुरखी	पराजित किया।
1680	अब्दुल समद	बेतवा किनारे शादीपुर मे	पराजित किया।
6–2–1680	रण दूल्हा खाँ	सिरोंज	पराजित किया।
1680	शेख अनवर खाँ	खैरागढ़ मे	जादू के प्रयोग से युद्ध। उसी में उसकी मृत्यु
14–4–1680	सदरूद्दीन	राठ के पास चिल्ला, नौरंगाबाद	परास्त किया।
1680	अब्दुल हमीद	चित्रकूट	परास्त किया।
1680	अब्दुसमद	भेलसा में	परास्त किया।
1680	वहलोल खाँ	मड़ियादूह	राजगढ़ मे मारा गया।
1682	मुराद खाँ	जसो सुहावल	कुटरो होड़कर महोबा में मारा।
1682	इखलास खाँ	गढ़ाकोटा	मारा गया।
1682	शमशेर खाँ तथा मुहम्मद काजिम	राजगढ़	नरसिंगढ़ में पराजित।
1684	शेर अफगन	मटोंध	धन देकर भागा। छत्रसाल का अधिकार।
1684	शाह कुलीन	ऐरच राठ	पकड़ा गया, धन देकर चला गया।
1684	शेर अफ़गन, पुर दिल खाँ	भेलसा	युद्ध मे मारा गया।
1685	पुरदिल खाँ के स्थान पर गैरतखाँ	राठ से धमोनी तक	राठ से धामोनी तक की भूमि छत्रसाल के अधिकार में आयी
1686	दिलावर खाँ	धामोनी	दिलावर खां जान बचाकर युद्ध से भाग गया।
1686–96	अनेक फौजदार	धामोनी क्षेत्र	लगातार अनेक जगह युद्ध अंत में धामोनी पर पन्ना में तिलक मुगल बादशाह में व्योहार।
1696	सेफ सिकन खाँ	घामोनी में युद्ध	
1699	शेर अफगन खेरे अन्देश खाँ	मऊ	शेर अफगान का मऊ पर आक्रमण/मुगल सेना विजयी पर तत्काल अफगन को भागना पड़ा। मालवा परगना में युद्ध। पन्ना के युद्ध में शेर अफगन का वध। कब्र अब भी है।

पिता की मृत्यु के बाद छत्रसाल का जीवन अनिश्चित था। क्षत्रिय अपने घर नहीं आने देते थे। चम्पतराय के पुत्र थे, चम्पतराय ने अपना जीवन जन सामान्य पर मुगलों के अत्याचार समाप्त कराने में बिताया था। अब छत्रसाल का कोई ठिकाना न रहा। ककर कचनये के बरदिया कुम्हार की लड़की पारवती ने अपने घर में रक्खा और अपना भाई माना। इसके बाद लल्लू गड़रिया ने प्यार किया और मदद की।

जो मुगल वहां निर्दयता से करों की वसूली करते थे और वहां के राजा अपने सिंहासन को बचाकर मुगल सेना की हिन्दुओं पर अत्याचार करने में मदद करते थे। आज छत्रसाल के भय के कारण इस भूमि पर पैर रखने में कांप उठते थे। छत्रसाल ने अपनी आवश्यक चीजों के कारखाने खोल दिये थे। किसान निर्भय होकर खेती करते थे। इस प्रकार बुन्देलखण्ड में नित प्रतिदिन उन्नति होने लगी। यह माँ दुर्गा का आशीर्वाद है। सरस्वती का आशीर्वाद हम पहले देख चुके हैं। अब हम लक्ष्मी जी का आशीर्वाद देखते हैं।

ग्वालियर, ओरछा, दतिया इत्यादि राजा पुराने राजा हैं। इनके पास सोना चांदी हीरा जवाहरात थे। छत्रसाल के पास

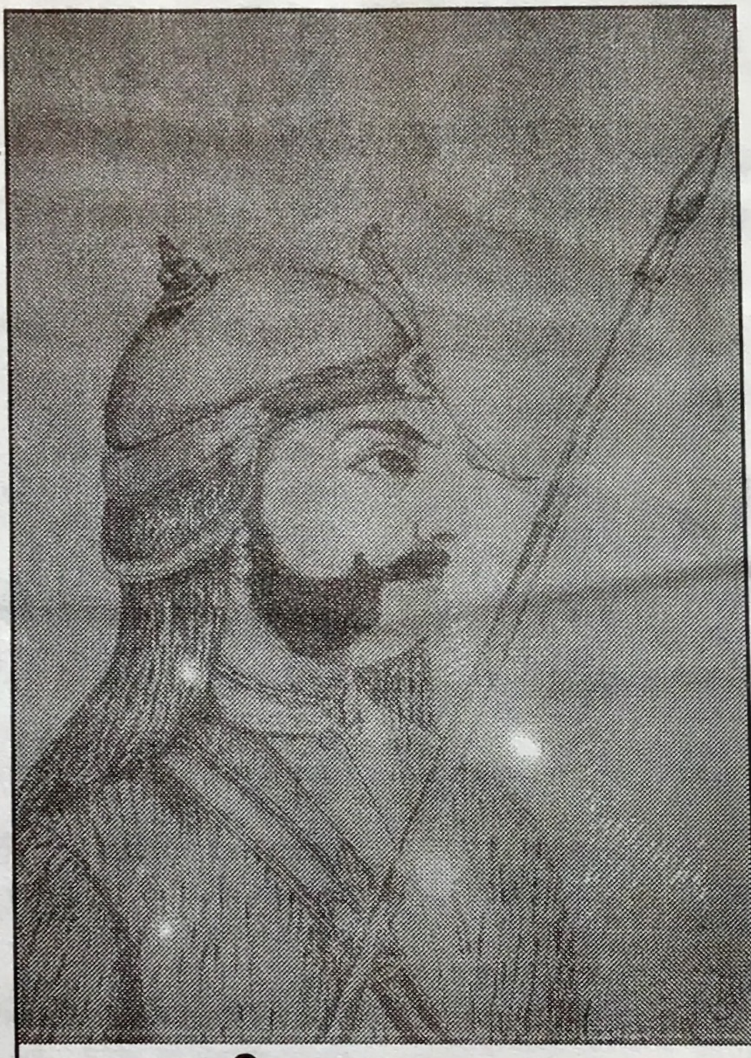
भी थे। पर स्वामी प्राणनाथ ने पन्ना में हीरा होने के कारण पन्ना राजधानी बनाने की सलाह देते हुये हीरा उठा कर दिया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास के क्षेत्र में सरस्वती के आशीर्वाद से तुलसीदास, सूरदास, मीरा, केशवदास आदि नक्षत्र की तरह–चमक रहे हैं और महापुरुष उनकी मृत्यु के बाद अमर हैं। इसी प्रकार दुर्गा जी के आशीर्वाद से शिवाजी, महाराणा प्रताप, आल्हा–ऊदल इत्यादि महापुरुष के रूप में अमर हैं। लक्ष्मी जी द्वारा पालन सब का हुआ है।

महावली छत्रसाल की 5 पुस्तकें (राम मंजरी, कृष्ण मंजरी, हनुमान मंजरी, नीत मंजरी, द्रोपदी सतक के साथ फुटकर रचनायें हैं।) इन रचनाओं में शब्द शक्ति है जो मंत्र जैसा प्रभाव डालती है। इससे सरस्वती की कोटि में छत्रसाल महापुरुष है और अमर हैं।

अब दुर्गा जी के आशीर्वाद से बुन्देलखण्ड के प्रत्येक भाग से जीत कर मुगल शासकीय सेना को 80 युद्धों में इस सीमा के बाहर कर अपनी व्यवस्था की। मुगल सेना जो अजेय कहलाती थी। जहां मुगल सेना के आगमन की खबर सुनने थे। तो जंगलों पहाड़ों में अपने परिवार को लेकर भाग जाते थे। अब यहां का जब सामान्य में इतना आत्मबल आ गया कि किसी का हाथ खाली न रहे। कोई न कोई हथियार हाथ में हो। लाठी, कुल्हाड़ी, तलवार इत्यादि। अगर मुगल सेना की खबर सुनी तो तत्काल उस सेना से लड़ने को दौड़ना है। ऐसे कई उदाहरण है। मुहम्मद हासिम को मोहन तमोली ने महोबा से युद्ध कर भगाया। यह छत्रसाल का प्रभाव था, जिसका परिवार महाराजपुर में है। छत्रसाल दुर्गा जी के आशीर्वाद से सभी युद्धों में विजयी हुये और अमर महापुरुष हुये। इन जैसा लक्ष्मी जी का आशीर्वाद किसी को नहीं मिला।

इस प्रकार इन्हें तीनों शक्तियों का आशीर्वाद प्राप्त है जो आज तक किसी को नहीं मिला। इसलिये अब इन्हें महापुरुषों की कोटि के ऊपर देवपुरुष कहें तो अतिश्योक्ति न होगी।



महाबली महाराज छत्रसाल

देव पुरुष जिस दिन जन्म लेते उसी दिन महाप्रयाण भी करते हैं। छत्रसाल का जन्म 4.3 1649 जेठ सुदी भृगुवार स 1706 को और देव लोक गमन पूस सुदी 3 सम्वत 1731 शुक्रवार है। यहां से तीर्थयात्रा को कुछ लोग गये थे वे उत्तर में कहीं भूल गये भूखे प्यासे भटक रहे थे कि यकायक एक महात्माजी मिले। उन्होंने सब को खाना खिलाया पानी पिलाया और पूछा कि कहां से आ रहे हो तो इन लोग में बुन्देलखण्ड बताया। महात्मा ने कहा जहां छत्र राज करता है। इन लोगों ने हां कहा। महात्मा जी ने कहा कि छत्ता से बोल देना कि धूनी कमजोर हो रही शीघ्र आये। उन यात्रियों मे से एक यात्री सिगरावन का था। उस वापस आने पर छत्रसाल को सन्देश दिया। उस समय छत्रसाल ध्रुव सागर की अगोर में स्नान करने को झामा उतार कर खड़े हुये थे पंडित जी ने सब कह सुनाया। यह समाचार सुनकर तत्काल छत्रसाल तालाब में चले गये जहां जामा रक्खा था वह मुकरवा बन गया। जिस दिन गये वह उनका देव लोक गमन दिवस हो गया।

- ग्राम व पोस्ट बुड़रख, जिला छतरपुर

लोकविश्वास

- डॉ0 हरिसिंह घोष

लोकविश्वास लोक द्वारा स्वीकृत वे प्रस्थापनायें अथवा मान्यतायें हैं जो लोकानुभवों से अर्जित होकर लोक में प्रचलित हो चुकी हैं। अनुभवों के आधार पर जो मान्यता प्रमाण सहित पुष्ट होती है उसे सर्वप्रथम व्यक्ति स्वीकार करता है, यही विश्वास की स्वीकृति लोक की कसौटी पर जब खरी उतरती है तभी उसे लोकस्वीकृति मिलती है और वह व्यक्तिपरक विश्वास लोकविश्वास बन जाता है। वस्तुतः लोकविश्वास लोकानुभवों के परिणाम हैं जिसे हम इस प्रकार कह सकते हैं कि व्यष्टिपरक अनुभवों से अर्जित स्थापनाओं में फलित विश्वास एक अन्तः अभिक्रिया के उपरान्त जब लोक की स्वीकृति पा लेता है तब उसे लोकविश्वास की संज्ञा मिलती है।

स्वरूप और वैशिष्ट्यः लोकविश्वास लोक की एक सहज मानसिक अभिवृत्ति है जिसमें किन्हीं नियत कारणों से आत्मगत निश्चितता के आधार पर किसी कथन अथवा मान्यता को सतय स्वीकार किया जाता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि किसी मान्यता अथवा प्रस्थापना को सत्य स्वीकार कर लेना और उस मान्यता का सत्य होना दोनों में अन्तर है। मान्यता को सत्य स्वीकार कर लेना एक आत्मनिष्ठ या व्यक्तिगत अभिवृत्ति को प्रकट करता है किन्तु मान्यता अथवा प्रस्थापना का सत्य होना सार्वजनीनता को प्रकट करता है जो सार्वजनिक और वस्तुनिष्ठ प्रमाणों पर आधारित होता है एवं आस्था के अन्तर्गत आता है। अतः स्पष्ट है कि लोकविश्वास आस्था से भिन्न है। यद्यपि लोकविश्वास में आस्था की अपेक्षा कम सुनिश्चितता होती है किन्तु यह सार्वजनिक भी हो सकता है और सत्यापनीय भी होता है। वस्तुतः लोकविश्वास प्रतिज्ञाप्तिमूलक और बौद्धिक होता है जिसे प्रमाणों द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। यह भावनात्मक बिलकुल नहीं होता। उदाहरण के लिये इस मान्यता को कि "ईश्वर की सत्ता है" – सत्य स्वीकार करना 'विश्वास' है किन्तु इसके लिये यह बिलकुल आवश्यक नहीं कि इस तथ्य को स्वीकारने वाला ईश्वर के प्रति समर्पित हो अथवा उसका भावनात्मक संबंध हो।

असल में लोकविश्वास एक जीवित प्रक्रिया है जो व्यक्ति के स्तर पर अंकुरित होती है और लोक के स्तर पर पनपती एवं फैलती है। प्रामाणिक तथ्य इसके पोषक तत्व हैं जिनके अभाव में लोक उसे अपनी स्वीकृति की परिधि से बाहर कर देता है। इस प्रकार लोकविश्वास सामूहिक अनुभवों के ही परिणाम हैं क्योंकि इनका उद्भव ही लोकमान्यता से होता है। एक विशेषता यह भी है कि लोकविश्वास लोकजीवन के यथार्थ को संजोये रहते हैं और लोकसंस्कृति को स्वरूप प्रदान करते हैं, इसीलिये लोकविश्वास का व्यावहारिक रूप सैद्धांतिक रूप की अपेक्षा अधिक प्रभावी होता है। इन्हीं लोकविश्वासों ने लोकजीवन के प्रत्येक व्यवहार का दिशा–निर्देशन एवं नियंत्रण करने वाले लोकादर्शों को प्रतिष्ठित किया है। उदाहरण के लिये हम वीरता के आदर्श को ही लें जिसकी जीवन्तता इस लोकविश्वास पर आधारित है कि युद्ध–भूमि में मरने वाला वीर सीधा स्वर्ग को जाता है। इसी प्रकार भाग्य संबंधी लोक विश्वास में निहित मनोवैज्ञानिक समाधान भी मानव को शहनशीलता, धैर्य और शांति देने वाली एक अनोखी विशेषता है।

वर्गीकरणः लोकविश्वासों को वर्गवद्ध करने के दो आधार हो सकते हैं – पहला लोकविश्वासों को विषय अथवा प्रस्थापना का स्वरूप एवं उनसे संबंधित व्यवहार और दूसरा प्रामाणिक आधार। प्रामाणिक आधारों पर प्रतिष्ठित लोकविश्वासों को दो वर्गों में रखा जा सकता है – प्रथम वर्ग में वे सभी लोकविश्वास जो पौराणिक मान्यताओं अथवा तथ्यों पर आधारित हैं और द्वितीय वर्ग में वे सभी जो लोकानुभव, लोक–प्रमाणों और लोकमान्यताओं पर आधारित हैं। इन वर्गवद्ध लोकविश्वासों में भी विविधता है जिनमें मानव और जगत संबंधी, प्रकृति–संबंधी, धार्मिक, अतिप्राकृत, कृषि–संबंधी, ज्योतिष–संबंधी, पारिवारिक जीवन–संबंधी, शकुनापशकुन–संबंधी, स्वास्थ्य–संबंधी एवं नीतिपरक लोकविश्वास विशेष उल्लेखनीय हैं।

अंधविश्वास के संबंध में चर्चा करना भी आवश्यक प्रतीत होता है जिसे यहां संगणित नहीं किया गया है। वस्तुतः आज अंधविश्वास के रूप में अभिहित की जा रहीं मान्यतायें कभी लोकविश्वास के रूप में मान्य थीं और उनकी प्रस्थापना के पीछे कोई न कोई प्रामाणिक आधार भी था। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने अन्धविश्वास को वर्गीकरण में स्थान तो दिया है किन्तु यह भी स्वीकार किया है कि बिना किसी ठोस आधार के लोकविश्वास का उद्भव ही नहीं हो सकता। इसका यह अर्थ हुआ कि जिसे अंधविश्वास की संज्ञा दी गयी है उसका उद्भव किसी ठोस आधार पर हुआ था, किन्तु जानकारी के अभाव में अथवा वैज्ञानिक शोध के आधार पर लोक ने उसे अपनी स्वीकृति की परिधि से बाहर कर दिया और इसीलिये लोकस्वीकृति की परिधि के बाहर होने के बाद कोई मान्यता लोकविश्वास के अंतर्गत नहीं आनी चाहिये। यहां यह अवश्य ही उल्लेखनीय है कि शोध की उपलब्धि को अंतिम सत्य नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिये मंत्रों द्वारा उपचार की प्रक्रिया को ही लें जिसे प्रवुद्ध–वर्ग अंधविश्वास की श्रेणी में अभी भी गिनता है जबकि ध्वनि की तरंगों के प्रभाव को

वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है और मंत्रों का उच्चारण उसी श्रेणी का है।

उपरोक्त विवरण से मेरा तात्पर्य यह है कि कोई भी प्रचलित लोकविश्वास अर्द्धप्रचलित अथवा अप्रचलित की श्रेणी में तो आ सकता है, किन्तु अन्धविश्वास के अंतर्गत नहीं। कुछ लोकविश्वास रूढ़ी के दबाव अथवा दुविधा की मानसिकता के कारण प्रचलित भले दिखाई देते हों, किन्तु उनके जीवित रहने का कारण उनका फलित होना भी है। आंख फड़कने से संबंधित लोकविश्वास भी इसी के अन्तर्गत आते हैं जिसके संबंध में लोकसंस्कृति के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त अपने व्यक्तिगत अनुभव से इसकी पुष्टि करते हुये लिखते हैं कि "जब मेरी दायीं आंख एक दो बार फड़कती है, तब कोई शुभ सूचना मिलती है और जब दायीं हथेली खुजलाती है, तब अर्थ की प्राप्ति होती है।"[1] यद्यपि फलित लोकविश्वास को जीवित रहने के लिए किसी वैज्ञानिक तथ्य की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी तर्क की भावभूमि से ऊपर उठकर सहजता के साथ उन्होंने आगे लिख दिया कि "यह भी पूर्वानुमान का अनुबंधन हो सकता है।"[2]

उद्‌भव और विकासः बुन्देलखण्ड में लोकविश्वासों का उद्‌भव प्रागैतिहासिक काल में होना गुहाचित्रों से प्रमाणित होता है। आदिकालीन लोकविश्वासों को ढालने में यहां की मूल निवासी जनजातियां ही हैं जिनमें पुलिंद, निषाद, शबर, रामठ, राउत और बाद में गोंड़, भील, कोल, सहारिया आदि का प्रभाव उल्लेखनीय है। इस अंचल के विभिन्न शैलाश्रयों में अंकित चित्रों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन लोक विश्वास प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधारित थे। प्रकृति से सीधा संबंध होने के कारण प्रकृति–पूजा–संबंधी लोकविश्वासों का उद्‌भव भी इसी काल में हुआ और प्रकृति के उपयोगी अंग लोक देवता बन गये।

रामायण–काल में जनजातियों के विश्वासों को सर्वप्रथम यक्ष संस्कृति नें प्रभावित किया और इहलौकिकता–संबंधी विश्वासों में बदलाव आया। पूजा में 'बलि' का विश्वास कुछ कम हुआ। "गांव–गांव कौ ठाकुर" के साथ साथ "गांव–गांव कौ वीर" ने भी लोकमन की गहराई तक स्थान पा लिया। इस अंचल में आर्यों की आश्रमी संस्कृति ने भी इसी काल में प्रवेश किया। तीनों संस्कृतियों का सम्मिलन लोकविश्वासों में परिलक्षित होता है। पुर्नजन्म और परलोक से संबंधित लोकविश्वासों मे दृढ़ता आयी। वैदिक लोकविश्वासों का प्रसार भी इसी काल में हुआ। कर्म से संबंधित लोकविश्वासों का उत्कर्ष महाभारत काल में दिखता है। सूत्रों और स्मृतियों ने प्रचलित लोकविश्वासों को दैनिक जीवन से जोड़कर मानव मन को बांध–सा दिया। महात्मा महावीर और बुद्ध के उपदेशों ने एक जागृति अवश्य दी किन्तु व्यवहारिक लोकविश्वास यथावत प्रचलित रहे। पौराणिक कथाओं में अपने में लोकविश्वासों को समन्वित करके उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान किया, जो उनकी जीवंतता बनाये रखने में विशेष सहायक हुई। चंदेल–काल में बुन्देलखण्ड के राजनैतिक उत्कर्ष का श्रेय लोकविश्वासों की दृढ़ता से प्राप्त लोक–मन की ऊर्जा को जाता है। "जे मर जैहें रन खेतन मा, साखौ चलो अगारूं जाय" जैसे अनेक लोकविश्वास लोकमूल्य बन गये। कर्म और भाग्य संबंधी विश्वासों के साथ देवी–देवताओं संबंधी, पुनर्जन्म–संबंधी, भूत–प्रेत– संबंधी, तंत्र–मंत्र एवं ज्योतिष–संबंधी लोकविश्वासों ने जन–मन को इतनी दृढ़ता देती कि युग के संघर्षों को यह अंचल सहज ही झेल गया। भक्तिपरक लोकविश्वासों को नया आयाम बुंदेल–काल में मिला जिन्हें तत्कालीन प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं में अन्य प्रचलित लोकविश्वासों के साथ प्रभावी ढंग से समाहित किया गया है और नये लोकविश्वास भी प्रचलित हुये। मध्ययुग में लोकविश्वासों को कुछ आघात अवश्य लगा किन्तु टूटे नहीं। आधुनिक काल में राष्ट्रीय चेतना का जागरण और वैज्ञानिक युग की बौद्धिकता का प्रभाव लोकविश्वासों पर स्वाभाविक किन्तु फिर भी परम्परा और प्रगति का अद्‌भुत सामन्जस्य स्पष्ट दिखाई देता है।

वैज्ञानिक विवेचनः लोकविश्वास लोकमन की वस्तु है। लोकमन जिन मान्यताओं को स्वीकार कर लेता है वे लोकविश्वास के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं। इन्हीं मान्यताओं को मानना एक कल्पना जनित विश्वास ही है, जिसमें वैज्ञानिक तथ्यों को समझनें के लिये बौद्धिक चिन्तन की आवश्यकता है। ईश्वर–संबंधी लोकविश्वास के पक्ष में एक तथ्यात्मक तर्क पर्याप्त होगा। गणित की वैज्ञानिकता को तो सभी स्वीकारते हैं। "मान लेना" गणित का एक सूत्र है जिसके आधार पर गणित के हल निकाले जाते हैं। गणित के अनेक प्रश्नों में मानना होता है कि अमुक धन एक है और दी गयी शर्तों पर हल निकल आता है। इसी प्रकार ईश्वर को मान लेने से और उस पर विश्वास कर लेने से मानवीय चेतना की तरह ईश्वर की सत्ता मन में प्रस्थापित हो जाती है और हमारी भावनात्मक शक्ति का विकास होने लगता है।

मान्यताओं– विश्वासों की वैज्ञानिकता को आधुनिक विज्ञान ने सत्य सिद्ध किया है। उदाहणार्थ रेखागणित का बिन्दु वह है जिसमें लम्बाई–चौड़ाई और मोटाई नहीं होती, जबकि कोई भी बिन्दु अंकित किया जाये तो कुछ न कुछ मोटाई अवश्य होगी। किन्तु मोटाई हो जाती है तो बिन्दु नहीं रहता और बिन्दु रहता है तो परिभाषा गलत। इसी प्रकार रेखा अनेक बिन्दुओं से बनी एक दूरी है जिसमें लम्बाई है, चौड़ाई नहीं है, यदि चौड़ाई है तो रेखा नहीं रहती और रेखा रहती है तो परिभाषा गलत। यहां सोचा जा सकता है कि ऐसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं होना चाहिये किन्तु यह अस्तित्वहीन वस्तु विश्वास मात्र है, उसी पर रेखागणित का विज्ञान टिका और उसके माध्यम से निकाले जाने वाले सभी निष्कर्ष सही निकलते हैं। अतः बिन्दु की तरह ही दृश्य न होने पर भी ईश्वर– संबंधी सभी लोकविश्वासों की वैज्ञानिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

पुनर्जन्म एवं आत्मा की अमरता से संबंधित लोकविश्वास बुन्देलखण्ड में धार्मिक विश्वासों से प्रभावित है जिनकी पुष्टि में

भारतीय मनीषियों एवं पाश्चात्य दार्शनिकों की विवेचना ही पर्याप्त है।[3] प्रत्यक्ष अनुभवों के अनेक उदाहरण भी इसे नकारने नहीं देते। इस संबंध में डॉ. हेमेन्द्र नाथ बनर्जी का शोधात्मक विवरण उल्लेखनीय है।[4] वैज्ञानिकों ने भी गहन गवेषणा कर के इस संबंध में बहुत से सिद्धांतों का अनुमोदन किया है। इंगलैण्ड की "ब्रिटिश सोसाइटी फार साइकिल रिसर्च" के वैज्ञानिकों ने भी पुनर्जन्म और आत्मा की अमरता को सिद्ध किया है।[5] बी.वी. श्रेनेक नोटजिंग तथा सर क्रुक्स ने छायाचित्र खीचने के विशेष कैमरे की सहायता से मृत आत्माओं के चित्र खींचने में सफलता पायी। श्रेनेक की पुस्तक "फेनामीनन आफ मैटेरियलायजिंग" और स्वामी अभेदानन्द द्वारा लिखी गई पुस्तक "लाइफ बियोण्ड डेथ" मे मृत आत्माओं के चित्र दिये गये हैं।[6]

तंत्र–मंत्र संबंधी लोकविश्वास बुन्देलखण्ड की जनजातियों से लेकर सवर्णों में भी बराबर प्रभावी बना रहना उनके फलित होने को सिद्ध करता है। मंत्रों के उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि का प्रभाव वैज्ञानिक शोधों से प्रमाणित हो चुका है। इन्फ्रारेडियो तरंगों द्वारा रूस का कनाडा के विरुद्ध छेड़ा गया ध्वनि युद्ध भी मंत्रों की महत्ता को प्रतिपादित करता है। चिकित्सा विज्ञान ने ध्वनि चिकित्सा द्वारा शरीर की विभिन्न व्याधियों का सफल उपचार करके मंत्रों के प्रभाव की पुष्टि की है।[7] डॉ. दरबारी लाल ने अपनी पुस्तक नें बिच्छू का जहर उतारने के लिए एक मंत्र का उल्लेख किया है जिसे मैनें भी प्रयोग करके सही पाया।[8] इसी प्रकार हुये अनेक प्रयोग तंत्र–मंत्र संबंधी लोक विश्वासों की वैज्ञानिक पुष्टि करते हैं।

स्वास्थ्य–संबंधी एवं कृषि संबंधी लोकविश्वास प्रत्यक्ष अनुभवों की अभिव्यक्तियां हैं। माई न परो भरे न पेट, मघा न बरसे भरे न खेत; स्वांती गोंहू, आर्द्रा धान, न व्यापै कीरा औ घाम; बरसन लागी ऊतरा, कोदों न खाय कूतरा, इसी प्रकार निन्ने पानी जे पियें हर्र भूंज कें खायं, दूध बियारी जे करें, तिन घर बैद न जायं[9] आदि लोकविश्वासों को वैज्ञानिक पुष्टि की भला क्या आवश्यकता है। घर–परिवार संबंधी एवं नीति परक लोकविश्वास भी प्रत्यक्ष अनुभवों से परखे गये हैं और मनौवैज्ञानिक दृष्टि से खरे उतरते हैं। उदाहरण के लिये, पैले दिना को पाउनो दूसरे दिना को पइ, तिसरे दिना न गओ तो बेइज्जती भई; दक्षिण दिशा की तरफ पैर करके सोना अमांगलिक है; जाके पांव न फटी बिमाई, बौ का जानें पीर पराई; पराई आसा, मरै उपासा; धावै सो पावै; करता से करतार हारो।[10]

अन्ततः लोकविश्वास लोकसंस्कृति और लोकचेतना का दर्पण है। उद्भव और विकास के धरातल पर यदि शोधात्मक विचार किया जाये तो तत्कालीन लोकविश्वासों से किसी भी अंचल की लोकसंस्कृति का ऐतिहासिक स्वरूप जाना जा सकता है। अर्थात् किसी भी अंचल की लोकसंस्कृति को समझने के लिये लोकसंस्कृति के महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रतिष्ठित लोकविश्वासों की समझ आवश्यक है।

संदर्भ-संकेत

1. बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास– डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. 128
2. वही,
3. जन्म–मृत्यु, अमरत्व, परलोक और पुनर्जन्म का स्वरूप का रहस्य – श्री राम माधव चिंगले – कल्याण 'परलोक और पुनर्जन्मांक' पृ 200–206
4. पुनर्जन्म की विदेशी घटनायें – डॉ. हेमेन्द्रनाथ बनर्जी – 'परलोक और पुनर्जन्मांक' पृ. 539–559
5. पाश्चात्य विज्ञान और मृत्यु –डॉ. भीखन लाल श्रात्रेय–'परलोक और पुनर्जन्मांक'–कल्याण पृ. 443
6. मरणोत्तर जीवन पर पाश्चात्य मनीषी –ब्रम्हचारी श्री अभिताभ–'परलोक और पुनर्जन्मांक'–कल्याण पृ. 440–442
7. ब्रम्हवर्चस शोध संस्थान प्रयोजन और प्रयास – डॉ. प्रणव पण्डया पृ. 51, 1980
8. सिम्पिल रेमेडीज फार ऑल डिसीज – डॉ. बी.एस. दरवारी पृ. 209, 1991
9. बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास – डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. 152–153
10. वही।

घोषयाना, संकटमोचन मार्ग,
छतरपुर (म०प्र०)

तेरे लिये
कुछ गुनगुनाया
मैंने
रूखा सा –
इसमें यदि सरसता है तो तेरी– क्योंकि –
रूखा सा
मैंने
कुछ गुनगुनाया
तेरे लिये।

–बालक जयकृष्ण

ये बागी लोकगीत

- डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त

लोकगीत या लोककविता लोक की आवाज होती है अथवा किसी लोककवि के मन में बैठे लोकमन की। वह तो पुष्य नक्षत्र का कोई अवतारी क्षण होता है, जब लोककवि लोक अंग्रेजों का "फोक" या गँवारों और अशिक्षितों की समाज नही हैं, वरन् वह सर्वव्यापी, सर्वज्ञानी और सर्वशक्तिशाली 'लोक' है, जिसके लोक दर्शन में सभी दर्शन और लोकधर्म में सभी धर्म व्याप्त है, जिसके लोकमूल्यों में तत्कालीन उपयोगी मूल्यों और लोकदर्शों में मांगलिक आदर्शों का संगम है तथा जिसके लोकभावना सभी भावों और लोकरस में सभी रसों की समाहिति है। वह ग्राम में है और नगर में भी। हर समुदाय और हर वर्ग में है। जिस मन में लोकधर्मी चेतना है, उस लोकमन मे है और जिस हृदय में लोकदर्शी भाव है उस लोकहृदय में भी। लोकदर्शन उसका मष्तिस्क है, जो लोकधर्म उसकी आत्मा। लोकाचरण और लोककर्म उसकी भुजायें हैं तथा लोकगति और लोकावर्तन उसके चरण। ऐसे अगणित हाथ–पैर और मष्तिस्क वाले शक्तिपुंज का नाम 'लोक' है।

बागी लोकभाव

लोक की अंतर्भेदी आँखें सब कुछ देख लेती हैं। रिश्वत भी हो या दलाली अथवा कोई भी भ्रष्ट आचरण हुआ हो, लोक–कहीं–न कहीं से सच्चाई जान लेता है और फिर उसके हजारों मुख फुसफुसा उठते हैं। अगर एक ने ही किसी को हत्या करते देख लिया हो या बलात्कार में भाग लेते ताड़ लिया हो, तो हजारों कान खड़े हो जाते हैं और एक बेनामी खबर तरंगायित होकर उनके परदों पर छा जाती है। कौन रोक सकता है इन मर्मभेदी आंखों और शब्दभेदी कानों को। कितना ही कठोर दमन–चक्र हो और कितनी ही विवश लाचारी, लोकमन कहीं–न–कहीं से फूट पड़ता है। एक विस्फोटक सोते की तरह। और फिर एक लोकभाव बागी बनकर तमाम लोकगीतों की पलटन खड़ी कर देता है।

ये बागी लोकगीत

जब–जब लोक पर जुल्म और आतंक के बादल मड़राये और लोकमूल्यों के सूरज लुप्त होने लगे, तब–तब लोकमन रोया है और लोकगीत जन्में हैं। सवाल है लोकमन की प्रसव–वेदना के अवतारी क्षणों का। वे तभी आते हैं, जब जोरोजुल्म करने वाले असुर बढ़ते हैं। इन असुरों की न तो कोई कौम होती है, न कोई धर्म। जाति और धर्म के नाम पर भले ही वे नरसंहार करें। शुरू में दुराचरण करने वाले रावण, कंस आदि असुर थे बाद में आक्रमणकारी असुर कहलाये और उसके उपरांत अराष्ट्रीय तत्वों को असुर समझा गया। 'असुर' का यह अर्थ– विकास सारा रहस्य खोल देता है। आज 'असुर' दुराचरण, आक्रमण और अराष्ट्रीय तत्व का प्रतीक है।

ऐसे असुरों के खिलाफ लोकगीतों के दल हमेशा उगे हैं और रक्तबीज की तरह संघर्ष करते रहे हैं। लोकभाषाओं का उद्‌गम 10वीं सती तक हो गया था और तभी से लोक गीतों का एक प्रमुख उद्‌देश्य संघर्षधर्मी काब्यकर्म बन गया। साहित्य के आदिकाल में ही वीरगाथायें रचीं गयीं, ताकि आक्रमणकारी चक्रव्यूहों को तोड़ने अभिमन्यु की सेना तैयार की जा सके। आल्हा की गाथाओं की कथानक की रूढ़ियों के गर्भ में छिपी आजस्विनी चिनगारियां लोकमानस में इतनी ऊर्जा भर देती हैं कि वह पूरी आस्था व विश्वास के साथ जूझने की झमता पा जाता है लेकिन 14वीं–15वीं सती के बाद जब लोक के सांस्कृतिक मूल्यों में गिरावट आने को होती है, तब लोकगीत हर लोककर्म को राम–कृष्ण से जोड़ देते हैं, जिससे लोकसंस्कृति को पुख्ता आधार मिल जाता हैं और फिर गतिशील होकर जुझारू बन जाती हैं। बुन्देली में ऐसे अनेक राछरे हैं, जिनमें बहिन और पत्नी की रक्षा के लिये भाई और पति नें तलवारें उठायीं हैं। साथ ही ऐसे अनेक लोकगीत भी जिनमें नारी के त्याग, बलिदान और शौर्य के अनोखे वर्णन हैं।

सांस्कृतिक संघर्ष का मोर्चा

मध्ययुग की लड़ाई अधिकतर सांस्कृतिक थी। भारतीय संस्कृति के मूल्यों को बचाने और परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के लिए। इसलिये इस युग के लोकगीत लोकसंस्कृति के आलेखनों से भरे हैं। जन्म से लेकर जीवन के अंतिम पड़ाव तक की यात्रा के रेखाचित्र। छोटे–बड़े संस्कारों के सूत्रों से गूथे गये मानवीय संबंधों के सुगंधित सुमन और संस्कृति की एकता के गले में डाली गयी जयमालायें। मध्ययुग की लोकसंस्कृति ने ही विदेशी संस्कृतियों के हमलों से सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा की थी, और इस अहिंसक संघर्ष का मोर्चा संभाला था लोकगीतों ने। वे लोकगीत, जो लोकगीत के हर आदमी को राम–कृष्ण का गौरव देकर जागृत करते रहे, जो हर नारी को यशोदा, कौशिल्या, राधा और सीता के सांचों में बैठाकर परिवार और समाज का संगठन गढ़ते रहे तथा जो बिना किसी मतवाद और आग्रह के, सारे हथियारों से घिरे हुये भी, ममता और प्रेम के स्तूप खड़े करते रहे। कोई उन्हें आज भले ही पुरातत्व की कांटेदार बाड़ से सुरक्षित बना देते हैं अथवा सामंती नाम देकर खंडहर कर डालें, लेकिन इतना तो इतिहास भी मानेगा कि सांस्कृतिक संघर्ष का एक कठिन मोर्चा लोकगीतों ने ही लड़ा था।

सन् सन्तावन की लड़ाई के पहले:

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों ने 1804 ईसवी से लेकर 1818 ई० तक संधियों और सनदों का जाल फैलाकर सभी छोटी–बड़ी रियासतों को फाँस लिया था। दो–तीन दशक ऐसे खेल चले कि शिकारगाह के रखवालों के तेवर बदल गये और सन् छत्तीस से लेकर उन्तालीस तक सभी नरेशों की दो–तीन बैठकें हुईं जिनमें एकजुट होकर संघर्ष करने की शपथ ली गयी। मुखिया बने जैतपुरनरेश पारीछत। अंग्रेजों ने ऐसी चाल चली कि महाभारत के पहले ही जैतपुर पर हमला बोल दिया, फल यह हुआ कि "सब राजा दगा दै गये नृप लड़े अकेले"। लेकिन पारीछत नें लड़ाई जारी रखी, नदी–किनारे, किले में, किले के नीचे, गाँवों में, जंगलों में और खण्डहरों में। उनकी रानी भी चण्डी बनकर निकल पड़ी थी, और हर कदम पर चुनौती देती हुई एक मिसाल पेश करने में सबसे आगे खड़ी थी। 1840 ई० की इस ऐतिहासिक घटना के बाद विद्रोहियों की छुटपुट कोशिशें चलीं और मधुकरशाह, जवाहर सिंह, गणेश जू, दौलत सिंह, लक्ष्मण सिंह बागी बनकर अंग्रेजों को परेशान करते रहे, लेकिन सबसे जुझारू कतार थी लोकगीतों की, जो करीबन दो–तीन दशक आजादी की लड़ाई और उसके बाद तक ऊर्जा भरते रहे।

हरबोलों की कहानी

सच कहा जाये तो 1840 ई० की लड़ाई पूरे नाटक की सूत्रधारिणी थी। लोककवियों ने लोकगीत ही नहीं लिखे, कटक काव्यों से इतिहास और इतिहास के निर्माताओं की कहानी रच दी। दो–दो और चार–चार पंक्तियों की तुकबन्दी ने लोकजीवन में गर्म–गर्म लहू भर दिया और फाग, सैर, लावनी जैसे लोकछंदों में सुलगती बारूद भर दी। "पारिछत कौ कटक" के कवि ने साफ–साफ लिखा था –

कोऊ नें सैर भाषे काऊ नें लावनी।
अब के हल्ला में फुँकी जात छाउनी।।

'हल्ला' का अर्थ है आक्रमण। वास्तव में यह सैर और लावनी जैसे लोकछंदों का हमला था, जिसने फौज की छावनी को विनष्ट कर दिया। अगर लोककवि ने हल्ला न किया होता, तो आजादी के इतने दीवाने सर कटाने न आते। लोककवियों के गीतों, कटकों, समौ काव्यों, लड़ाइयों को जन–जन तक पहुँचाने की जिम्मेदारी संभाली हरबोलों ने। रचनाधर्मी गायकों की एक नयी पौध, जिसने धरती से नाता जोड़ा था। चारण तो दरबार में रहते थे, पर हरबोले लोक के हर द्वार को जगाते। धोती या सूतना, कुर्ता या मिरजई और साखा या पगड़ी या मुड़ासा पहने, कंधे से गुदरी लटकाये और एक हाथ से सारंगी बजाते तथा मंजीरों के सुरीले स्वरों के साथ कोई कथागीत गाते ये यायावरी फेरी देते हुए योगी–से लगते थे। गले में माला और जोगिया रूप, गीत की पंक्ति–पंक्ति में जुड़ा "हर गंगे", "हरे मोरे राम" आदि कीर्तनिया या भजनानन्दी का बाहरी आभास, लेकिन भीतर से लोकजागरण का संकल्प। नगर, गाँव, खेड़ों, पुरवों में फैले दल के दल, घर–घर, द्वार–द्वार लोकधुन में बँधी कोई वीरगाथा या कथा सुनाते। न कोई दस्तक और न कोई सवाल। जिसने जो बिन माँगे दे दिया, उसी में संतुष्ट। कोई भेदभाव नहीं, कोई स्वार्थ नहीं, एक अयाचित याचना और क्रान्ति को जगाने का अनुष्ठान।

इतिहास का सही रूप

सभी इतिहासकार मानते हैं कि हमारे इतिहास का सही रूप उभरना चाहिए। लेकिन सच्चा इतिहास कैसे लिखा जाय? एक तरफ राजाओं–सामंतों और उनके पिट्ठुओं द्वारा लिखवाये अभिलेख, सनदें, पट्टे, रिकार्ड और ग्रंथ हैं और दूसरी तरफ लोकगीत, कटक, समौ, राछरे, गाथाएं आदि लोककाव्य, लोककाव्य, लोकश्रुतियाँ और लोकप्रमाण हैं। असली मुद्दा यह है कि किसे इतिहास कहा जाये। इतिहासकार पहले प्रकार के सुनियोजित और सुसंपादित प्रयास को मान्यता देते हैं, भले ही यह किसी राजा–महाराजा या एक खास वर्ग का पक्षधर इतिहास हो और दूसरे प्रकार के सहज, नैसर्गिक और लोकचर्चित लेखन को कपोलकल्पित कहकर नकारते हैं, भले ही वह लोक का लोकमुख में जीवित इतिहास हो। बहुत–सा ऐसा सच्चा इतिहास इन लोकरचनाओं और लोकप्रमाणों में सुरक्षित है, जो इतिहास–ग्रंथों में शामिल नहीं है और जिससे पुराने इतिहास में कई बदलाव आ सकते हैं। वस्तुतः इतिहास वही है, जो लोक का हो, जनता का हो, किसी एक वर्ग का नहीं। इस दृष्टि से इन लोकगीतों का अध्ययन जरूरी है।

प्रजा का आन्दोलन

इतिहास सत्तावन के विरोध को प्रजा या जनता की क्रान्ति भले ही न माने, पर लोकगीत गवाह हैं कि वह केवल राजाओं और सेना का संघर्ष नहीं था, वरन् उनमें जनता की भी भागीदारी थी। पारीछत ने भी जनता के अधिकार को महत्व दिया था "राजा जंगी जैतपुर वारे पुरजन के अधकार, जंग की करै तैयारी डाँगई बगौरा की।" राजा क्या, रानी क्या, सत्तावन की लड़ाई पुरूष और नारी सबने लड़ी थी। एक गीत में नारी के युद्ध की कथा है –

बाँदा लुटो रात कें गुँइयाँ।
सीला देबी लरी दौर कें सँग में सौक मिहरियाँ।

अत्याचार और आतंक

अंग्रेजों के आतंक और अत्याचार के चित्रों का स्पष्ट अंकन इन गीतों की विशेषता है। कवि भले ही भयातुर होकर सच्चाई न कहे, पर लोककवि कभी नहीं झुका। उसने कई गीतों में अंग्रेजों की पाशविकता का वर्णन किया था। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1. *चूना मूँड़न पै बुझवा दये।*

हाँत–पाँव में कीला ठोंके, पाछे से सँदवा दये।।

2. *जार दओ है बिला बिलखुरा लूटो जन भगवा दये।*

3. *घर–घर बिड़न लगे अंगरेजा, लूटत हैं रजधानी।*
काटत हाँत–पाँव रजपूतन, सुनत न कोऊ बानी।
बहुएँ–बिटियाँ पकर लेत हैं, करत रात मनमानी।

राष्ट्रीय चेतना और चुनौती

इतिहासकार कहता है कि सत्तावन की लड़ाई के पीछे राजाओं का स्वार्थ था, राष्ट्रप्रेम नहीं। लेकिन अनेक गीत और ग्रंथ राष्ट्रीय भावना का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। "पारीछत कौ कटक" में "जात हती हिन्दुवान की राखो सबकौ रूप" द्वारा राष्ट्र की प्रतिष्ठा की सुरक्षा का संकेत किया गया है। उस समय अंग्रेज राष्ट्र के दुश्मन थे, इसलिए "भारत खात लखत अंगरेजन काटत ककरी जौऔ", "ढूड़के फिरंगी पहारन में", "भागे फिरंगी महोबा को जायँ" आदि पंक्तियाँ सब राष्ट्रीय चेतना की दुहाई देती हैं। लोककवि तो लेद की तर्ज में चुनौती देता है –

लोहागढ़ कठिन मवास, फिरंगी झांसी भरोसैं ना रहियो।
जहँ तोप चलै, गोला चलैं भालन की हूहै मार,
जहाँ सीस हथेली लै चलैं, जमराजा के सिरदार,
फिरंगी झाँसी भरोसैं ना रहियो। लोहागढ....।।

शौर्य और बलिदान के प्रतीक

वीरगाथाएँ, लोकगीत, कटक, समौ, लड़ाई, राछरे और लोकमहाकाव्य आल्हा सब शौर्य की प्रेरणा के स्त्रोत हैं। उनमें छिपी भीतरी ऊर्जा सार्वजनीन, सार्वकालिक और सार्वभौमिक होकर हर मन को वीरता का पाठ पढ़ाती है। यदि लोककवि कहता है कि "जो झाँसी की लटी तकै सुन ताय कालका खाई" तो उसकी "झांसी" का मतलब पूरा राष्ट्र है। जैतपुर को कुमुदनी का प्रतीक बनाकर वह राष्ट्र की क्रान्ति को अर्पित करता है –

चरखारी फूली केतकी, बाँदा में फूलो गुलाब।
बीच बेला में फूली कमोदनी, सँभू तोखाँ देउँ चढ़ाय।।

चरखारी, बाँदा और जैतपुर यदि राष्ट्रदेवता पर चढ़ाये जा सकें, तो यह गर्व की बात है। अंग्रेजों के दमन–चक्र को देखकर लोककवियों ने शौर्य और बलिदान के प्रतीकों का प्रयोग किया था, ताकि टोपधारी जीवित न जाने पावें – "ना जियत जान पाबै जौ टोपी वारौ।"

भूमकाल गीत

भूमकाल यानी कि क्रान्ति का गीत, 1910 ई. के बस्तर–विप्लव का एक ऐतिहासिक गीत। गाँव–गाँव के लोग इकट्ठे होकर विचारने लगे – साहबों (अंग्रेजों) का साहस कितना, सबको पकड़ो–मारो। (साहेब – र आचे कड़क सोसा, धरि सबू के मारा।) नायक गुण्डाधूर गँड़ासा लेकर तैयार युद्ध की पोशाक पहन सबसे आगे खड़ा था। पीछे थे धुरवा, मड़िया आदि क्रान्ति–सैनिक। गले में पीतल के हार, सिर पर मुर्ग पंखों की युद्ध टोपी और कमर में बँधा आटापाली। सब चिल्ला पड़े – "एके सोर होई भूमकालेया।"

एक धोखेबाज सोनूमाँझी का षडयंत्र और क्रान्तिकारियों को सुअर और मंद, सब बेहोश, पुलिस और पलटन खबर पाकर दौड़ी। घेर लिया सोये हुए बागियों को और चला दीं गोलियाँ दनादन। बहुत से शहीद हो गये, कुछ भाग गये। लोककवि ने सबकुछ देखा–सुना और लिख दिया भूमकाल गीत, आगे की आजादी की लड़ाई में अगुआई करने।

मोर सोन के चिरैया माटी होई गे

लोककवि अपने देश की दशा के लिए हमेशा चिन्ता करता रहा है और उसने अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द की है। उसे मालूम है कि भारत माता सोने के आभूषणों से सज्जित सोन चिरैया है। मगही का कवि कहता है – " भारत माता हे, सोनवें पूजब तोहर पाँव। तोहर देल सोना अभरनवा तोहरे देब चढ़ाएब।" शायद लोककवियों के मन में भारत की समृद्धि की यही मूर्ति रही है, इसीलिए छत्तीसगढ़ी ददरिया लोकगीत पुकार–पुकार कर कहता है – "धूँकी साही अंगरेज भुइयाँ म छाइगे। मोर सोन के चिरैया माटी होई गे।।" (अंग्रेज महामारी की धरती पा छा गये और हमारी सोने की चिड़िया माटी हो गई।)

दायजे में माँगे सुराज

स्वदेशी आंदोलन और चरखे के बारे में हजारों लोकगीत लिखे गये, जिनसे गाँधी का यह रामबाण जन–जन तक पहुँचा और सुराज की लड़ाई का अचूक हथियार साबित हुआ। बुंदेली का लोककवि अंग्रेज–सरकार का विवाह गाँधी से रचाता है और दायजे में स्वराज्य माँगता है। कितना सार्थक रूपक है एक विवाह का, जन–जन को जगा देना वाला–

देखै टूटै न चरखा कौ तार, चरखवा चालू रहै।
गाँधी महात्मा दूल्हा बने हैं, दुलहिन बनी सरकार।
सबरे वालेन्टियर बने बराती, नउआ बनो थानेदार।
गाँधी महात्मा नेंग में मचले, दायजे में गाँगे सुराज।
ठाँड़ी गवर्नमेंट बिनती सुनाबैं, जीजा, गौने में दैबी सुराज।

आश्चर्य यह है कि लोककवि ने गवर्नमेंट के द्वारा गौने में स्वराज्य देने के कथन से अंग्रेजों की कूटनीति का कितना सफल चित्रण किया है।

तेग दिहे परान गा

इसमें कोई शक नहीं है कि लोक ने गाँधी जी की अहिंसा और असहयोग को स्वीकारा था। नये मूल्यों के रूप में। मुरिया आदिवासी अपने एक गीत में कहता है कि "ये खद्दरधारी

कन्याओं का लोकपर्व नौरता

- कु. रामकिशोरी गुप्ता

भारत एक धर्म प्रधान देश है। यहाँ वर्ष के बारह महीनों कोई न कोई व्रत–उपवास, पर्व–उत्सव आयोजित होता ही रहता है। साधना की दृष्टि से सावन मास, कार्तिक मास, आश्विन व चैत्र में नवरात्रि विशेष रूप से फलदायी माने जाते हैं। सावन मास तीज–त्यौहार, चपेटा और झूला का मास है। भादों जन्माष्टमी हरतालिका जैसे उपवास का मास है तो आश्विन मास मनोकामना पूरी करने के साथ ही साथ कलात्मक गुणों का विकास भी अपने साथ में लिये हुए है। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से दुर्गा नवमी तक के नौ दिवस माता भगवती/दुर्गा की आराधना हेतु विशेष फलदायी बताये गये हें, जो आश्विन (क्वाँर) की नवरात्रि के नाम से जाने जाते हैं।

आश्विन की नवरात्रि में पुरुष वर्ग विशेष रूप से माता भगवती की आराधना में लीन रहते हैं। प्रतिपदा के दिन घट स्थापित कर, माँ दुर्गा की स्थापना कर, दुर्गा सप्तशती अथवा रामचरित मानस का परायण करते हैं तथा पूरी नवरात्रि अल्प–फलाहार लेकर व्रत/उपवास करते हैं। महिलाएं नित्य सूर्योदय के पूर्व स्नान से निवृत होकर ताम्रपात्र में शुद्ध जल (जल को शुद्ध करने के लिए उसमें थोड़ा–सा गंगाजल, दूध मिला लिया जाता है।) लेकर उसमें चन्दन, अक्षत एवं जहां तक सम्भव होता है लाल रंग के पुष्प डालकर माता दुर्गा को जल चढ़ाने हेतु समूहों में निकल पड़ती है। इसी जल चढ़ाने को बुन्देली में "देवी ढारना" कहते हैं। अनेक महिलाएं अपनी शक्ति और सार्मथ्य के अनुसार नवरात्रि में व्रत, फलाहार या एक बार रोनो रूखो (बिना नमक का) भोजन करती हैं।

इन्हीं दिनों कुछ परिवारों में प्रतिपदा के दिन खप्पर (मिट्टी के घड़े का ऊपर का हिस्सा निकालकर) में गोबर के कण्डों का चूर्ण, काली मिट्टी एवं सफेद मिट्टी (पोतनी) मिलाकर भर देते हैं। इन खप्परों को मकान के एक कमरे (जिसे लीप–पोतकर पवित्र कर लिया जाता है) में रखते हैं। इन खप्परों में प्रतिपदा के दिन जौ बो दिये जाते हैं। जिस कमरे में जौ बोकर खप्पर रखे जाते हैं उसको दिवाला (मन्दिर) कहते हैं। नौ दिन तक नित्य प्रति पानी में थोड़ा सा दूध मिलाकर प्रातः एवं संध्या के समय इन्हें सींचा जाता है। प्रातः/संध्या इनकी पूजा, हवन व आरती की जाती है। संध्या के समय भजन मण्डली देवी के भजन गाती हैं जिन्हें भक्तें कहा जाता है। दुर्गा अष्टमी, दुर्गा नवमी या दशहरे के दिन संध्या समय गाजे–बाजे के साथ महिलायें इन्हें अपने सिर पर रखकर तथा पुरुष वर्ग ढ़ोलक–मजीरा के साथ देवी गीत गाते हुए माता भगवती के मंदिर में जाते हैं। रास्ते में चौराहों पर नारियल फोड़ते तथा होम भी उगाते जाते हैं। देवी मंदिर में जाकर पूजा करके जवारे खोंटते हैं। वहाँ पर माता भगवती को चढ़ाते हैं। यही खुटे हुए जवारे तथा नारियल की गरी (नारियल के छोटे–छोटे टुकड़े) प्रसाद में अड़ोस–पड़ोस में बाँटे जाते हैं।

बुन्देलखण्ड में आश्विन नवरात्रि में कन्याओं द्वारा माता दुर्गा की आराधना विशेष रूप से की जाती है, जिसे 'सुअटा' अथवा

(पृष्ठ क्रमांक 92 का शेषांश)

मार–काट नहीं जानते, छल–छंद नहीं जानते – मारा–काटा निजानोत एमन मन, लाटा–फाँदा काइँच नि जानोत"। इतनी समझ के बावजूद लोक सशस्त्र क्रान्ति में अधिक विश्वास करता था। कई गीतों में तलवार लेकर जूझने का आह्वान है। एक निमाड़ी लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ हैं –

भारत वासी कठिन सूरमा, कठिन जात बलवान गा।
मरना जीना नाहि डराबे, तेग दिहे परान गा।।

राजा-महाराजाओं का विरोध

लोक ने राजाओं और सामंतवादी ताकतों के खिलाफ बीड़ा उठाया था। खासतौर से रियासतों में। जिन बड़ों ने अंग्रेजों का साथ दिया, उनका खुला विरोध हुआ। लोककवि ने अत्याचारियों को नहीं छोड़ा, चाहे वह देशी हो या विदेशी। उसने घोषणा की कि राज अंग्रेजों के गुलाम हैं और हम उनके –

बुन्देलखण्ड की जनता रोबै, भये राजा अत्याचारी।
अंग्रेजन के गुलाम राजा, तिनकें हम गुलाम भारी।।
बुन्देलखण्ड के गाँउन–गाँउन, फेर ढोंड़ेरो पिटवाओ।
जो सुराज कौ नाम लैवगे, तो हम कीला ठुकवाओ।।

लोकनायकों का ऋण

सभी लोकभाषाओं में लोकगीतों में गाँधी, जवाहिर और सुभाष के नाम जड़े गये हैं। लोक लोकनायकों को तभी मान्यता देता है, जब वे युगबोधी कर्म करते हैं। उसके गीतों में पहला नाम है गाँधी का, तब फिर जवाहर और सुभाष का। मुरिया गीत में कहा गया है कि एक खूँटा गाँधी ने संभाला है, तो दूसरा जवाहर ने – "गोटक खुँटे गाँधी बाबा, गोटक खुँटे जवाहर।" एक गोंड़ी लोकगीत में गाँधी–नेहरू की पुकार पर आज़ादी की लड़ाई की लड़ाई के भाग लेने का वर्णन है–

चोय मान्दीवेन, नेहरू गाँधी जी चोय मान्दीवेन।
इंधार–धोंधार राज सुबानकेन
चोय मान्दीवेन, नेहरू गाँधी जी चोय मान्दीवेन।।

-मंगलम,
सर्किट हाउस मार्ग, छतरपुर

'नौरता' के नाम से जाना जाता है। नौरता अर्थात नौ–रता, शब्द मुख–सुख की प्रवृत्ति के कारण नवरात्रि से बना है। नौरता के साथ–साथ इसे सुआटा भी कहते हैं। 'सुआटा' की परम्परा बुन्देलखण्ड में सर्वत्र है। बुन्देलखण्ड के शहरी क्षेत्रों में नौरता अब कम दिखाई देता है जबकि ग्रामीण अंचलों में कन्याओं के मन में आज भी इसके प्रति अटूट श्रद्धा, उमंग एवं उत्साह है। बड़े हर्षोल्लास के साथ वे अपने इस पारम्परिक पर्व को मनाती हैं।

इस पर्व की तैयारी लगभग 10–20 दिन पूर्व से ही प्रारम्भ हो जाती है। सुआटा की अल्पनायें, चौक, बेल–बूटे बनाने के लिए वे कई प्रकार के रंग तैयार करती हैं। कन्यायें सर्वप्रथम वर्षा की धुली हुई बालू में जो श्वेत रंग के पत्थर के टुकड़े मिले होते हैं (जिन्हें 'दुधी' कहते हैं) इकट्ठे करती हैं। संगमरमर, चीलबट्टा पटकुली (कत्थई रंग के पत्थर) आदि एकत्रित कर उन्हें पीसकर कपड़छन (कपड़ा से छानना) कर विभिन्न रंगों से रंगती है। पत्थरों के अतिरिक्त भी रंग अन्य चीजों से बनाये जाते हैं, जैसे चावल को पीसकर लाल, पीले, हरे, नीले रंगों के घोल में मिलाकर छाया में सुखाना। इसी प्रकार लकड़ी का बुरादा तथा ज्वार के चून को रंगकर भी रंग बनाती है। इस प्रकार तैयार किये गये विभिन्न रंगों को वे अलग–अलग पोटलियों में या पात्रों में सहेज कर रख लेती हैं। हर कन्या के मन में यह बात रहती है कि उसके रंग अन्य कन्याओं की तुलना में मनमोहक हों।

सुआटा/नौरता खेलने का स्थान पूर्व से ही निश्चित होता है, जो भवन के मुख्य द्वार के दाहिने अथवा बाँये ओर के चबूतरे पर होता है। दीवाल के किनारे चबूतरे पर नौ सीढ़ियों की, नीचे से ऊपर क्रमशः घटते क्रम में एक वेदी बनी होती है जिसे पर्वत कहते हैं। सबसे नीचे की सीढ़ी में आगे की तरफ दो दीपक गड़े रहते हैं जो दुग्धकुण्ड कहलाते हैं इनमें दूध भर दिया जाता है तथा उसमें दूर्वादल के छोटे–छोटे गुच्छे डाल दिये जाते हैं। सबसे ऊपर वाली सीढ़ी का स्थान गौरा (गौरी) की मूर्ति स्थापना के लिए निश्चित होता है। वेदी अर्थात पर्वत के पीछे वाली दीवाल पर 5–6 फिट की ऊँचाई पर मिट्टी से चंदा और सूरज की आकृतियाँ बनाई जाती है। कहीं–कहीं इन्हीं के साथ सुआटा की मिट्टी की मूर्ति भी दीवाल पर बनाई जाती है। यह सब कार्य नवरात्रि प्रारम्भ होने से पूर्व ही पूर्ण कर लिये जाते हैं।

प्रतिपदा के दिन से नौ दिन तक नौरता खेला जाता है। प्रतिपदा के दिन कन्यायें नहाते समय बाल अवश्य धोती हैं। इसके बाद नौ दिन तक बाल धोना वर्जित होता है। प्रतिपदा के दिन सूर्योदय से पूर्व कन्याएं सहेलियों के साथ अपनी–अपनी थालियों में रंग सजाकर नौरता हेतु सुनिश्चित स्थान पर पहुँचती हैं। यहाँ प्रत्येक कन्या हेतु पृथक–पृथक स्थान निश्चित रहता है, जहाँ वे विभिन्न आकार–प्रकार के चौक, सांतिया, सुराती, मथानी का फूल, कमल का फूल, पिड़ी का चौक, विभिन्न देवी–देवताओं की आकृतियाँ तथा बेलबूटे बनाती हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के रंग भरकर उन्हें चित्ताकर्षक बनाया जाता है। अल्पनाएं बनाते समय गीत भी गाती जाती हैं। जैसे –

ऊँची डगर की पीपरी नारे सुआ हो
जा तरैं लगी हैं हाट सुआ।
बिरजीं गौरा बेटी बाबुल से नारे सुआ हो
राजा बाबुल चुनरी रंगाव सुआ।
ढिक–ढिक लिखियो मोरो मायको, नारे सुआ हो
अँचरन माई के बोल सुआ।
माई बैठी मँझघरा, नारे सुआ हो
बाबुल पौर दुआर सुआ।

अर्थात मार्ग में विशाल पीपल वृक्ष के नीचे हाट (बाजार) लगी हुई है। वहाँ एक सुन्दर चुनरी देखकर गौरा अपने पिता से उसी तरह की चुनरी रंगवा देने का आग्रह करते हुए कहती हैं कि ऐसी ही चुनरी मुझे भी रंगवा दीजिये। चुनरी की ढिकों (किनारों) पर यहाँ के अर्थात् मायके के सुन्दर–सुन्दर दृश्य बने हों और आँचल वाले भाग पर माता–पिता के प्यार भरे बोल लिखे हों। माँ घर के आँगन में बैठी दिखाई देती हो और पिता पौर के द्वार (गृह का मुख्य प्रवेश द्वार) पर।

अल्पनाएं बनाने के बाद काँय डालने के लिए सभी कन्याएं खड़ी होकर गीत गाती हैं। इसके साथ एक कन्या दुग्धकुंड में दूर्वादल को डुबोकर वेदी पर छिड़कती जाती हैं एक–एक कर सभी कन्याओं के पिता का नाम जोड़ते हुए गीत चलता है–

हिमांचल जू की कुंवरि लड़ाँयती, नारे सुआ हो,
गौरा बेटी, नेरा तो अन्हायें सुआ।
नेरा तो अन्हईयों बेटी, नौ दिना, नारे सुआ हो,
दसमें दिना करियो सिंगार सुआ।
अमुक जू की कुँवरि लड़ायँती, नारे सुआ हो,
अमुक बेटी, नेरा तो अन्हायें सुआ।

अर्थात राजा हिमांचल की लाड़ली बेटी गौरा को माँ उपदेश दे रही है कि बेटी नौ दिन तक स्नान ध्यान करके सुआटा की पूजा, जप–तप करना और दसवें दिन अपना साज श्रृंगार करना। इस प्राकर यह पर्व साधना पर्व है।

काँय डाली जाने के बाद अगला गीत इस प्रकार गाती हैं–

तिल को फूल तिली को दानो, चन्दा ऊँगे बड़े भुनसारे।
ऊँगन न होय वारो चन्दा, हम घर पर होय लिपना–पुतना।
सास न होय दैहै गरियाँ, ननद न होय कोसे बिरना।
माई को कहो न करि हों, बाबुल को कहो न करि हों।
पानी की खेप न धरि हों, गोबर की हेल न धरि हों।
चकिया को डँडा न पकरि हों, तबा पै कुचइया न धरि हों।
बासी को कौर न दैहों, ताती होय तो लपलप खैहों।

अर्थात बेटी कह रही है कि मेरे यहाँ सूर्य निकलने के पूर्व ही लिपाई–पुताई का कार्य हो चुका। मैं मायके में हूँ। यहाँ मेरी सास नहीं है और न ही ननद, जो मुझे गाली दे या मेरे भाई को कोसे। यहाँ मेरे ऊपर किसी का बन्धन नहीं है। मेरे मन में जो आयेगा वही करूँगी। न मैं माता का कहना मानूँगी न पिता के

बात सुनूंगी। न पानी भरूँगी, न गोबर उठाऊँगी, न चक्की पीसूंगी न रोटी बनाऊँगी। मुझे घर का कोई काम नहीं करना है। माँ यदि नाराज होकर बासा भोजन खाने को देगी तो मैं मना कर दूंगी और अगर गरमागरम भोजन करायेगी तो झटपट खा जाऊँगी।

अपनी बेटी की इस प्रकार अटपटी बातें सुनकर माता बेटी को समझाते हुए कहती हैं –

खेल लो बेटी खेल लो माई बाबुल के राज
जब ढुर जैहो बेटी सासुरे, सास न खेलन देय।
रात पिसावे पीसनो, बेटी दिबस गुबर की हेल।।

अर्थात हे पुत्री हमारे (माता–पिता) राज्य में तुम खूब खेल लो। ससुराल में सास थोड़े ही तुम्हें खेलने देगी। वहाँ वह तुम से रात को चक्की पिसवायेगी और दिन में गोबर की हेल उठवायेगी। आगे कहती हैं–

दूरा के देसाँ दई हैं गौरा बेटी, दई है सबई बेटी।
को बेटी, तोहि लिवावन जै है, बुलावन जै है।।

अर्थात हे बेटी गौरा तेरी ससुराल बहुत दूर है तेरी और बहिनें भी दूर देश में ब्याही हैं। इतनी दूर तुम्हें बूलाने के लिए, लिवाने के लिए कौन जायेगा। तब बेटी उत्तर देती है –

मोरी पीठ के भैया चन्दामल, भैया सूरजमल
जे दोऊ भैया, चार भतीजे लिवावन जै हैं, बुलावन जै हैं।
सिर गोला पाँग सवाँरत जै हैं, पियरे पट पहनावत जै हैं।
लीली सी घोड़ी कुदावत जै हैं, लाल छड़ी चमकावत जै हैं।
वन की चिरैया चुगावत जै हैं, अन्ध कुँवल उघरावत जै हैं।
फूटे से ताल बँधावत जै हैं, उखटे बाग लगावत जै हैं।
नंगी डुकरियाँ ओढ़ावत जै हैं, भूखी डुकरियाँ जिमावत जै हैं।
कंवारी सी कन्या विवाहित जै हैं, ब्याही सी बिटिया चलावत जै हैं।

अर्थात बेटी उत्तर देती है कि मेरी पीठ के अर्थात मुझसे छोटे भाई चन्दामल और सूरजमल तथा चारों भतीजे (भाईयों के पुत्र) मुझे बुलाने जायेंगे और लिवाने जायेंगे। भाई और भतीजों की शान देखने योग्य है। वे नीली घोड़ी पर पीतवस्त्र धारण किये हुए सर पर पगड़ी बाँधे तथा लाल छड़ी चमकाते हुए, सजधज के आयेंगे। रास्ते में वन की चिड़ियों को चुगाते हुए, सूखे कुँओं को भराते हुए, फूटे तालाबों को बंधवाते हुए, सूखे बागों को लगवाते हुए, नंगी–भूखी वृद्धाओं को वस्त्र और भोजन देते हुए, कन्याओं का विवाह कराते हुए और विवाहित बेटियों की विदा कराते हुए वे मेरी ससुराल मुझे लिवाने हेतु पहुँचेंगे।

कल्पनाओं की इन उड़ानों के बाद बेटी ससुराल चली जाती है। कई वर्षों तक वह अपनी माँ के घर नहीं आती। बहुत दिनों से बहिन के न आने के कारण उसके भाई चन्दामल और सूरजमल उसे लिवाने जाने के लिए तैयार हो रहे हैं। उन्हें तैयार होता हुआ देखकर माँ कहती है –

सूरज की मैया जा कहें, नारे सुआ हो,
मोरे चन्दा सूरज कहँ जाँय सुआ।
ओढ़ो कारी कामरी, बाँधों कपिला गाय।।
धन बिलासो माई बापको,
मोरे सूरज विदेशे न जाव।

अर्थात मेरे बेटा चन्दा और सूरज तुम कहाँ जा रहे हो? कारी कमरिया ओढ़कर विश्राम करो, घर में बँधी कपिला गाय की सेवा करो। माता–पिता द्वारा संग्रहित धन का उपयोग करके सुखपूर्वक घर में रहो। तुम्हें विदेश जाने की आवश्यकता नहीं है।

भाई–बहिन के पवित्र प्रेम का आकर्षण, माँ के कहने पर भी भाईयों को बहिन के घर जाने से नहीं रोक पाता। वे बहिन की ससुराल को चल देते हैं। इसके पहले वे कभी अपनी बहिन के यहाँ नहीं गये थे। इसलिए वे पूंछते–पूंछते आगे बढ़ते हैं। एक कुएं के पनघट पर काफी महिलाएं जल भर रही थीं। दोनों भाई पूंछ–ताछ करने के लिए पनघट पर पहुंचते हैं जिन्हें देखकर महिलाएं आपस में हंसी मजाक करती हैं। ननद अपनी भाभी से कहती है कि तुम्हारा भाई आया है तो भाभी ननद से कहती है कि वह हमारा भाई नहीं नन्दोई है अर्थात तुम्हारा पति है। एक महिला ने दूसरी महिला से कहा कि इन दोनों की शक्लें तुमसे मिलती–जुलती है। ये दोनों मुझे तुम्हारे भाई जैसे लगते हैं। तब वह महिला ध्यान से उन्हें देखती है –

चौकन, चौकी–चौखुटी नारे सुअटा,
चौकी के चारऊ खूँट।
चौकन बैठे भइया डेढ़ सौ, नारे सुअटा,
तिन में भइया चन्दा–सुरजमल कौन।
लाल पाग कारी ढाल के, नारे सुअटा,
लाल घुड़ल असवार।
चन्दा सुरज भैया दोऊ खड़े, नारे सुअटा,
पकरें लौंग की डार।।
लीली जो बाँधौ भैया लौंग सें, नारे सुअटा,
धरियक धामों बिलमाव।
हम कैसे घामों बिलमाइये, नारे सुअटा,
जिनकी बहन परदेश।
घामों बिलमावें हमरे बाबुल, नारे सुअटा,
जिनने दई परदेश।

अर्थात चौकियों के ऊपर डेढ़ सौ लोग बैठे हैं जिनमें चन्दा–सूरज कौन है बहिन ने काफी समय से इन्हें नहीं देखा था इसलिए वह भाइयों को पहिचानने में हिचकिचा रही है। ध्यानपूर्वक देखकर वह अपने भाइयों को कुछ–कुछ पहिचान लेती है और कहती है कि नीली घोड़ी पर सवार लाल पाग बाँधे, काली ढाल लिये मेरे भाई चन्दा और सूरज आप लोग अपनी अपनी नीली घोड़ी लौंग से बांधकर एक घड़ी विश्राम कर लो। महिला के मुख से ऐसे शब्द सुनकर चन्दा और सूरज गद्‌गद हो जाते हैं। वे कहते हैं कि हम यहाँ विश्राम करने नहीं आये हैं। हमारी बहिन तो परदेश में पड़ी हुई है। हमारे पिता जिन्होंने हमारी बहिन को इतनी दूर परदेश में ब्याह दिया और उसकी खबर नहीं ली विश्राम वहीं कर सकते हैं। वे एक–दूसरे को पहिचान कर आनंदित हो

उठते हैं और बहिन भाईयों को अपने घर लिवा ले जाती है।

गीत समाप्त होने के साथ ही वेदी (पर्वत) पूजन का कार्य सम्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् सभी कन्याएं समूह में नौरता स्थल के रंगों से एक–दो रेखा बनाती हुई मार्ग में कुछ दूरी तक चलीं जाती हैं। वहाँ मार्ग के बीचों–बीच रुककर मार्ग को थोड़ी जगह गोबर से लीपकर रंगों से भूत की आकृति बनाती हैं। सभी कन्याएं भूत के चारों ओर गोलाकार खड़ी होकर एक–दूसरे की हथेली पर थोड़ा–थोड़ा पानी डालते हुए थपथपाती है तथा गीत गाती हैं –

चिंटी–चिंटी कुर्रू दें – कुर्रू दें
बापें भइया राजी दें, राजी दें।
राजी ऊपर भात् दें, भात दे।
भात् ऊपर दहिया दे दहिया दे,
दहिया ऊपर मैया दे, मैया दे।
मैया ऊपर गैया दे भइया दे,
भइया ऊपर भौजइया दे, भौजइया दे।
भौजइया ऊपर भतीजो दें, भतीजों दें,
भतीजों ऊपर घोड़ा दें, घोड़ा दे।
घोड़ा मारी लाता, जा पड़ी गुजराता
गुजरात के बानियाँ, गोड़ मूड़ से तामियाँ।

गीत की उक्त पंक्तियों में पिता और भाई के प्रसन्न रहने की बात की गई है। दूध दही के माध्यम से गौ–पालन एवं भात (चावल) के माध्यम से कृषि की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। बहिन अपने भैया, भाभी और भतीजों की कामना करती है उसकी सवारी हेतु घोड़ा की भी कामना की गई है। अन्तिम पंक्तियों का अर्थ कुछ स्पष्ट नहीं होता। ऐसा लगता है कि घोड़े के स्वभाव के सम्बन्ध में कोई बात कही गई है "घोड़ा मारी लाता जा पड़ी गुजराता।"

बम्हन–बम्हन जात के, जनेऊ पहिरें हाथ कें
टीका देवे रोरी कौ, हार चढ़ावे गौरी कौ
आव–आव अंगना, को–को पूरें चंगना
साड़े गाड़े फूल चढ़ाऊँ, गौर की मैं विनायकी फिराऊँ
गौरारानी काँ चीं मडुआ के पेड़े,
मडुआ सियरा जो पानी पियरा
अकरे चाँवर पान सुपारी बेल की पाती
जौ हरयारो जौ तिलयारो।

गीत में तुकबन्दी के साथ–साथ गौरी पूजन का वर्णन किया गया है। इस गीत के समाप्त होते ही सभी कन्याएं अपने–अपने घर वापिस चलीं जाती हैं।

शाम को सभी कन्याएं पुनः नौरता स्थल पर इकट्ठी होकर सबेरे बनाई गई अल्पनाओं को साथ करके उन पर छुई या चूना की ढिक लगाकर खण्ड बनाती हैं और गोबर से लीपती हुई गीत गाती हैं –

येई गमा के गेंबड़े नारे सुआ हो
भूरी भैंस बिकाय सुआ
लै लो सुरजमल भैया मोल सुआ
तुम्हारी दुलैया रूखो खाय सुआ
खान दो बहिन मोरी खान दो
गठियन नइयाँ चौखे दाम सुआ।

अर्थात बहिन अपने भाई से कह रही है कि गांव के गेंवड़े भूरी भैंस बिकाऊ है। सूरजमल भैया तुम इसे खरीद लो क्योंकि तुम्हारी दुलहिन रूखा भोजन करती है। भइया उत्तर देता है कि मेरे पास पूंजी नहीं है।

प्रतिपदा से चौथ (चतुर्थी) तक यह क्रम चलता रहता है। चतुर्थी की शाम सभी एक साथ मिलकर अपने–अपने घर तथा पड़ोसियों के यहाँ जाकर गौरा क्रय करने के लिए चन्दा इकट्ठा करती हैं। चन्दा इकट्ठा कर वे बाजार में कसगर की दुकान से मिट्टी की पकी हुई रंगीन सुन्दर गौर खरीद लाती हैं। दुकान से गौर को उठाने से पहले वे लाल कपड़े से उसका मुख ढक देती है। जिसके द्वार पर नौरता स्थल होता है, गौर को उन्हीं के घर सुरक्षित रख दिया जाता है। पंचमी के दिन प्रातः चौक, अल्पनाएं आदि बनाने के पश्चात बेदी पर गौरा जी को विराजमान करके रोज की भांति काँय डालती हैं। काँय के बाद गीत गाती हैं–

गौर माँगें ईजा–ईजा,मैं चढ़ादऊँ बीजा–बीजा।
गौर माँगें अरन फूल अरन फूल, मैं चढ़ादऊँ करन (कर्ण) फूल–करन फूल।
गौर मांगे अरबा अरबा, मैं चढ़ादऊँ हरबा–हरबा।
गौर माँगे अंगन अंगन, मैं चढ़ादऊँ कंगन–कंगन।
गौर मांगे अम्मर पेटी–अम्मर पेटी, मैं चढ़ादऊँ कम्मर पेटी–कम्मर पेटी।
गौर मांगे आयल आयल, मैं चढ़ाऊँ पायल–पायल।
गौर मांगे इछिया इछिया, मैं चढ़ादऊँ बिछिया–बिछिया।
गौर मांगे आड़ी आड़ी, मैं चढ़ादऊँ साड़ी–साड़ी।
गौर मांगे अम्फर अम्फर, मैं चढ़ादऊँ जम्फर–जम्फर।

गीत में गौरा को विभिन्न वस्त्राभूषण चढ़ाये जाने का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् दूसरा गीत प्रारम्भ होता है–

अपनी गौर की आईं देखो, झाईं देखो,
का का पहिरैं देखो।
माथे बीजा देखो, कानन झुमकी देखो।
नाक नथनी देखो, औंठ में लाली देखो।
गले में हरवा देखो हाथ में चूड़ी देखो।
कमर करधनी देखो, पाँव में पायल देखो।
पांव में बिछिया देखो, अंग में साड़ी देखो।

गौरा जी को रत्न जड़ित स्वर्ण आभूषण चढ़ाये गए हैं उनसे गौरा के मुख पर झांईं पड़ रही है उसका सुन्दर चित्रण गीत के माध्यम से किया गया है।

दूसरा गीत समाप्त हुआ नहीं कि तुरन्त तीसरा गीत

प्रारम्भ हो जाता है।

पराई गौर की झाईं देखौ,
माथौ फूटो देखौ, आँख अन्धी देखौ।
नाक नकटी देखौ, कान बूचो देखौ।
गरदन टेढ़ी देखौ, हाथ टूटो देखौ।
कमर झुकी देखौ, पांव नंगे देखौ।
साड़ी फटी देखौ, गौरा रोती देखौ।

कन्यायें अपनी गौरा की तुलना में अन्य किसी गौरा की श्रेष्ठता स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं, वे दूसरी गौरा को लूला, लंगड़ा, बहरा कहने में भी नहीं चूकती।

अन्त में बारी आती है उस गीत की जिसमें गौरा से घर वर और पुत्र प्राप्त होने की कामना की गई है –

गौरा अपनो सौ सिंगार गौरा मोइये दियो
गौरा अपनी सी बीजा (बेंदी) गौरा मोइये दियो
गौरा अपनी सी झुमकी गौरा मोइये दियो।
गौरा अपनो सौ हरबा गौरा मोइये दियो
गौरा अपने से कंगन गौरा मोइये दिये।
गौरा अपनी सी करदौनी गौरा मोइये दियो
गौरा अपनी सी पायल बिछिया गौरा मोइये दियो।
गौरा अपने से भोला गौरा मोइये दियो
गौरा अपने से झरूले गौरा मोइये दियो।

अर्थात हे माँ गौरा (गौरी) अपने ही तरह के वस्त्राभूषण मुझे प्रदान करें। आपके समान भोला (शंकर) जैसा पति एवं गणेश के समान पुत्र मुझे भी प्राप्त हो।

इसके पश्चात् अगला गीत प्रारम्भ होता है –

झिलमिल–झिलमिल आरती
महादेव कैसी पालती
को बहू नौनी
चन्दा बहू नौनी, सूरज बहू नौनी
नौनी तो नौनी भौजी कंठ सलौनी भौजी
वीरन हमारे भौजी कंत तुम्हारे भौजी
को बहू नौनी
(भाभी का नाम) अमुक बहू नौनी ....

गीत के माध्यम से अपनी भाभियों की सुन्दरता का बखान किया जाता है।

पंचमी से सप्तमी तक गौरा जी की मूर्ति पूजा के साथ यह क्रम चलता है। अष्टमी के दिन यह क्रियाकलाप प्रातः न होकर संध्या के समय सम्पन्न होते हैं। शाम को सभी कन्याएं शेष बचे रंगों को ले जाकर, नौरता स्थल पर सामूहिक रूप से एक बड़े से बड़ा तथा आकर्षक चौक अथवा देवी देवता की आकृति रंगों द्वारा बनातीं हैं। नित्य की तरह गीत गाकर गौरा रानी की कांय डालती है। इस दिन सभी कन्याएं भुने हुए चने या बूंदी घर से साथ में लाती हैं। सभी कन्याओं का पूरा समूह गोलाकार में एक साथ बैठकर अपने साथ लाए हुए चना बूंदी खाना शुरू करतीं हैं जिसे 'हप्पू' कहते हैं। इसके साथ ही साथ यह गीत भी गाती हैं –

मोरी गौर को पेट पिरानो हप्पू
अमुक की भाभी को पेट पिरानो हप्पू

सभी सहेलियों के नाम लेकर उनकी भाभी के नाम अमुक कहती हुई मौज–मस्ती करती हैं।

अब प्रारम्भ होता है नौरता का समापन सत्र 'ढ़िरिया'। मिट्टी के एक कोरे घड़े में चारों ओर छेद करके उसे सजाती हैं। घड़े के अन्दर एक तेल का जलता हुआ दीपक रखती हैं जिसे ढ़िरिया या झिरिया कहा जाता है। सभी सहेलियाँ इसे लेकर पड़ोसियों के घर गीत गाती हुयी पहुंचती हैं –

पूंछत–पूंछत आये हैं, नारे सुआ हो
कौन बड़े जू की पौर (हिमांचल जू की पौर) सुआ
पौरन बैठे भैया पौरिया, खिरकन बैठे छड़ीदार सुआ।
पौरन के सौ गये भैया पौरिया, खिरकन सो गए छड़ीदार सुआ
निकरौ दुलइया रानी बाहिरें बिटियन देवतमोल सुआ
हम कैसे निकरें बइया बाहिरें नारे सुआ हो।
झोली में झरूले नौने पूत सुआ
तुम जिन जानों भौंजी माँगने, नारे सुआ हो, घर घर देत असीस सुआ
पूत जो पारौ जो भौजी माँगने, बिटियन देव तमोल सुआ।
लै अच्छन भौजी निंग चलीं, नारे सुआ हो चन्दन रिपटे पॉय सुआ
चंदन रिपटी भौजी गिर परीं, नारे सुआ हो, अच्छत गये बगराय सुआ
जितने अच्छत भौजी भौं परे, नारे सुआ हो उतने दुलैया तोरे पूत सुआ
पूतन–पूतन भौजी घर भरे, नारे सुआ हो, बहुअन भरे चितसार सुआ
नारे सुआ....... ।।
पूँछत–पूँछत आये हैं नारे सुआ हो अमुक की पौर सुआ......

अर्थात् हम हिमांचल (गौरी के पिता) की पौर का पता पूँछते–पूँछते यहाँ तक आ पाये हैं। पौर में पौरिया (चौकीदार) बैठे हैं और खिड़कियों में छड़ीदार बैठे हुए हैं। घर की दुल्हिन रानी बाहर आइये और बेटियों को अक्षत (तन्दूल) प्रदान कीजिये। दुल्हन अन्दर से उत्तर देती हैं कि हमारी गोदी में नन्हा–सा पुत्र झूल रहा है। प्रत्युत्तर में बेटियाँ कहती हैं कि हे भाभी आप हमें भिखमंगा न समझें, हम तो घर–घर जाकर आशीष देते हैं। आप पुत्र को पालने में लेटा दें और हमें अक्षत प्रदान करें। भाभी अक्षत लेकर बेटियों को देने के लिए आगे बढ़ती हैं कि चन्दन लेपित आँगन में फिसलकर गिर जाती हैं और पूरे अक्षत फैल जाते हैं। यह देखकर बेटियाँ कहती हैं कि हे भाभी जितने अक्षत भूमि पर गिरे हैं, उतने ही पूत (पुत्र) तुम्हें प्राप्त हों। पुत्रों से तुम्हारा घर भर जाय और बहुओं से रनवास (रानियों का निवास) भर जाय। बुन्देलखण्ड में सधवा महिलाओं को बड़े–बूढ़ों द्वारा ''दूधन नहाओ पूतन फरो'' असीस (आशीष) देने की प्राचीन परम्परा है।

भाभी के द्वारा अक्षत और रूपया प्राप्त होने पर उसकी थाली में 10–15 चावल छोड़ देती हैं अर्थात् पूरी थाली खाली नहीं करतीं तथा 4–6 चावल के दाने घर के अन्दर फेंकती हैं। गीत का अन्तिम बोल समाप्त होते ही जिस घर के द्वार पर

ढ़िरिया लिये बेटियाँ खड़ी होती हैं उस घर के पुरूष मुखिया का नाम लेकर बाद में घर की महिला सदस्य का नाम गीत में मिलाकर गातीं हैं।

ढ़िरिया के अन्दर जलते हुए दीपक के तेल का अपना अलग महत्व है। कहते हैं कि इसे लगाने से सेउआ ठीक हो जाते हैं। अतः प्रत्येक घर में इस दीपक का थोड़ा–सा तेल ले लिया जाता है और बदले में उसी दीपक में और तेल डाल दिया जाता है। ढ़िरिया को पहले सिर पर रखकर चला जाता था किन्तु अब तो उसे हाथ में लेकर चला जाता है। मार्ग में जाते हुए यदि उसी मुहल्ला की अन्य ढ़िरियां मिल जाती हैं तो वे अपनी ढ़िरिया को छिपाते हुए गीत के बोल शुरू करती हैं, क्योंकि अन्य ढ़िरिया का मिलना ठीक नहीं माना जाता है।

ढ़िरिया में ढ़िरिया मिल गई मोरी सोत सुआ।

नौमी के दिन बासे चौक में काँय डाली जाती है। इस दिन वे अल्पनाएं नहीं बनाती हैं। आज की काँय डालने का नियम भी भिन्न होता है। आज कन्याएं दुग्धकुण्ड में जल भरती हैं उसमें से कुम्हड़ा (कद्दू) के फूल से गौरा पर जल छिड़कती हैं। आज की काँय मोंगे–मोंगे (चुपचाप मौन धारण कर) डाली जाती हैं (गीत को मन में गाती हैं)। नौरता स्थल पर झाडू लगाकर उसे साफ कर घर पर आकर नहाती हैं। मीठे खुरमा बनाकर दो बड़े दिया (जिन्हें मलियाँ कहते हैं) में रखकर नौरता स्थल पर जाकर गौरा का पूजन कर होम तथा प्रसाद लगाकर घर वापिस आती हैं। चतुर्थी और अष्टमी तिथि के जोड़े गए अनाज को बाजार में बेंचकर रूपयों को नौरता समाप्त होने पर आपस में बाँट लेती हैं या फिर कभी खाद्य सामग्री खरीदकर नौरता स्थल पर ही भोजन आदि बनाकर मौज मस्ती करती हैं।

कन्या का विवाह हो जाने पर उसकी काँय नहीं डाली जाती। यदि वह ससुराल में है तो उसके माता–पिता उसको बुलाकर उद्यापन कराते हैं जिसे नौरता उजाना कहा जाता है इसके उद्यापन में बेसन के नमकीन और आटा में गुड़, मोयन डालकर मीठे पकवान बनाये जाते हैं जैसे पपड़ी, गुझियां, गुनी, पुरी आदि। बेसन में तीपरा (त्रिकोण, तीन खूँट) चौपरा (चार खूँट) फूल, गुना, बतियाँ,शंकर गौरा जी का गहना आदि बनाये जाते हैं। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि इन पकवानों की संख्या नौ–नौ होती है। इनका आकार भले ही छोटा–बड़ा हो सकता है। पकवानों के साथ साड़ी, बिलाऊज, पायल, बिछिया, चूड़ी आदि सुहाग का सामान भी रहता है। पूजन के बाद पूरा सामान बांस की डलिया में रखकर लाल या पीले कपड़े से बाँधकर लड़की की ससुराल भेजा जाता है। जहाँ पर कहा जाता है कि नौरता की डलिया आई है। ससुराल पक्ष वाले डलिया का सामान थोड़ा–थोड़ा अपने हिसाब से अपने कुटुम्ब परिवार तथा निकटतम सम्बन्धियों के घर भेजते हैं।

नौ दिन तक कन्याओं के समूह के समूह सुआटा के माध्यम से माँ गौरी की आराधना में लीन रहते हैं। बुन्देलखण्ड में ऐसी मान्यता है कि जो कन्याएं नवरात्रि में नौरता का सुआटा के माध्यम से माता गौरी की आराधना करती हैं तथा भादों मास में हरितालिका का व्रत रखती हैं उन्हें भोले शंकर के समान पति एवं गणपति के समान पुत्र प्राप्त होता है। सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा कन्याओं का यह आराधना पर्व पाश्चात्य संस्कृति का शिकार हो चला है, जिसका बढ़ता हुआ प्रभाव शहरों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा है। यदि अपने इन पारम्परिक उत्सव, पर्व त्यौहारों की ओर अभी से ध्यान नहीं दिया गया तो सनातन से मनाये जाने वाले पर्व त्यौहार पुस्तकों की सामग्री मात्र रह जायेंगे।

-शिवहरे गली, कटरा बाजार,
टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली उत्सव व महाराजा छत्रसाल टूर्नामेंट का प्रतिवेदन

-डॉ. एम.एल. पिपरसानियां -डॉ. जगत सिंह परिहार

महाराजा छत्रसाल नेहरू युवा क्लब बसारी के तत्वावधान में वैसे तो 1995 से बुन्देली लोक संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन हेतु बुंदेली उत्सव का आयोजन किया जा रहा है किन्तु जब आजादी की स्वर्ण जयन्ती देश में मनाई जा रही थी तभी तत्कालीन छतरपुर विधायक तथा म0 प्र0 भूमि विकास बैंक अध्यक्ष श्री शंकर प्रताप सिंह ने बुन्देली उत्सव को भव्य रूप देने का विचार किया और इस विचार को क्रियान्वित करते हुये 27 से29 मार्च 98 तक बुन्देली उत्सव –98 का आयोजन किया। इस आयोजन के तहत रात में जिले की कला मंडलियों ने उत्साह से भाग लिया तथा पुरस्कार जीते। दिन में छत्रसाल मैमोरियल टूर्नामेंट भी संम्पन्न कराया गया।

बुन्देली उत्सव–98 में कुल 46 कला मंडलियों ने भाग लिया। ये मंडलियॉ खुड़न, टुरया, बमीठा, बसारी,कर्री, मजगुवॉ, भियॉताल, बक्सवाहा, चन्द्रनगर, पथरगुवॉ, देवगावॅ, खजवा, रसुइया, ठाकुरन, बृजपुरा, गंज, पारवा, बराचखेरा, सिलावट, इकारा, लखेरी टिपरियन, देरी, खजुराहो, बरेठी, सटई, पहाड़ी हीराजू, रामपुर, रामनगर, कतरवारा, रनगुवॉं बॉंध, ओंटा पुरवा, भैरा रिछाई, नयागॉंव, पहरा, गढा, बूढ़ा तथा लखरावन से आई। इन मण्डलियों ने फाग, कीर्तन, लोकगीत, रावला, दिवारी, कछियाई, ढिमरयाई, राई, तबलावादन तथा झींका बादन की प्रस्तुतियाँ दी। कड़ी प्रतियोगता से गुजरते हुये लोकगीत में प्रथम लोककला मण्डल बमीठा, द्वितीय लोक गीत पार्टी सटई ने तथा फाग में पहला स्थान रसुइया ठाकूरन तथा दूसरा स्थान लोककला पार्टी वृजपुरा ने पाया। दिवारी में पहले स्थान पर खुडन पहरा की मण्डली तथा दूसरे स्थान पर लोक कला पार्टी, रामपुर एवं ढिमरयाई में पहले स्थान पर लोक कला मण्डल बक्स्वाहा व दूसरे स्थान पर कला मण्डल खजवा रहा। बुन्देली लोक नृत्य राई ने कड़ी प्रतियोगता हुई इसमें पहले स्थान पर बजरंग लोक कला मण्डल, चन्द्रनगर तथा दूसरे स्थान पर आदिवासी पार्टी ,बसारी रही। कीर्तन भजन में पहाड़ी हीराजू ब सटई पार्टी संयुक्त रूप से, कछयाई में कुशवाहा समाज, पथरगुवा ,तबला वादन में रंजन दीक्षित खजुराहो तथा झींका बादन में विनोद पाठक रामनगर ने पहला स्थान प्राप्त किया। यह प्रतियोगतायें प्रभारी प्रो0 बी0पी0 तिवारी के निर्देशन में सम्पन्न हुई जिनमें निर्णायक के तौर पर सर्व श्री ओ0पी0शर्मा, बृजकिशोर पटैरिया, आर0सी0 सैनी तथा विमल कुमार जैन उपस्थित रहे।

महराजा छत्रसाल मैमोरियल टूर्नामेट, 98 में बालीबाल तथा कबड्डी प्रतियोगतायें सम्पन्न कराई गई। बालीबाल टूर्नामेंट में 13 टीमो ने तथा कबड्डी में 14 टीमो ने हिस्सा लिया। बालीबाल में बड़ामलहरा,चन्द्रनगर, कर्री, राजनगर, बमीठा, डहर्रा, रनगुवॉं बॉंध, खेरा कसार, मातगुवॉं लुगासी, सटई, बसारी तथा बक्स्वाहा की टीमों ने हिस्सा लिया। इस प्रतियोगिता की विजेता खेरा कसार (गौरिहार) टीम तथा उप विजेता वर्धमान क्लब, बमीठा टीम रही। कबड्डी प्रतियोगिता में पहरा ए, बसारी ए, कर्री, कदारी, रसुइया, बगौता सॉंदनी, बसारी बी, पहरा बी, बरेठी ए, कदारी बी, बरेठी बी, बसारी सी, तथा सॉंदनी बी टीमों ने भाग लिया। जिसमें विजेता बसारी ए,टीम व उप विजेता बगौता टीम रही। ये प्रतियोगितायें नेहरू युवा समन्वयक श्री विष्णु पाण्डेय के निर्देशन में संपन्न कराई गयी।

18 फरवरी से 21 फरवरी 99 तक बुन्देलखंड के हृदयांचल छतरपुर जिले के ग्राम बसारी में बुन्देली उत्सव 99 तथा महाराजा छत्रसाल मैमोरियल टूर्नामेंट सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। यह आयोजन बसारी में नवनिर्मित महाराजा छत्रसाल स्टेडियम में हुआ। बुन्देली उत्सव में फाग , दिवारी , रावला, राई , कछियाई, ढिमरयाई , चमरयाई बैठक , आल्हा, दलदल घोड़ी, लोकगीत तथा स्कूली बच्चों के कार्यक्रम संपन्न हुये। इनका फाइनल प्रदर्शन 21 फरवरी को संपन्न हुआ । छत्रसाल मैमोरियल टूर्नामेन्ट में कबड्डी , बालीबाल,कुश्ती तथा अश्व नृत्य की प्रतियोगितायें संपन्न हुई।

18 फरवरी को प्रातः 11 बजे छत्रसाल मैमोरियल टूर्नामेंन्ट तथा बुन्देली उत्सव 99 का शुभारंभ जिला पंचायत अध्यक्ष श्रीमती शकुन्तला अहिरवार के मुख्य आतिथ्य में तथा जिला कलेक्टर श्री जे0 एन0 कांसोटिया की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में वन संरक्षक श्री आर0 एस0 कुशवाहा उपस्थित थे इस अवसर पर स्वागत भाषण देते हुये आयोजन समिति के संरक्षक व म0 प्र0 भूमि विकास बैंक के अध्यक्ष श्री शंकर प्रताप सिंह ने कहा कि बुन्देली उत्सव के माध्यम से क्षेत्र की छुपी हुई प्रतिभाओ को ऊपर लाने एवं बुन्देलखंड की परंपरागत लोककला, संस्कृति एवं खेलों को प्रोत्साहित करने का यह भगीरथ प्रयास सिर्फ जनता के सहयोग से ही सम्भव हो पा रहा है। श्री सिंह ने कहा कि जिस प्रकार क्षेत्र की जनता का सहयोग उन्हे इस उत्सव में मिल रहा है बैसा अगर उन्हे आगे भी मिलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब ग्राम बसारी पूरे म0 प्र0 में बुन्देली लोककला व संस्कृति के महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में जाना जायेगा। इस अवसर पर जिला कलेक्टर श्री ज0एन0 कांसोटिया ने कहा कि बुन्देली संस्कृति को बनाये रखने में बुन्देली उत्सव का महत्व पूर्ण योगदान है। जिला पंचायत अध्यक्ष श्रीमती शकुन्तला ने इस आयोजन पर अपनी

प्रसन्नता व्यक्त की।

18 फरवरी को पहला मैच बाला जी कबड्डी क्लब पहरा तथा राजा क्लब सौंदनी के बीच खेला गया जिसमें कबड्डी क्लब पहरा विजेता रहा। इस दिन कबड्डी के छह मैच तथा बालीबाल के पाँच मैच खेले गये। 19 फरवरी को भी कबड्डी व बालीबाल मैच खेले गये। इस दिन कबड्डी के छः मैच तथा बालीबाल के छः मैच खेले गये। सेमी फाइनल तथा फाइनल मैच 21 फरवरी को खेले गये। कबड्डी की कुल 24 टीमों ने तथा बालीबाल की 28 टीमों ने भाग लिया। बालीबाल का फाइनल मैच खरगापुर तथा बल्देवगढ़ के मध्य खेला गया। इसमें बल्देवगढ़ ने 5–3 से खरगापुर को हराया। कबड्डी का फाइनल मैच देरी व रसुइया ठाकुरन के बीच खेला गया जिसमें देरी बी टीम 49–17 के अन्तर से जीती। इनको 21 फरवरी को शील्ड तथा पुरस्कार प्रदान किए गए।

20 फरवरी को दिन में कुश्ती तथा अश्वनृत्य का आयोजन किया गया। इस दिन अतिथि के रूप में उत्तर प्रदेश के सिंचाई राज्य मंत्री शिवशंकर सिंह, उत्तर प्रदेश मौंदहा के विधायक बादशाह सिंह तथा देवरिया विधायक श्री योगेन्द्र सिंह उपस्थित थे। कुश्ती में महोबा जालौंन, बारीगढ़, दमोह, अजीतपुर तथा बाँदा के पहलबानों ने हिस्सा लिया । कुश्ती में कुल 13 प्रतियोगितायें हुई जिनमें 3 कुश्तियाँ बराबरी पर छूटी। सर्वश्रेष्ठ पहलवान का खिताब बबलू पहलबान को मिला। इसके बाद घोड़ों का नाच (अश्वनृत्य) आयोजित हुआ जिसमें क्षेत्रके 35 सजे हुए घोड़ों ने नृत्य प्रस्तुत किया जो अपने आप अनोखा था। इसमें पहला पुरस्कार लक्ष्मण सिंह यादव, गुरसारी को, दूसरा पुरस्कार शंकर यादव मौराहा को तथा तृतीय पुरस्कार चतुर सिंह सेला को मिला। इनको पुरस्कार प्रदेश के संस्कृति मंत्री श्री अजयसिंह ने प्रदान किये।

बुन्देली उत्सव 99 के तहत 18 फरवरी को फाग, दिवारी, रावला तथा स्कूली बच्चों के कार्यक्रम प्रस्तुत हुए। इस संध्या के कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप मे फिल्मी अभिनेता राजा बुन्देला तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में कवि श्री रतनलाल नामदेव "रत्नेश" उपस्थित थे। अध्यक्षता श्री शंकरलाल महरोत्रा ने की। इस अवसर पर श्री राजा बुन्देला ने कहा कि इस मंच से जो कलाकार निकलेंगें वे उन्हें बम्बई में मदद करेंगें। इस दिन की प्रतियोगिता में फाग की पॉच टीमों ने, दिवारी की छह टीमों नें तथा रावला की चार टीमों नें भाग लिया। आठ स्कूली बच्चों के दलों नें भाग लिया। स्कूली बच्चों के कार्यक्रमों में सतयुग विद्या मंदिर खजुराहो पहले स्थान पर तथा शा0 उ0 मा0 वि0 बसारी दूसरे स्थान पर आया। फाग मे फाग पार्टी रसुइया ठाकुरन पहले स्थान पर तथा उमराव सिंह फाग पार्टी विक्रमपुर दूसरे स्थान पर आई। दिवारी में आदिवासी दिवारी पार्टी बसारी पहले स्थान पर तथा फ्रेन्डस क्लब गढ़ीमलहरा दूसरे स्थान पर आई । रावला में बुन्देलखण्ड रावला पार्टी चन्द्रनगर पहले स्थान पर तथा रैकवार समाज रावला पार्टी भियाँताल दूसरे स्थान पर आई।

19फरवरी को विधायक निवाड़ी श्री ब्रजेन्द्रसिह राठौर के मुख्य आतिथ्य एवं कवि श्री सुरेन्द्र शर्मा "शिरीष" के विशिष्ट आतिथ्य में कार्यक्रम सम्पन्न हुये। इसकी अध्यक्षता सईदबख्श खयृयाम ने की। इस दिन राई की 15 पार्टियों ने अपनीं प्रस्तुति की। जिसमें पहले स्थान पर नेहरू युवा मंडल, बसारी प्रथम तथा बुन्देलखन्ड राई पार्टी , चन्द्रनगर द्वितीय स्थान पर रही। ढिमरयाई मे पाँच पार्टियो ने हिस्सा लिया जिसमें रैंकवार समाज पार्टी भियाँताल प्रथम तथा संजय दुबे एण्ड पार्टी बकस्वाहा द्वितीय स्थान पर रही। चमरयाई बैठक मे तीन पार्टियों नें भागीदारी की जिसमे बैठक पार्टी, स्यामरी पहले स्थान पर तथा बैठक पार्टी कर्री दूसरे स्थान पर रही। कछियाई में कुल छह पार्टियो ने हिस्सा लिया जिसमे गम्मत कछियाई पार्टी गुरइया प्रथम तथा कछियाई पार्टी भुमानीपुरा दूसरे स्थान पर रही।

20 फरवरी को म0प्र0 के संस्कृति मंत्री श्री अजयसिंह के मुख्य आतिथ्य मे, पूर्व मंत्री श्री यादवेन्द्र सिंह के विशिष्ट आतिथ्य में प्रतियोगितायें सम्पन्न हुई। इस आयोजन की अध्यक्षता पूर्व विधायक श्री लोकेंन्द्र सिंह ने की। इस दिन आल्हा गायन के सात दलों ने हिस्सा लिया जिसमे पहले स्थान पर बच्चा सिंह एण्ड पार्टी आलमपुरा महोबा तथा दूसरे स्थान पर पहलवान सिंह आल्हा पार्टी खन्ना जिला हमीरपुर रही। दल–दल घोड़ी मे चार दलों नें हिस्सेदारी की। इसमें स्यामरी की पार्टी प्रथम तथा बसारी की पार्टी द्वितीय स्थान पर आई। लोकगीत गायन मे 15 दलों ने भाग लिया । इसमें सरस्वती संगीत परिषद् , बमीठा की लबली दुबे पहले स्थान पर तथा मतंगेश्वर सांस्कृतिक परिषद् खजुराहो के इन्द्रजीत दीक्षित दूसरे स्थान पर रहे। इनके अलावा आयोजन मे किशोर मंच पार्टी महोबा द्वारा प्रस्तुत पाट नृत्य नागिन बैंड पार्टी दालौन का नृत्य तथा लोक नृत्य कला दल पन्ना का बधैया गीत नृत्य की प्रस्तुति विशेष सराहनीय रही। बुद्धप्रकाश चौबे देरी ने पक्षियों की बोली निकालकर सभी का ध्यान अपनी ओर खींचा।

20 फरवरी को मुख्य अतिथि के रूप मे पूर्व मंत्री श्री विट्ठल भाई पटेल विशिष्ट अतिथि श्री राजा बुन्देला तथा जिला कलेक्टर श्री जे0 एम0 कांसोटिया उपस्थित थे । इस दिन सभी विधाओं की फाइनल प्रस्तुतियां हुई तथा पुरस्कार वितरण किया गया।

- छात्रावास अधीक्षक,
महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर



बुन्देली उत्सव ९४ में ढिमरयाई पर नृत्य प्रस्तुत करता कलाकार



लोक कला मण्डल बकस्वाहा के कलाकार अपनी प्रस्तुति देते हुए



रावला पार्टी भियाँताल के कलाकार नृत्य करते हुए



आदिवासी राई पार्टी बसारी के कलाकार अपनी कला प्रस्तुत करते हुए



विजेता टीम के साथ बाँये से क्रमशः श्री गुरु जी, उ.प्र. के सिंचाई राज्य मंत्री श्री शिव शंकर सिंह, मौहदा (उ.प्र.), विधायक श्री बादशाह सिंह, देवरिया (उ.प्र.), विधायक श्री योगेन्द्र सिंह व आयोजन संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह



बुन्देली गीतकार श्री विट्ठल भाई पटेल को सम्मानित करते हुए श्री शंकर प्रताप सिंह



कुश्ती प्रारंभ करते हुए संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह (मुन्ना राजा)



उपस्थित जन समूह को सम्बोधित करते फिल्म अभिनेता श्री राजा बुन्देला



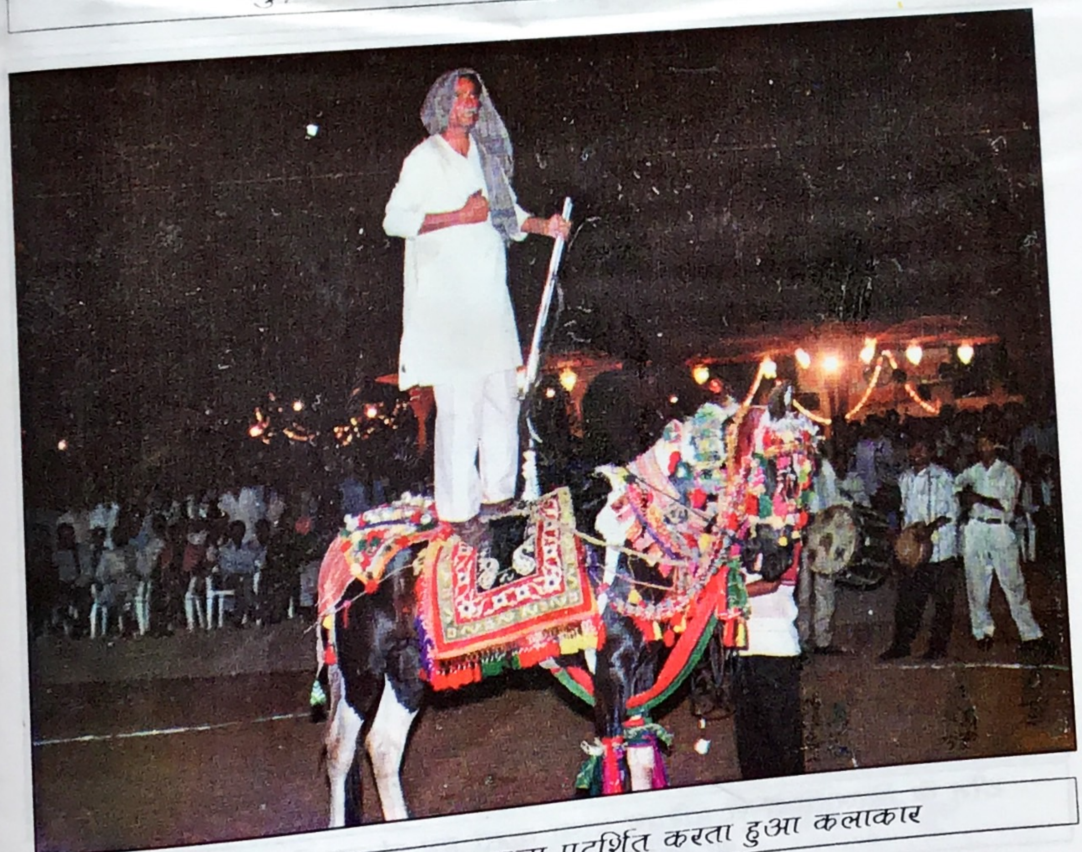
बुन्देली उत्सव-९८ के उद्घाटन अवसर पर संबोधित करते हुए
आयोजन संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह



बाल कलाकारों को पुरस्कृत करते हुए तत्कालीन जिला कलेक्टर
श्री जे.एन. कांसोटिया



घुड़सवार के कहने पर करतब दिखाता घोड़ा



घोड़े पर खड़े होकर कला प्रदर्शित करता हुआ कलाकार



आयोजन को संबोधित करते निमाड़ी क्षेत्र के लोकप्रिय विधायक
श्री बृजेन्द्र सिंह राठौर



टीम के खिलाड़ियों से परिचय प्राप्त करते हुए चंदला क्षेत्र के विधायक
श्री विजय बहादुर सिंह बुंदेला



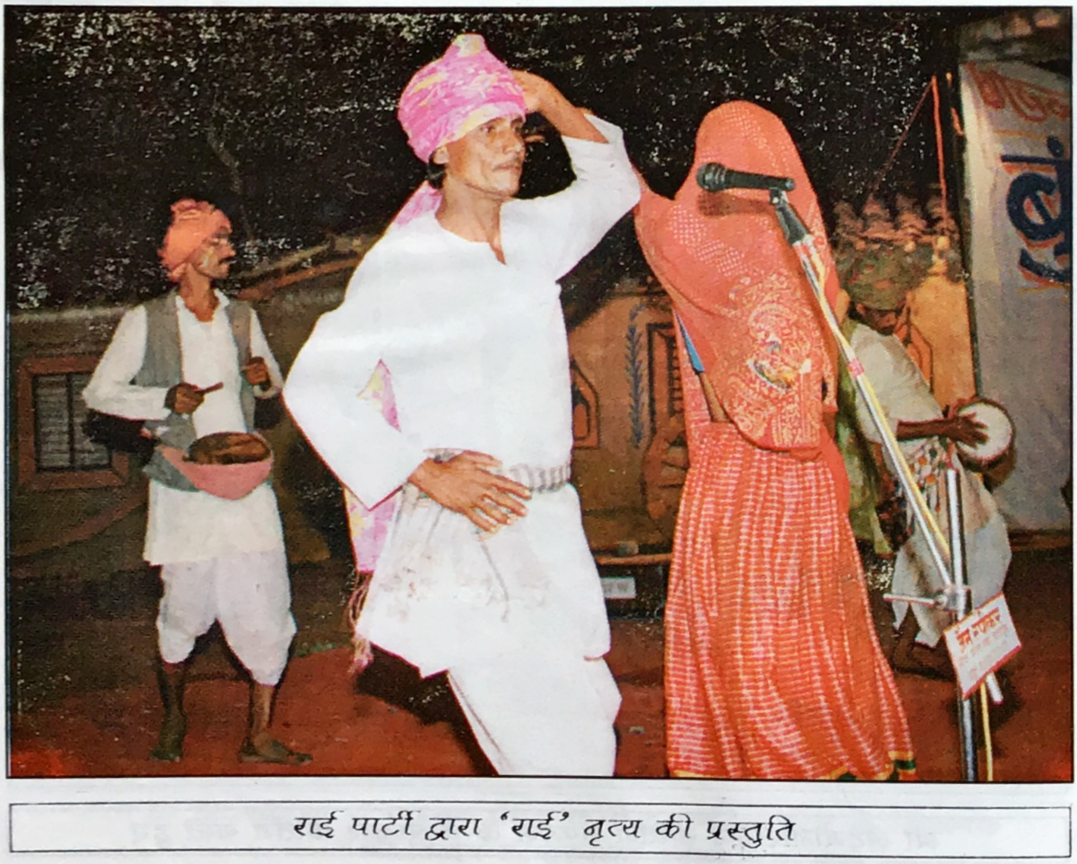
बुन्देली उत्सव ९८ में कलाकार कला को प्रस्तुत करते हुए



श्री लक्ष्मीनारायण कीर्तन मण्डल के कलाकार कीर्तन गाते हुए



दिवारी पार्टी द्वारा मौनिया नृत्य की प्रस्तुति



राई पार्टी द्वारा 'राई' नृत्य की प्रस्तुति



विजेताओं को संयुक्त रूप से प्रदेश के संस्कृति मंत्री श्री अजय सिंह
तथा फिल्म कलाकार श्री राजा बुन्देला पुरस्कार देते हुए



बुन्देली उत्सव की पत्रिका का विमोचन करते प्रदेश के संस्कृति मंत्री श्री अजय सिंह साथ में हैं
टीकमगढ़ के तत्कालीन विधायक श्री यादवेन्द्र सिंह व विजावर विधायक श्री मानवेन्द्र सिंह



उपस्थित जन समूह को संबोधित करते प्रदेश के
संस्कृति मंत्री श्री अजय सिंह (राहुल भैय्या)



आयोजन के संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह के साथ प्रदेश के संस्कृति मंत्री
श्री अजय सिंह मंच की ओर आते हुए



दिवारी पार्टी द्वारा मौनिया नृत्य की प्रस्तुति



लोक कलाओं का आनन्द उठाते हुए दर्शकगण



आदिवासी नेहरु युवा क्लब बसारी के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया नृत्य



राई नृत्य को प्रस्तुत करते कलाकार



मैच के पूर्व खिलाड़ियों से परिचय प्राप्त करते बिजावर विधान सभा क्षेत्र के विधायक श्री मानवेन्द्र सिंह जी



अखाड़े में अपने प्रतिद्वंदी को पछाड़ने की कोशिश में पहलवान



विजेता को शील्ड प्रदान करते विधायक श्री मानवेन्द्र सिंह (भँवर राजा)



सर्वश्रेष्ठ कलाकार की शील्ड प्रदान करते हुए फिल्म अभिनेता श्री राजा बुन्देला



मौनिया नृत्य प्रस्तुत करते हुए कलाकार



ढिमरयाई प्रस्तुत करते हुए मण्डली



नागिन बैंड पार्टी द्वारा नृत्य की प्रस्तुति



मौनिया नृत्य प्रस्तुत करते कलाकार



मौनिया नृत्य प्रस्तुति करते कलाकार



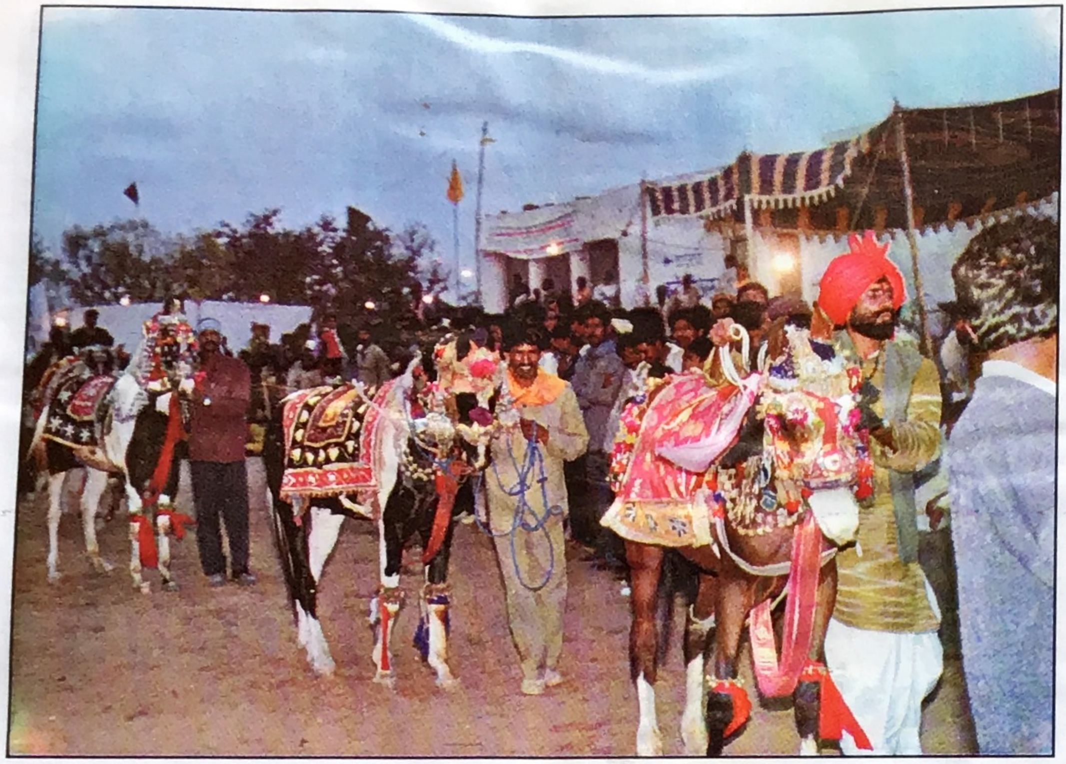
पहलवान सिंह एण्ड पार्टी खन्ना आल्हा प्रस्तुत करते हुए



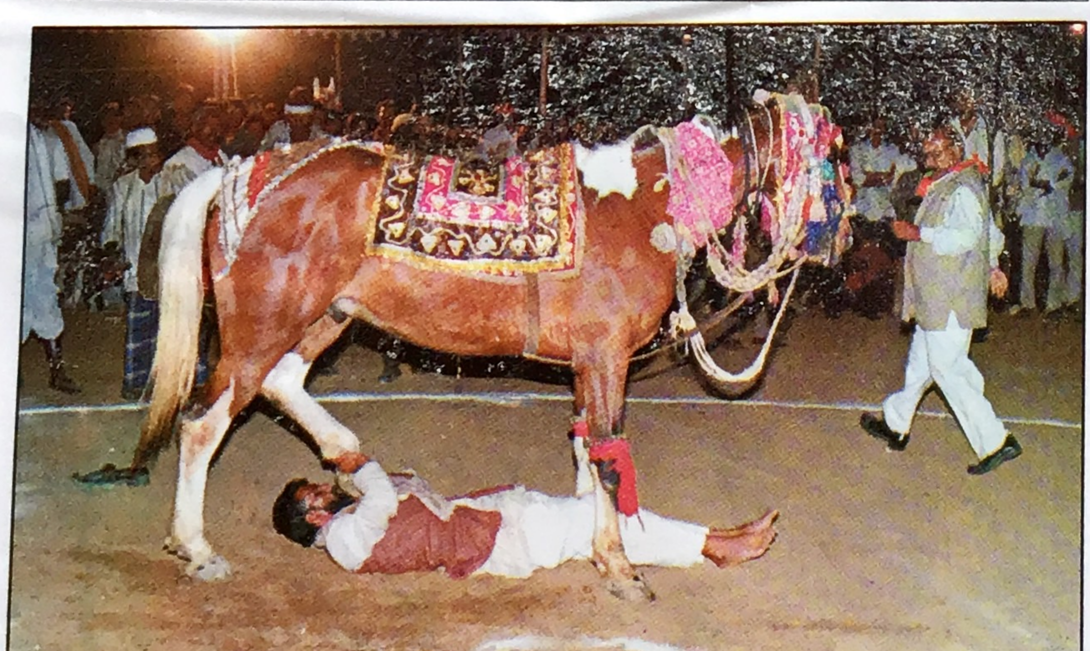
राई नृत्य के पूर्व फाग गाती नर्तकी रजनी



लोक कलाओं से आनंदित होती जनता



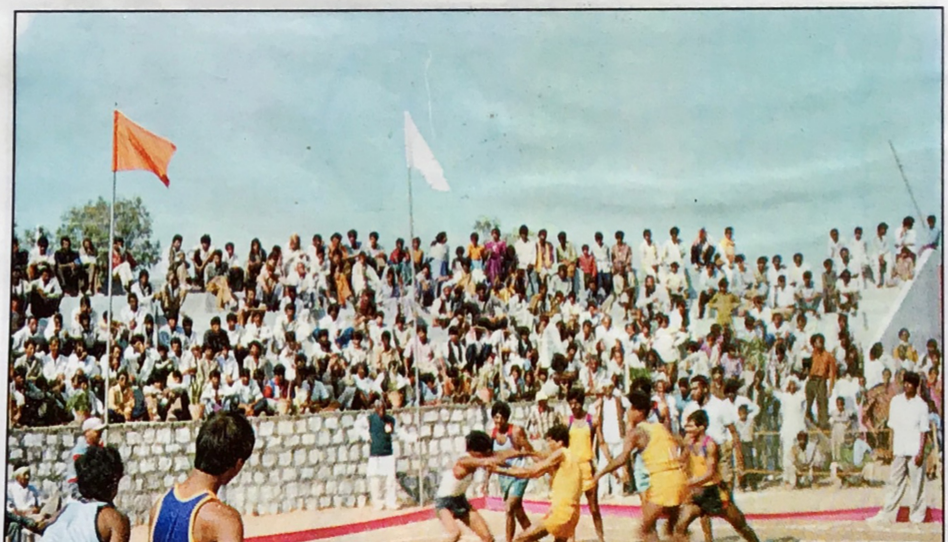
सामूहिक अश्व नृत्य को जाते हुए घोड़े



घोड़े के साथ अपने करतब दिखाता घुड़सवार



महाराजा छत्रसाल मेमोरियल वॉलीवाल टूर्नामेंट ९९ में मैच खेलते हुए खिलाड़ी



कबड्डी मैच का एक दृश्य



महोबा से पधारी कलाकार घट-नृत्य प्रस्तुत करते हुए



विजावर की नृत्यांगना रजनी 'राई' प्रस्तुत करते हुए

ज़िला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्या०, छतरपुर

महाराजा छत्रसाल नेहरू युवा क्लब, बसारी

द्वारा आयोजित

बुन्देली उत्सव २०००

एवं

महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेन्ट

के आयोजन पर हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

देवेन्द्र प्रताप सिंह (दिल्लू राजा)	लाल सिंह लोधी, श्रीमती हिरिया कुम्हार	आर.के. राठौर
अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	प्रबंधक

ज़िला सहकारी भूमि विकास बैंक मर्या०, जबलपुर

महाराजा छत्रसाल नेहरू युवा क्लब, बसारी

द्वारा आयोजित

बुन्देली उत्सव २०००

एवं

महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेन्ट

के

आयोजन पर हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

कृष्णबिहारी कुररिया	ऐ.के. पाण्डेय
अध्यक्ष	प्रबंधक

उमराव सिंह, विमला

उपाध्यक्ष

ज़िला सहकारी भूमि विकास बैंक मर्या०, राजगढ़

महाराजा छत्रसाल नेहरू युवा क्लब, बसारी

द्वारा आयोजित

बुन्देली उत्सव २०००

एवं

महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेन्ट

के

आयोजन पर हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

गिरीश भण्डारी	जगदीश सिंह	के.पी. दुबे
अध्यक्ष	प्रदेश प्रतिनिधि	प्रबंधक

शिव सिंह, तुलसी बाई

उपाध्यक्ष

त मर्या...

प्रदेश के भूमि वि... ...कों द्वारा

कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों को अनेक ऋण योजनाओं का क्रियान्वयन प्रारंभ

* बैंकों द्वारा वर्ष 61-62 से अ... 1090 करोड़ के ... ऋण वितरित
* वर्ष 1999-2000 में 110 करोड़ के कृषि ऋण ...ने ...क्रम
* फलोद्यान, पशुपालन, डेयरी विकास, ट्रेक्टर एवं अन्य ... ...त्र मछली पालन
* मुर्गीपालन, गोबर गैस संयंत्र तथा सिंचाई पम्पों के ... गति से ऋण प्रबंध
* अब बैंकों द्वारा गैर कृषि प्रयोजनों के लिए भी ... ...रंभ
* लघु एवं सीमित किसानों को योजनानुसार ऋण अनु... अन्य रियायतें ।

बैंक अब फिक्स डिपॉजिट में राशि जमा करते हैं

30 दिन से 90 दिन तक	6.50 प्रतिशत
91 दिन से 179 दिन तक	7.50 प्रतिशत
180 दिन से 1 वर्ष तक	8.50 प्रतिशत
1 वर्ष से अधिक और 2 वर्ष तक	11 प्रतिशत
2 वर्ष से अधिक और 3 वर्ष तक	11.50 प्रतिशत
3 वर्ष से अधिक	12.50 प्रतिशत

कृषि विकास हेतु ऋण के लिए आप अपने नजदीक के भूमि विकास बैंक से सम्पर्क करें ।

श्रीमती आशा ठाकुर
उपाध्यक्ष

शंकर प्रताप सिंह
अध्यक्ष

राजेन्द्र भारती
उपाध्यक्ष

मुकेश वर्मा
प्रबंध संचालक

मध्य प्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक सीमित, 38-बी, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल द्वारा प्रसारित

मुद्रक : प्रियंका ऑफसेट, प्रेस कॉम्पलेक्स, भोपाल, फोन : 555789